विषय | पृष्ठ

# असली कोकशास्त्र

जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के रचयिता—

## कोकापंडित का संक्षिप्त जीवन

किसी समय काश्मीर देश में महाराज शान्तिदेव राज्य करते थे। उनकी न्याय-प्रियता और प्रजा-वात्सल्य के कारण प्रजा उन्हें पिता के समान स्नेह करती थी। प्रजा का ऐसा स्नेह देखकर पुत्र-विहीन होने पर भी उन्हें वृद्धावस्था में पुत्राभाव के दुःख का अनुभव नहीं होता था।

ठीक वैसे ही उनके प्रधान मन्त्री पं० दीनानाथ जी थे। जो अनुभवी और बुद्धिमान व्यक्ति थे। वे महाराज के समवयस्क और परम स्नेही थे। प्रजा की देख-रेख का भार प्रायः उन्हीं पर था। प्रजा भी उन्हें जी-जान से प्यार करती थी। दैव-दुर्विपाक से इनके भी कोई सन्तान न थी।

एक दिन महाराज और प्रधान-मन्त्री काश्मीरी पर्वतों पर भ्रमण करने के लिये गये थे। काश्मीर देश ऐसा सुन्दर पहाड़ियों से घिरा हुआ है, जो दुर्ग की प्राचीर की भाँति उसे चारो ओर से घेरे हुए हैं। उन पहाड़ियों पर अंगूर, फालसा, अखरोट, बादाम आदि अनेक प्रकार के मेवे हर समय, मौसिम के लिहाज से लदे रहते हैं। कन्द-फल-फूल की तो गिनती ही नहीं। ऐसा हरा-भरा प्रदेश भू-मण्डल पर और कहीं दिखयी नहीं देता, यह अत्युक्ति नहीं, बल्कि यथार्थ ही है।

उन पर्वतों की गुफाओं में तपस्वी, योगी, महात्मा भी निवास करते हैं। जिनको सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त हैं। पीने के लिये शीतल जल के झरने और खाने के लिये तरह-तरह के मेवे! ईश्वरीय-सृष्टि देखने के लिये नाना प्रकार के रंग-बिरंगे पशु-पंक्षियों के किलोल दिखयी देते हैं।

महाराज और मन्त्री पर्वत प्रदेशों में घूमते हुए जब एक झरने पर जा बैठे, तब उन्हें एक हिरन-हिरनी का जोड़ा नदी तट पर दिखायी दिया। उनके साथ दो छोटे-छोटे बच्चे भी उछल-कूद मचा रहे थे। हिरनी बड़े स्नेह के साथ उन बच्चों की ओर देख रही थी। बच्चे जब कुछ दूर हट जाते थे, अथवा झाड़ी की ओट में हो जाते थे तो हिरनी व्याकुल होकर उन्हें ढूँढ़ने के लिये झाड़ियों का चक्कर लगाती थी। हिरन मन्थर-गति से इधर-उधर घूम रहा था।

उनकी इन हरकतों को देखकर महाराज का मन उदास हो गया और किसी अज्ञात भाव के उदय हो जाने से उनके नेत्रों में जल भर आया। उन्होंने अश्रु-विन्दु छिपाने के लिये अपना मुख उस ओर से फेर लिया। मन्त्री निकट ही बैठे हुए थे। उनसे महाराज का यह व्यापार नहीं छिपा। उन्होंने कहा—महाराज, आपकी ऐसी करुण-दशा क्यों दिखायी दे रही है? कौन दुःखद विचार आपके हृदय में उत्पन्न हुआ जिससे ऐसे सुन्दर आनन्दप्रद प्रदेश में रहते हुए भी आपकी आँखों में आँसू छलक आये? आज तक आपने कोई बात मुझसे छिपाने की चेष्टा··

बीच ही में रोककर महाराज ने कहा,—यह सच है, मैंने कभी कोई बात आपसे नहीं छिपायी और इसके छिपाने की भी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। मन्त्रिन्, आपने वह मृगों का जोड़ा अपने बच्चों के साथ खेलता हुआ देखा? देखो, वह निर्जन प्रदेश में कैसे आनन्द से मनोविनोद कर रहा है। उसके पास दुःख और त्रास का लेश भी दिखायी नहीं देता। हम राजा हैं, हमारे पास सेना है, घोड़े हैं, हाथी हैं, तथा ऐशो-आराम के सभी सामान मौजूद हैं। महल और उनमें रहनेवाली रानी, सेवक सेविकायें भी हैं। किसी प्रकार की धन-सम्पत्ति की भी कमी नहीं। इतना सब कुछ होने पर भी सब व्यर्थ है। पुत्र-हीन-गृह श्मशान के समान प्रतीत होता है। इन मृगों के पास उनमें से कोई भी वस्तु नहीं; किन्तु ईश्वर-प्रदत्त वस्तुओं का उपभोग करते हुए केवल अपने पुत्रों

के साथ दम्पत्ति कितने आनन्दित दिखायी दे रहे हैं।

मन्त्री ने कहा,—आपका कहना यथार्थ है। अब हम लोगों के और जीवन के दिन ही कितने हैं। परमात्मा ने अब तक भी हम पर कृपा नहीं की। इसमें परमात्मा का क्या दोष ? हमारा भाग्य ही ऐसा है।

मन्त्री और महाराज में जिस समय उपरोक्त बातें हो रही थीं ठीक उसी समय सामने से एक जटाधारी तपस्वी आते दिखाई दिये। उनके हाथ में एक कमंडलु और पांव में खड़ाऊँ थीं।

ये महात्मा नदी के उस पार रहते थे। नदी का जल बहुत गहरा न था। तपस्वी नदीतट पर आ पहुँचे। वे अधोदृष्टि किये आ रहे थे। इस लिये उनकी दृष्टि इन दोनों पर नहीं पड़ी। तट पर पहुँचते ही उन्हें दो व्यक्ति एक शिला के पास दिखायी दिये।

नजर चार होते ही महाराज ने झुककर प्रणाम किया। मन्त्री ने भी उनका साथ दिया।

महात्मा ने आशीर्वाद देते हुए कहा,—राजन्! आप यहाँ कैसे ? कुशल तो है ?

महाराज ने नम्रतापूर्वक कहा,—परमात्मा की कृपा से सब कुशल ही है।

महात्मा ने कहा,—सब कुशल ही है, इसके क्या माने ? आप ऐसे उदास वचन क्यों बोल रहे हैं ?

महाराज ने कुछ उत्तर नहीं दिया। महात्मा ने मन्त्री जी से

कहा,—आप तो इनकी चिन्ता के कारण से अवश्य ही अवगत होंगे ?

मन्त्री ने कहा,—हाँ भगवन्, आज एक दृश्य देखकर एकाएक इनकी ऐसी हालत हो गयी। यद्यपि सब से कहने योग्य वह बात नहीं है, किन्तु आप जैसे महात्माओं से छिपाना भी व्यर्थ है।

इसके बाद मन्त्री ने महाराज की अनुमति लेकर चिन्तित होने का कारण कह सुनाया। जिसे सुनकर महात्मा ने कहा,—आप चिन्ता न करें, ईश्वर चाहेंगे तो आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी।

इतना कहकर महात्मा उन दोनों को साथ ले अपनी कुटी की ओर चल दिये। उनकी कुटिया करीब ही थी। किन्तु पर्वत की ऊँचाई-नीचाई के कारण उन्हें पहुँचने में करीब आधा घण्टा लगा। कुटी में पहुँचकर इन दोनों को एक कुशासन पर बैठा दिया और आप वहाँ से चले गये। थोड़ी देर बाद एक लम्बी लता लिये हुए आ पहुँचे और उसे महाराज के सामने रखकर बोले,—इस वन-लता में १५ गाँठ हैं। हर एक गाँठ के ऊपर सूत से कसकर बाँध दें। एक गाँठ किसी बर्त्तन में रखकर काट लीजियेगा। इसमें से सफेद दूध के समान रस निकलेगा। उसका चारु-पिंड बना लेना। ये सोम-लता नाम की प्रसिद्ध लता है। इसके सेवन से अवश्य संतान प्राप्त होती है।

[ २ ]

कुछ दिनों के बाद ईश्वर की कृपा से महाराज और मन्त्री दोनों के घर में पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज ने अपने पुत्र का नाम शम्भु-

सिंह रक्खा और मंत्री पं० दीननाथ जी ने अपने पुत्र का नाम कामनाथ प्रसिद्ध किया। बड़े-बड़े अनुभवी विद्वान् पंडितों द्वारा बालकों की परीक्षा करायी गयी। बालकों की मुखाकृति देखकर सभी ने एक स्वर से उनका भविष्य सुखमय बतलाया।

कामनाथ जब बोलने लायक हुआ, तब उसकी कोकिल समान मधुर आवाज को सुनकर उसके पिता उसे 'कोका' कहकर पुकारने लगे। इस नाम के आगे कामनाथ नाम छिप गया और वे बड़े होकर भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। जब कोका छोटे थे, तभी पं० दीनानाथ जी उन्हें अच्छे-अच्छे शिक्षाप्रद श्लोक कंठ कराया करते थे! यहाँ तक कि अक्षराभ्यास से लेकर व्याकरणादि सब शास्त्र उन्होंने ही स्वयं पढ़ाये और समयानुसार सब संस्कार भी यथाविधि कराये।

जिन विषयों को वे स्वयं नहीं जानते थे, उन विषयों को उन्होंने अन्य उच्चकोटि के विद्वानों से पढ़ाया। कोका की बुद्धि बड़ी अपूर्व थी। और स्मरणशक्ति भी असीम थी। जैसे वे सर्वाङ्ग सुन्दर उत्पन्न हुए, वैसे ही अपूर्व विद्वान् भी हो गये। उनकी ऐसा उन्नति देखकर उनके माता-पिता फूले नहीं समाते थे।

एक दिन दैव संयोग से कोका को साथ लेकर मंत्री जी राज-दर्बार में गये। कोका की मोहिनी सुरत देखकर महाराज शान्ति-देव जी बड़े प्रसन्न हुए। युवराज शम्भुसिंह भी दर्बार में ही बैठे थे। उन्होंने भी अनेक विद्याओं का अध्ययन किया था।

महाराज ने मंत्रीजी से कहा,—मन्त्रीजी, अब हमलोगों की इच्छा परमात्मा ने पूर्ण कर दी। अब हमें राज-पाट का भार लड़कों को सौंप देना चाहिये। मेरी समझ में अब लड़के पूर्ण योग्य हो गये हैं।

थोड़ी देर के बाद कोकापंडित की बुद्धि की परीक्षा के लिये उन्हें सम्बोधन कर महाराज ने कहा,—जितना प्रेम संतान के प्रति माता-पिता को होता है, उतना संतान को माता-पिता के प्रति होता है या नहीं ?

कोका पंडित ने उठकर बड़ी नम्रता के साथ कहा,—राजन्, यह प्रश्न जितना कठिन है, उतना ही महत्वपूर्ण भी है। मैं इसका उत्तर अपनी स्वल्प-बुद्ध्यनुसार देता हूँ। संभव है कोई त्रुटि हो तो उसे महाराज क्षमा करेंगे।

कोका—दोनों में निःस्वार्थ-प्रेम बराबर ही होता है, किन्तु स्वार्थमय-प्रेम में अवश्य अन्तर होता है।

महाराज ने कहा,—क्या कोई दृष्टान्त देकर समझा सकते हो ?

कोका पण्डित ने कहा,—हाँ इतिहास में ऐसे बहुत से उदाहरण आये हैं। जैसे हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को कितने कष्ट दिये ? सिर्फ इस लिये कि वह ईश्वर के स्थान पर उसी के नाम की माला फेरे। दूसरा उदाहरण है अर्जुन का। जिसने अपनी सेना की रक्षा के लिये अपने बूढ़े पितामह भीष्म जी के प्राण उन्हीं से उपाय पूछ कर लिये। यहाँ दोनों स्थान पर स्वार्थ था। जहाँ स्वार्था-

भाव होता है वहाँ प्रेमाभाव का कारण भी दिखायी नहीं देता।

कोका पण्डित का उत्तर सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय दर्बारियों को सम्बोधन कर कहा,—मैं प्रधान मन्त्री दीनानाथ जी के पद का उत्तराधिकारी कोका पण्डित को ही नियुक्त करता हूँ। आपलोगों की क्या राय है?

दर्बारियों ने एक स्वर से उनका समर्थन किया।

[ ३ ]

कोका पण्डित देश-देशान्तरों में घूमने के लिये चले गये। कई वर्ष के बाद जब वे लौटे तब उन्हें राज्य-सिंहासन पर शम्भुसिंह राज्य करते दिखायी दिये। महाराज का आज्ञापत्र उनके नाम लिखा हुआ था कि जब वे लौटकर आवें तब उन्हें प्रधान मन्त्री का पद देकर प्रधान मन्त्री पं० दीनानाथ जी स्वतन्त्र हो सकते हैं।

राज-काज करते हुए कोका पण्डित और महाराज शम्भुसिंह में बड़ा प्रेमभाव उत्पन्न हो गया। वे प्रायः जहाँ घूमने-फिरने जाते थे साथ ही साथ जाते थे।

एक दिन राजदर्बार ठसाठस भरा हुआ था। दर्बारीगण यथा स्थान बैठे हुए थे। ठीक उसी समय एक सुन्दरी स्त्री ने दर्बार में प्रवेश किया। वह इतने बारीक वस्त्र पहने हुए थी कि उसके अंग प्रत्यंग साफ दिखायी दे रहे थे। ऐसा मालूम होता था मानो वह कोई वस्त्र धारण ही किये हुए नहीं है।

सब दर्बारियों की नजर उस ओर गयी। किन्तु लज्जा से उन्हें

अपना मुँह नीचा कर लेना पड़ा। महाराज और मंत्रि-मंडल की भी वही दशा हुई। महाराज ने अधोदृष्टि किये हुए उस रमणी से नम्रतापूर्वक कहा,—आप इस प्रकार निरावस्त्र की भाँति राजसभा में क्यों आयी हैं ?

रमणी ने कहा,—क्या आप मेरे हाथ में देखते हैं कि मैं क्या लिये हुए हूँ ?

महाराज ने कहा,—तुम्हारे हाथ में क्या है, इसका जवाब हम तभी दे सकते हैं जब तुम किसी मोटे वस्त्र से अपने अंग ढंक लो। इस प्रकार निर्लज्जा स्त्री को हम कोई जवाब नहीं दे सकते।

उस स्त्री ने कहा,—मुझे यहाँ कोई लज्जा की बात दिखायी नहीं देती। क्योंकि लज्जा पुरुषों से की जाती है, स्त्रियों से नहीं।

महाराज ने पूछा,—क्या तुम्हें यहाँ सब स्त्रियें दिखायी देती हैं ?

उस स्त्री ने कहा,—यहाँ ही क्या, मुझे तो आजतक कहीं कोई मर्द दिखायी ही नहीं दिया। या तो स्त्रियें और या हिजड़े ही दिखायी दिये।

यह बात सुनकर महाराज को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कड़क कर कहा,—इस बेहूदी औरत को दर्बार से बाहर निकाल दो।

उसी समय प्रधान मन्त्री कोकापंडित ने महाराज से नम्रतापूर्वक कहा,—राजन्, इस प्रकार स्त्री का तिरस्कार राजसभा से करना अच्छा नहीं। वह ऐसा क्यों कह रही है, इसका कारण जानना ही उत्तम होगा। यदि आप आज्ञा दें तो मैं दो-चार बातें करूँ ?

राजा ने कहा,—अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा।

कोका परिडत ने उस स्त्री से पूछा,—क्या आपको मोटे वस्त्र पहनने में कोई एतराज है ? वस्त्र पहन लेने पर हम आपकी सभी बातों का जवाब देंगे।

रमणी ने कहा,—नहीं मुझे कोई एतराज भी नहीं है। किन्तु मेरे पास इस समय वस्त्र कहाँ है ?

उस स्त्री की बात सुनकर कोका पंडित ने अपना दुशाला उतार कर उसे दे दिया। जब रमणी ने दुशाला ओढ़ लिया तब सब की दृष्टि फिर उसकी ओर गयी। सब ने देखा, स्त्री की आँखें अग्नि के समान लाल हैं। बाल छोटे, किन्तु बिखरे हुए हैं। मदन-ताप से उसका सारा शरीर जल रहा है। नाक के छिद्र स्थूल हैं, देह मोटी और सुडौल है। उन्मादिनी की भाँति उसके सब अंग फरफरा रहे हैं। कुछ आभूषण अंग-प्रत्यंग में यथास्थान सुशोभित हैं। वह अपने हाथ में एक गुलाब का फूल लिये सूंघ रही है।

मन्त्री ने पूछा,—क्या आप इसी पुष्प के लिये पूछ रही हैं ? इससे आपका क्या मतलब ?

रमणी ने कहा—इसी का समझने वाला कोई नहीं मिला।

मन्त्री ने कहा,—इसमें क्या रक्खा है। फूल गुलाब का है, खिला हुआ है, खुशबूदार है और देखने में सुहावना है।

रमणी ने कहा,—कुछ और भी ?

मन्त्री ने कहा,—और क्या ? आप स्पष्ट क्यों नहीं कह देतीं, आप क्या चाहती हैं ?

उस स्त्री ने कहा,—फूल का जीवन कब सार्थक माना जाता है ?

मन्त्री ने कहा,—जब वह भोग में आ जाय।

रमणी ने कहा,—हाँ, आप कुछ समझदार मालूम होते हैं। सम्भवतः आप मेरे दृष्टान्त से दारिष्टान्त को भी समझ गये होंगे ?

कोका पंडित थोड़ी देर तक मन ही मन सोचकर बोले,—हाँ, तुम्हारे अभिप्राय को मैंने कुछ समझा। क्या तुम पुष्प की भाँति अपने आप को सार्थक करना चाहती हो ?

स्त्री ने कुछ जवाब नहीं दिया। महाराज बड़े गौर से उन दोनों की बातें सुन रहे थे। उन्होंने कोका पंडित से कहा,—इन बातों का कुछ मतलब समझ में नहीं आया।

कोका पंडित ने कहा,—महाराज, यह कामिनी काम-विह्वला दिखायी दे रही है। कामान्ध होकर इसने उपरोक्त बातें कही हैं।

महाराज ने कहा,—तो इसका उपाय क्या किया जा सकता है ? क्या इसका पति नहीं है ? यह काम तो उसी का है, इसका राज-दर्बार से क्या सम्बन्ध ?

मन्त्री ने कहा,—आपका कहना सत्य है। किन्तु जब उसकी सन्तुष्टि नहीं होती, तब वह राजदर्बार में न कहे तो और कहाँ कहे ?

महाराज ने कहा,—तो हम ऐसी स्त्रियों का क्या प्रबंध कर सकते हैं ?

मंत्री ने कहा,—रति-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों का मैंने अध्ययन किया है। सम्भव है मैं इसे सन्तोष दिला सकूँ। वाह्य-रति इसका परम औषध है। आगे आपकी जैसी इच्छा हो।

उस कामिनी ने कहा,—मेरा अभी विवाह किसी से नहीं हुआ है। मैं विवाह की इच्छा से ही बाहर निकली हूँ। मैंने जिस जिस वर को चुना, उसी ने मेरी प्रतिज्ञा को सुनकर मुझसे विवाह करने से इनकार कर दिया। सम्भव है मेरी उस प्रतिज्ञा तथा उसका कारण जानने की इच्छा आप को भी हुई होगी। इस लिये मैं उसे स्पष्ट किये देती हूँ।

जब मैं विवाह योग्य हुई, मेरे घर पर विवाह के पैगाम आने लगे। मेरी बहुत सी मिलनसार सखियें थीं, जिनकी गोद में एक-एक दो-दो सन्तानें खेल रही थीं। उन्होंने कहा,—तुम हमारा कहा मानो तो विवाह मत करो, नहीं तो पछताओगी। क्योंकि हमारा तुम्हारा एक ही स्वभाव है। विवाह से तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। यदि तुम्हें सन्तान की इच्छा हो तो हमसे सन्तान गोद लेकर पाल-पोष सकती हो।

तब मैंने कहा,—क्या विवाह सन्तान-सुख के लिये ही किया जाता है ? और कोई प्रयोजन नहीं ?

तब सखियों की ओर से मुझे यह जवाब मिला कि हाँ, शास्त्र

मर्यादा तो यही है, किन्तु तुम्हारी अभिलाषा भी हम समझती हैं। धर्म-मर्यादा में रहते हुए उसका पूरा होना कठिन है। क्योंकि लिखा है—"काम अष्टगुणः स्मृतः।" अर्थात् स्त्रियों में आठ गुना काम होता है। उसे दबाने के लिये अष्टगुणी कामी पुरुष की आवश्यकता है। जिसका मिलना असंभव है। धर्म-मर्यादा में एक पति से अधिक हो नहीं सकता, इस लिये काम शान्ति हो नहीं सकती। अतएव हम सब पछता रही हैं और तुम्हें सावधान करती हैं।

सखियों का ऐसा कथन सुनकर मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि जब तक मेरी इच्छा पूर्ण करने वाला कोई बर नहीं मिलेगा तब तक मैं विवाह ही नहीं करूँगी। सो बराबर कई वर्ष से अनुकूल बर की खोज में घूम रही हूँ किन्तु अभी तक जब कोई नहीं मिला तब मैंने सोचा शायद राज-दर्बार में मिल जाय। इसी लिये यहाँ आयी थी, किन्तु अष्टगुणी पुरुष··

कोका पण्डित ने बीच ही में रोककर कहा,—तुम्हारे दर्बार में आते ही प्रश्नोत्तर से मैंने निश्चय कर लिया था कि तुम हस्तिनी जाति की स्त्री हो। रहा अष्टगुणा कामी पुरुष, सो उसका मिलना नितान्त असंभव है। किन्तु तुम निराश न हो। तुम्हारी आशा पूरी हो जायगी। स्त्री की इच्छा पूरी करने के लिये अधिक कामी पुरुष की आवश्यकता नहीं, केवल कुछ क्रियाओं का ज्ञान होना चाहिये।

महाराज ने कहा,—अच्छा तो आप इसको सन्तुष्टि का साधन बतला दें।

कोका पण्डित ने रमणी से कहा,—तुम मेरी एक बात मानोगी ?

रमणी ने कहा,—हाँ मानने योग्य होगी तो अवश्य मानूँगी।

मन्त्री ने कहा,—तुम अपने सदृश्य रूप-यौवन-सम्पन्न किसी पुरुष से विवाह कर लो। मैं तुम्हारी तृप्ति उसी पुरुष से करा दूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है। यदि मैं तुम्हारी इच्छा पूरी न करा सकूँगा, तो मन्त्री पद का त्याग कर दूँगा। मुझे विवाह से पूर्व उस पुरुष को दिखा देना। अस्तु, घर का पता राज-दर्बार में लिखा दो और घर जाओ।

रमणी मन्त्री के कथनानुसार दर्बार से चली गयी।

[ ४ ]

एक वर्ष के बाद गोद में बालक लिये एक रमणी ने दर्बार में प्रवेश किया। उसके साथ एक खूबसूरत नौजवान आदमी भी था। रमणी ने महाराज को सनम्र झुककर प्रणाम किया और बोली,—महाराज की जय हो!

महाराज ने कहा,—क्या पारसाल दर्बार में आप ही आयी थीं ?

रमणी ने कहा,—हाँ महाराज! मैं ही आयी थी। आपके प्रधान मन्त्री कोकापण्डित जी की वाणी सत्य हुई। आज मैं अपनी सखियों के साथ बड़े सुख से हूँ। मेरी सखियाँ भी पंडित जी के बताये उपाय से काम ले रही हैं। उनकी भी मनोकामनायें

पूर्ण हो रही हैं। हम लोगों की एक सनम्र प्रार्थना है कि इन उपायों का प्रचार सब देश में जिस प्रकार हो सके, उसके करने की आप कृपा करें। हमारे समान अनेक दुःखित नर-नारियों का बड़ा उपकार होगा।

महाराज ने कहा,—मुझे बड़ी खुशी हुई जो आप लोगों को सन्तुष्टि हो गयी। कोकापण्डित बड़े विचारी पुरुष हैं। वे लोकोपकार के लिये कुछ उठा न रक्खेंगे।

दर्बारी लोग भी बड़े प्रसन्न हुए। उनकी श्रद्धा भी कोका पण्डित के प्रति बहुत बढ़ गयी।

[ ५ ]

कुछ वर्षों के बाद कोका पण्डित ने 'कोक मञ्जरी' नामक एक ग्रन्थ लिखकर महाराज के हाथ में दिया। महाराज ने उसे आद्योपान्त पढ़ा। पढ़कर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—कोक मंजरी के बजाय इसका नाम "कोकशास्त्र" रक्खा जाय तो अच्छा है, क्योंकि आपके 'कोक मंजरी' शब्द का तात्पर्य आपसे किये हुए अनेक मतों का संग्रह है। आपने दूसरे मतों का दिग्दर्शन अवश्य कराया है। किन्तु उनकी तरकीब और अनुभवी औषधियों का योग आपकी कृति है। इस लिये दूसरों के लिये वही शासन का बनाने वाला सिद्ध होगा। सच तो यह है कि मुझे कोकशास्त्र नाम हो अधिक प्यारा प्रतीत होता है।

कोका पण्डित ने कहा,—जैसी आपकी इच्छा। मुझे कोई एतराज नहीं।

उस दिन से यह ग्रन्थ कोकशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें जिन सुगम उपायों का वर्णन किया गया है, वह पढ़ने से ही मालूम हो सकता है। यद्यपि इनमें भी वाममर्गियों ने बहुत कुछ मेल-जोल किया, जैसे चौरासी आसन आदि। किन्तु यदि संशोधन पूर्वक काम लिया जाय तो किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती।

कोका पण्डित का यह संक्षिप्त जीवन पाठकों की भेंट किया गया। आगे कोकशास्त्र के सम्बन्ध में लिखा जायगा। शमिति।

# कोकशास्त्र का प्रयोजन

**धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।**

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सब का साधन शरीर ही है। प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह इस मल-मूत्र-वाही शरीर से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार अमूल्य रत्नों को उत्पन्न करे। जो मनुष्य इन चारों में से एक को भी धारण नहीं करता, शास्त्र-कारों ने उसका जन्म बिल्कुल ही निरर्थक कहा है। जैसे—

**धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोपि न विद्यते ।**
**अजा गलस्थनस्यैव तस्य जन्मनिरर्थकम् ॥**

मनुष्य के शरीर में जितनी भी इन्द्रियें हैं, वे किसी न किसी काम को अवश्य सिद्ध करती हैं। जैसे आँख रूप को, नाक गन्ध को, जिह्वा रस को, कान शब्द को और त्वचा स्पर्श को बतलाती है। इसी प्रकार हाथ, पाँव आदि कर्मेन्द्रियाँ भी समझ लेना चाहिये। अर्थात् सम्पूर्ण शरीर का प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों वर्गों की प्राप्ति करना है। जिस प्रकार बकरी के गले में लटकने वाले स्तन किसी भी काम में नहीं आते, ठीक उसी प्रकार उस मनुष्य का जीवन भी व्यर्थ है जो इस चतुर्थ वर्ग में से किसी का सेवन नहीं करता।

लोगों का ऐसा विचार है कि धर्म की अपेक्षा पहले अर्थ का

संग्रह करना चाहिये। क्योंकि धन से ही धर्म हो सकता है। किन्तु यह उनकी भूल है। कारण धर्म का नाश कर धन उपार्जन करने वाले का धर्म नाश कर देता है। जैसे—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मोरक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥

॥ मनुः ॥

धर्म की ही रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि रक्षा किया हुआ धर्म-रक्षा करनेवाले की रक्षा करता है और नाश किया हुआ धर्म नाश करने वाले का नाश कर देता है।

इसी लिये धर्म को सब से पहले स्थान दिया गया। धर्म का अर्थ धारण करनेवाला है। जिस प्रकार अग्नि में दाह और रूप उसका धर्म होता है, जब तक ये दोनों विद्यमान रहते हैं तब तक उसके पास शेर तक के आने की भी हिम्मत नही होती। उन दोनों के निकल जाने पर जब राख शेष रह जाती है, तब उस पर छोटी से छोटी चींटी भी पाँव देकर निकल जाती है। इसी प्रकार धर्म के रहते वस्तु की सत्ता रहती है और उसके नाश होते ही वस्तु की सत्ता का भी अभाव हो जाता है।

धर्मपूर्वक सञ्चित किये हुए धन से ही धर्म किया जा सकता है। अधर्म से उत्पन्न किये हुए धन से धर्म नहीं हो सकता! क्यों कि चोर चुराये हुए धन का यदि दान कर दे तो उसे क्या चोरी

की सजा न मिलेगी ? इस लिये धर्मपूर्वक ही धनोपार्जन करना चाहिये ।

धर्मपूर्वक जो अर्थ सञ्चित किया जाता है, उसी से सब कामनायें पूरी करनी चाहियें । जो इस क्रम से वर्त्तता है, वही पुरुष मोक्ष को प्राप्त होता है ।

काम के अर्थ इच्छा और रति लिये जाते हैं । धर्म की खोज के लिये अनेक शास्त्र लिखे गये । अर्थोपार्जन करने के लिये भी अनेक उपाय बतलाये गये । मोक्ष प्राप्ति के लिये भी अनेक साधन शास्त्रों में वर्णन किये गये । इनमें किसी को भी किसी प्रकार का विवाद एवं शंका करने की गुञ्जाइश नहीं मिली ।

किन्तु काम के सम्बन्ध में जब कभी विचार किया जाय तो इसे बड़ी उपेक्षा की दृष्टि से यह कहकर टाल देते हैं कि इसमें रक्खा ही क्या है ? यह तो सहज-प्रकृति है । यह बिना समझाये-बुझाये ही सबको आ जाता है । किन्तु देखा जाय तो उनका यह बड़ा ही अनर्गल विचार दिखायी देता है । क्योंकि जब किसी छोटे से छोटे काम को भी करने के लिये मनुष्य तैयार होता है तो उसके लिये उसे सैकड़ों सामान इकट्ठे करने पड़ते हैं । जैसे भोजन को ही ले लीलिये । क्या मनुष्य गेहूँ उबाल कर खाने से पेट नहीं भर सकता ? वह उसकी रोटी क्यों बनाता है । जब केवल नमक से ही दाल का काम चल सकता है तब छौंकने को क्या जरूरत ? गेहूँ, चना, घी, चीनी, दूध आदि पदार्थों से मनुष्य को सभी स्वाद

मिल सकते हैं, तब वह मलाई, रबड़ी, लड्डू, पेड़ा आदि अनेकों प्रकार की मिठाइयाँ क्यों बनाकर खाता है? सामान्य वस्त्र से शीत निवारण किया जा सकता है, फिर ऊनी, रेशमी आदि नाना-विध वस्त्रों की क्या आवश्यकता? सामान्य कुटिया में गर्मी, सर्दी की निवृत्ति की जा सकती है, फिर महल-अटारियों की क्या जरूरत? इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि मनुष्य प्रत्येक वस्तु का उपभोग बड़ी खूबसूरती के साथ करना चाहता है।

जब इन छोटे छोटे कामों के लिये इतने विचार की आवश्यकता है, तब इस 'काम' जैसे महत्वपूर्ण विषय की उपेक्षा करना कितनी भारी गलती है। जिस मनुष्य-शरीर के लिये समस्त दुनियाँ के प्रपंच किये जाते हैं, उसकी रचना के लिये किसी भी उच्च ज्ञान की आवश्यकता नहीं, ऐसा समझना कितनी अदूरदर्शिता की बात है!

यही कारण है कि आज छोटे से लेकर बड़े-बड़े घरानों तक में विषाद ही विषाद दिखायी देता है। एक आलीशान पक्की चित्र-विचित्र रंगों से रंगी हुई लाखों रुपयों की इमारत के अन्दर एक सुन्दर नवयौवना विवाहिता स्त्री रहती है, जिसका पति सहस्रों रुपया माहवारी कमाता है, उस स्त्री की मनमानी मांगों को पूरी करता है। अर्थात् वस्त्र, आभूषण, खाद्यपदार्थ आदि किसी वस्तु की त्रुटि नहीं करता। भोजन बनाने के लिये तथा सेवा-शुश्रुषा के लिये सेविकायें प्रस्तुत रखता है और स्वयं भी रूप-यौवन-संपन्न

अपनी पत्नी के समान ही है। इतना होने पर भी वह सुन्दरी अपने महल की सुख-शय्या को छोड़कर अंधकारमयी रात्रि में चोर की भाँति छिप-छिप कर ऐसे पर-पुरुष के पास जाती दिखायी देती है जो जाति से नीच और आचार-विहीन होता है।

उदाहरण में भर्तृहरी जी को ही ले लीजिये। उनकी रानी को राजमहलों में किस बात का कष्ट था? रहने को महल, सेवा के लिये दास-दासियाँ थीं। स्वयं उसके पति भर्तृहरी भी उसे प्राणों से अधिक प्यार करते थे। यह किसी से छिपा नहीं है। सब कुछ रहने पर भी वह रानी एक नीच जाति के सईस के साथ फँस जाती है और उससे इतना अधिक स्नेह करती है कि जो अमृत-फल महाराज भर्तृहरी को अमर करने के लिये प्राप्त हुआ था, वह फल उन्होंने अपनी स्त्री को प्रेम-विह्वल होकर खाने के लिये दे दिया था। किन्तु वह भी उसने खुद न खाकर सईस को अमर रखने के लिये दे दिया।

अब पुरुषों को लीजिये। उन्हीं सर्व-गुण-सम्पन्न अटारियों में बसनेवाले नौजवान अपनी अपूर्व सुन्दरी आज्ञाकारिणी पत्नी को छोड़कर रंडियों के कोठे पर जा पहुँचते हैं। वहाँ धन, बल, मान-मर्यादा का नाश करते हुए उन रंडियों की फटकार, जूतियें खाकर भी जबतक सर्वनाश नहीं हो जाता तबतक उसका साथ नहीं छोड़ते।

इसका क्या कारण? यह विपरीत गति क्यों दिखायी दे रही

है ? इससे साफ प्रतीत होता है कि उन दोनों की कामेच्छा पूर्ण न होने से उन्हें जहाँ-तहाँ टक्करें मारनी पड़ती हैं। अब यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि स्त्रियों का काम पुरुष से आठ-गुणा अधिक होने से पुरुष उसकी तृप्ति किस प्रकार कर सकता है। कहा है—

'काम अष्टगुणः स्मृतः ।'

इस वाक्य का अर्थ समझने में भारी भूल है। इसका यह अर्थ नहीं कि एक स्त्री आठ पुरुषों से रति कर सकती है। स्त्री की रति पूरी होने पर वह भी पुरुष के समान तृप्त हो जाती है। फिर वह आठ से तो क्या, तृप्ति हो जाने पर, तृप्त पुरुष के समान फिर एक से भी रति नहीं कर सकती।

उपरोक्त वाक्य का अर्थ यह है कि स्त्री पुरुष से अष्ट गुणा अधिक बलवती होती है, अर्थात् आठ पुरुषों की रति के बराबर बल लग जाने पर एक स्त्री की रति पूर्ण होती है। इतना बल किसी विशेष ही पुरुष में होता है। अतएव स्त्री को तृप्त करने के लिये सामान्य से सामान्य पुरुष को किन उपायों का अवलम्बन करना चाहिये, जिससे हर पुरुष हर स्त्री को रति-सुख से तृप्त करके सुसन्तान प्राप्त करा सके इसका परिज्ञान कराना इस कोक-शास्त्र लिखने का प्रयोजन है। रति-सुख के सुगम से सुगम उपाय इसमें बतलाये गये हैं।

——:*:——

# शरीर की बनावट

हड्डी, खून, मांस और खाल से हमारा शरीर बना हुआ है। सारे शरीर का मुख्य आधार हड्डियाँ हैं। इन्हीं की शक्ति पर हमारा खड़ा होना, चलना-फिरना अवलंबित है। हड्डियाँ ही हमारे कोमलांगों की रक्षा करती हैं। सिर की हड्डीयों से दिमाग और पसलियों से हृदय तथा फेफड़ों की हिफाजत होती है। डाक्टरों के सिद्धान्त से शरीर में १३८ हड्डियाँ हैं। उनका ऊपरी भाग कठिन तथा भीतरी पोला और कोमल होता है। हड्डियों के सन्धि-स्थल में मज्जा का परदा होता है। इस मज्जा को भी नरम हड्डियों में ही गिनते हैं।

दाँत भी हड्डी के ही होते हैं। छोटी उमर में पहले दुध के दाँत होते है और फिर जब बच्चा अन्न खाने लगता है तब अन्न के दाँत निकलते हैं। बच्चा पैदा होने के ६ से ८ महीने बाद दुध के दाँत निकलते हैं और वे दो-ढाई वर्ष की उमर तक पूर्ण निकल आते हैं। इनके एक-एक गिरने के बाद अन्न के दाँत निकलते हैं जो पाँच वर्ष की आयु से लेकर पचीस वर्ष की आयु तक निकलते रहते हैं।

चमड़े को छूने से बहुत जगह हमको मांस का लचलचापन मालूम होगा। मांस के इस भाग का नाम स्नायु है। स्नायुओं (पुट्ठों) द्वारा ही हम अपने हाथ सिकोड़ सकते हैं, फैला सकते

हैं, जबड़े हिला सकते हैं; आँखें बन्द कर सकते हैं।

हम इस पुस्तक में शरीर-सम्बन्धी विशेष ज्ञान का वर्णन नहीं करना चाहते। केवल समझने योग्य शरीर के मुख्य भागों पर विचार किया जायगा। सब से मुख्य भाग पाकाशय अथवा मेदा (कोठा) है। इसके क्षणभर भी आलस्य करने से हमारा सारा शरीर ढीला और शिथिल हो जाता है। मेदे पर हम जितना भार डालते हैं उतना सहने की ताकत बड़े-बड़े विक-राल जन्तुओं में भी नहीं होती। मेदा भोजन को पचाकर उसके द्वारा शरीर का पोषण करता है। इस भाग से शरीर को वही सहायता मिलती है जो रेलगाड़ी को एञ्जिन के वैलट से, मेदा पस-लियों के अन्दर बायीं ओर होता है। इसमें अनेक क्रियायें होकर भिन्न-भिन्न प्रकार के रस तैयार होते हैं और भोजन का तत्त्व खींचता है। बचा हुआ निकम्मा पदार्थ मल-मूत्र बनकर आंतों के रास्ते बाहर निकल जाता है। इसके ऊपरी हिस्से में हृदय है। मेदे के बायीं ओर तिल्ली है। यकृत पसलियों के अन्दर दाहिनी ओर है। इसका काम पित्त पैदा करना है। यह पित्त पाचन क्रिया के लिये बहुत ही उपयोगी होता है।

अब देह के आधाररूप, बहने वाले खून पर विचार करना चाहिये। खून से हमारा पोषण होता है। वह भोजन में से पोषक भाग को खींचकर निरुपयोगी भाग को मल-मूत्र के रूप में बाहर निकाल देता और सारे शरीर को गरम रखता है। खून शरीर के

अन्दर की नलियों, नसों द्वारा सदा फिरा करता है। खून की गति के कारण ही हमारी नाड़ी एक मिनट में लगभग ७२ बार चलती उछलती है। बच्चों की नाड़ी तेज चलती है बूढ़ों की सुस्त।

खून की सफाई का सबसे बड़ा साधन हवा है। शरीर में चक्कर लगाकर जो खून फेफड़ों में जाता है वह निकम्मा हो जाता है, उसमें जहरीले पदार्थ पैदा हो जाते हैं। जो हवा भीतर जाती है वह उन जहरीले पदार्थों को खींच लेती है और अपने में मिली हुई प्राणवायु खून को दे देती है। यह क्रिया सदा होती रहती है। भीतर गई हुई हवा खून के जहरीले पदार्थ लेकर बाहर निकल आती है और प्राणवायु खून में मिलाकर नसों के द्वारा सारे शरीर में चक्कर लगाया करती है। इससे समझा जा सकता है कि बाहर निकली हुई साँस कितनी जहरीली होती है। हवा का प्रभाव हमारे शरीर पर अधिक रहता है।

सामान्यतः मनुष्य उन मनुष्यों को आरोग्य समझते हैं जो खाते-पीते चलते-फिरते और वैद्यों को घर पर नहीं बुलाते। किन्तु विचार करने पर मालूम होता है कि यह उनकी भूल है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है, जो खाने-पीने आदि के सभी व्यापार करते हुए भी रोगी हैं, किन्तु अपने को रोगी नहीं समझते और साथ ही रोग की परवाह भी नहीं करते। निरोग मनुष्य संसार में बहुत ही कम हैं।

एक विदेशी लेखक का कहना है कि निरोग मनुष्य वे ही

होते हैं, जिनके पवित्र शरीर में शुद्ध मन आवास करता हो। शरीर का नाम तो मनुष्य नहीं, शरीर तो उसका निवासस्थान है। मन और इन्द्रियों का शरीर के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि एक के बिगड़ने से दूसरों के बिगड़ने में जरा भी विलंब नहीं लगता। शरीर को गुलाब के फूल की उपमा दी गयी है, अर्थात् गुलाब का फूल शरीर है और उसमें रहने वाली गन्ध उसकी आत्मा है। कागज के बने हुए नकली गुलाब के फूल की उतनी कद्र नहीं होती जितनी कि असली और सुगन्ध-युक्त की। क्योंकि सूँघने पर निर्गन्ध-पुष्प से सुगन्ध नहीं आयगी, वह केवल देखने की शोभा मात्र है। उसमें उसका असली तत्त्व गन्ध नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य गन्धहीन पुष्प को पसन्द नहीं करते, प्रत्युत फेंक देते हैं, उसी प्रकार उस मनुष्य से भी कोई प्रेम नहीं करता जो देखने में तो ऊपर से अच्छा प्रतीत होता हो और उसके भीतर के व्यवहार अच्छे न हों। चरित्र-हीन मनुष्य निरोग नहीं होते। जिसका शरीर स्वस्थ हो वह अवश्य पवित्र-मन होगा। क्योंकि मन के ही अनुकूल मनुष्य कर्म करता है उसीका प्रभाव सब शरीर पर पड़ता है। पाश्चात्य देशों में इस मत का एक पन्थ है। उसका यही सिद्धान्त है कि जिसका मन शुद्ध होता है उसके शरीर में रोग होते ही नहीं और यदि हो भी जायँ तो मनोबल के योग से हटा भी दिये जाते हैं। सार यही है कि आरोग्यता का सबसे बड़ा साधन मन ही है। अतएव मन की शुद्धि से ही आरोग्यता प्राप्त होती हैं।

तामस भाव, आलस्य और बहरापन ये सब रोग के ही लक्षण है; कई-एक डाक्टर चोरी आदि को भी रोग ही मानते हैं। विलायत में अनेक धनिक-स्त्रियाँ भी छोटा-छोटी चोरी करती पायी गयी हैं। जिनकी डाक्टरी परीक्षा करायी जाने पर, डाक्टरों ने "क्लेप्टेनिया" की बीमारी बतलायी। कोई मनुष्य स्वभाव से ही खूँखार होते हैं। उन्हें बिना खून किये चैन नहीं पड़ता। यह भी एक प्रकार का रोग है।

अब यह कहा जा सकता है कि जिनका शरीर सब इन्द्रियों से पूर्ण है अर्थात् आँख, नाक कान आदि सभी पूर्ण हैं और उनमें किसी प्रकार का विकार नहीं, अंग-प्रत्यंग सुडौल सुन्दर जिनसे किसी प्रकार की बदबू नहीं आती और मन स्वाधीन है वे ही निरोग हैं। स्वास्थ्य प्राप्त कर लेने पर भी उसका भोगना सरल नहीं। माता-पिता का रोगी होना भी हमारे रोग का कारण है। माता-पिता यदि निरोग होकर सन्तान पैदा करें तो उनकी सन्तान उनसे कहीं अधिक स्वस्थ और बलवती हो। विकाशवादी इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हैं कि रोग-रहित पुरुष को मृत्यु का भय नहीं लगता। मृत्यु से हमारा अत्यन्त डरना, यह सिद्ध करता है कि हम रोगी हैं। इस लिये ऊपर दिखाये हुए स्वास्थ्य लाभ करने का प्रयत्न हमको सदैव करना चाहिये। क्योंकि वह हमारा परम कर्त्तव्य है।

स्वास्थ्य लाभ से ही प्रकृत जीवन प्राप्त होता है, यह नियम-

सिद्ध बात है। प्रकृत-जीवन ही यथार्थ जीवन का नाम है। जहाँ असली जीवन है वहीं सुख सम्पत्ति अधिवास करती है, अन्यथा रुग्ण अवस्था में जैसा आज सार्व-भौम दुःख दिखायी देता है, उसका चित्र-पट स्पष्ट ही है।

——:*:——

# पुरुष-जननेन्द्रिय

पुरुष-जननेन्द्रिक संबंधि-ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है। शरीर से मूत्र और वीर्य निकलने का मार्ग एक ही होता है। लिंग के अग्र भाग में एक आवरण चमड़ा होता हैं, जिससे लिंग की सुपारी ढकी रहती है। वह चमड़ा बराबर आगे-पीछे हटाया-बढ़ाया जा सकता है। माता या दाइयों की असावधानी के कारण बचपन में यदि वह हटाया-बढ़ाया नहीं जाता, तो वह इतना तंग हो जाता है कि मूत्र निकलने में भी तकलीफ पहुँचाने लगता है और कभी-कभी यहाँ तक देखा गया है कि वह सड़ जाता है। इन दोनों हालतों में डाक्टर से आपरेशन कराना पड़ता है। उस चमड़े के नीचे और सुपारी की जड़ में प्राय. सफेद रंग का कीट जम जाता है। उसको हमेशा साफ करते रहना चाहिये। उसकी सफायी न रखने से बुद्धि-मन्दता और स्वप्नदोष की बीमारी हो जाती है।

इस इन्द्रिय में बेलनाकार तीन डंडे होते हैं। इन तीनों डंडों में

दो मोटे-मोटे ऊपर की ओर और तीसरा भीतर से पोला दोनों के नीचे की तरफ होता है। यही मूत्र-मार्ग है। तीनों दंडों में छोटे-छोटे आशय होते हैं, जिनमें उत्तेजना के समय रक्त भर जाता है, और लिंग ठोस और कड़ा हो जाता है। मैथुन-क्रिया के समाप्त होते ही आशयों का रक्त शिराओं से वापस लौट जाता है और फिर लिंग पूर्ववत् मुलायम हो जाता है।

——*——

# अण्डकोश

जननेन्द्रिय के नीचे एक थैली लगी रहती है। जिसमें दो मांस की गोलियें रहती हैं। ध्यानपूर्वक देखने से उनमें एक प्रकार की क्रिया होती दिखलायी देती है। यह क्रिया त्वचा के संकोच-विकाश से पैदा होती है।

सर्दी और गर्मी के कारण अण्डकोषों में संकोच-विकाश भी होता है। वृद्ध और निर्बल मनुष्य के अण्डकोष ढीले पड़ जाते हैं। कई मनुष्यों को एक ही अण्ड होता है और किन्हीं के वह भी नहीं। अण्ड-हीन मनुष्य सन्तान नहीं पैदा कर सकता। अण्डों में अधिक श्रम और चोट लगने से सन्तान उत्पन्न करने में बाधा पड़ती है। यदि बचपन में अण्ड निकाल दिये जायँ तो शरीर की वृद्धि नहीं होगी। और मूछें भी नही आयेंगी।

——:o:——

# स्त्री जननेन्द्रिय

शंखनाभ्याकृतिर्योनिस्त्र्यावर्ता सा प्रकीर्तिता।
तस्यास्तृतीये त्वावर्तें गर्भशय्या प्रतिष्ठिता ॥

शंख नाभी के समान आकार वाली, तीन लपेट से युक्त योनि होती है। उसकी तीसरी लपेट में गर्भ शय्या प्रतिष्ठित है।

यथा रोहितमत्स्यस्य मुखं भवति रूपतः।
तत्संस्थानां तथारूपां गर्भशय्यां विदुर्बुधाः ॥

रोहू मछली के मुख के समान भी गर्भाशय का आकार कहा गया है।

आभुग्नोऽग्रमुखः शेते गर्भो गर्भाशये स्त्रियाः।
स योनि शिरसा याति स्वभावात्प्रसवं प्रति ॥

गर्भाशय के मुख पर सुकड़ा हुआ गर्भस्थ बालक शयन करता है। वह स्वभाव से ही प्रसव-काल में शिर के बल योनि से बाहर निकल आता है।

इसके सम्बन्ध में पुरुषों को विशेष रूप से जानने की आवश्यकता है। कारण पुरुषों को इस सम्बन्ध का ज्ञान बहुत कम होता है। जिस स्थान पर पुरुष की जननेन्द्रिय होती है, ठीक उसी जगह स्त्री की योनि होती है। इसे ही भग कहते हैं। यह भग दो

ओष्ठ सदृश भागों के समान बना हुआ होता है। इसी लिये इसको भगोष्ठ भी कहते हैं। यह भगोष्ठ भीतरी अवयवों की रक्षा करती है। इसमें भी सफेद मैल जम जाता है। उसको साफ न करते रहने से भी अनेक बीमारियाँ पैदा होती हैं। इन भगोष्ठों के नीचे दो छोटे-बड़े छिद्र होते हैं। जो बड़ा छिद्र होता है, उसी से पुरुष का वीर्य योनि में जाता है और बच्चा भी उसी मार्ग से बाहर निकलता है, तथा मासिकधर्म भी उसी छिद्र से होता है।

दूसरा छोटा छिद्र मूत्र-मार्ग है। जो निचले छिद्र से एक डेढ़ इञ्च ऊपर होता है।

जिन स्त्रियों की योनि क्षत नहीं हुई होती, उनका योनि-मुख एक पतली खाल से ढका रहता है। पूर्ण युवती होने पर मासिक-धर्म के निकलने से वह द्वार कुछ खुल जाता है। प्रसंग के समय वह पर्दा फट जाता है। इससे स्त्रियों को दर्द भी होता है और रक्त भी निकलता है। बाज लोग पर्दे का फटा हुआ होना स्त्री-मैथुन की साक्षी मानते हैं। किन्तु कभी-कभी चोट लग जाने से भी पर्दा फट जाता है।

भगोष्ठ ऊपर से मिला और उभरा हुआ होता है। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में उस पर बाल आने लगते हैं। इन भगोष्ठों के नीचे और मूत्र-द्वार के ऊपर एक छोटा-सा अंकुर होता है, जिसे भगनासा कहते हैं। स्त्री का यह अंग पुरुष के शिश्न के समान होता है। इसमें तीन दंडों के स्थान में दो ही दंड होते हैं और

आकृति में शिश्न से बहुत छोटा होता है। लिंग पर जिस प्रकार हटने-बढ़ने वाली त्वचा होती है, वैसी ही इस पर भी होती है। मैथुनकाल में इसकी नालियों में भी रक्त भर जाता है। शिश्न और भगनासा की रगड़ से स्त्री को बहुत आनन्द मालूम होता है। मैथुन के बाद शिश्न की भाँति भगनासा का रक्त भी लौट जाता है और वह शिथिल हो जाती है।

पुरुष की शुक्र-ग्रन्थियों की तरह स्त्री के भी डिम्ब-ग्रन्थियाँ होती हैं। पुरुष के शुक्र और डिम्ब के मिलने से ही गर्भ स्थिर होता है। ये डिम्ब ग्रन्थियाँ वस्ति-गह्वर की दाहिनी-बायीं दीवारों से सटी रहती हैं। ग्रन्थि की शकल और तौल कबूतर के अंडे की तरह होती है और इसकी लम्बाई एक इञ्च तथा चौड़ाई पौन इञ्च के लगभग होती है। मोटाई आध इञ्च तथा छः से आठ माशे तक वजन होता है।

योनि का रूप एक नली के समान होता है। उसके ऊपर का सिरा गर्भाशय की गर्दन के निचले हिस्से में चारों ओर लगा होता है। उसके भीतर गर्भाशय का बाह्यद्वार रहता है। उस नली की लम्बाई लगभग तीन-चार इञ्च के होती है। उसके सामने वाली दीवार पिछली दीवार की अपेक्षा कुछ मोटी होती है। योनि का द्वार तंग होता है। भीतर कुछ फैलाकर फिर गर्भाशय के पास तंग होता है। योनि-द्वार में बहुत सी शिराएँ होती हैं, जो मैथुन-काल में रक्त से भरकर मोटी हो जाती हैं।

# गर्भाशय

योनि-मुख से मिला हुआ गर्भाशय होता है। वह वस्ति-गह्वर में ही होता है। उसके सम्मुख मूत्र-स्थान और पीछे मल-स्थान होता है। गर्भाशय के कुछ ही दूर पर दोनों डिम्ब ग्रन्थियाँ भी रहती हैं। गर्भाशय की शकल नासपाती के समान होती है। किन्तु उसका स्थूल भाग गोल होने की अपेक्षा कुछ चपटा होता है।

वस्ति-गह्वर में गर्भाशय सीधा खड़ा न रहकर मूत्राशय की ओर झुका रहता है। गर्भाशय अन्दर से पोला रहता है और उसमें भी जगह बहुत कम होती है। गर्भ धारण करने के पूर्व गर्भाशय छोटा रहता है, किन्तु गर्भ स्थित हो जाने पर वह धीरे-धीरे बढ़ जाता है। तीसरे महीने में टटोल कर देखने से प्रतीति भी की जा सकती है। सामान्यतया गर्भाशय का दिग्दर्शन कराकर अब रज और वीर्य पर विचार किया जायगा।

———*———
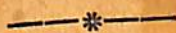
# वीर्य की उत्पत्ति

मनुष्य-शरीर के सार-तत्त्व का नाम वीर्य है। वैद्यक शास्त्र ने जीवन का मूल तत्त्व इस वीर्य को ही माना है। यह वीर्य आहार का अन्तिम तत्त्व है। आयुर्वेद का मत है:—

रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदस्यास्थिस्ततो मज्जा मज्जायाः शुक्र सम्भवः।

—सुश्रुताचार्य

अर्थात्—भोजन के पचने पर रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य पैदा होता है। इससे लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पाँच दिन-रात और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती है। बाद तीस दिन रात ओर नौ घड़ी में रस से वीर्य बनता है। ऐसा भोज तथा अन्य आचार्यों ने लिखा है। स्पष्ट रीति से यों समझना चाहिए कि मनुष्य जो कुछ आज भोजन करता है, उसका वीर्य बनने में पूरा एक महीना लगता है। इसी प्रकार और इतने ही समय में स्त्री-शरीर में रज पैदा होता है। शरीर के बलाबल के अनुसार इस समय में न्यूनाधिकता भी हो जाती है।

इसी पुरुष-वीर्य और स्त्री-रज के अधीन स्त्री-पुरुष की शारीरिक और मानसिक सारी शक्तियाँ रहती हैं। इसी के प्रभाव से ब्रह्मचारी पुरुषों और ब्रह्मचारिणी स्त्रियों का शरीर बल-वीर्य से पूर्ण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट तथा पवित्र देखा जाता है। यदि यह न रहे, तो शरीर एक क्षण भी न टिके। शरीर-स्थिति का मूल-तत्व यही है। अब यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि वीर्य की उत्पत्ति शरीर में किस अवस्था से होती है। यों तो शरीर की

उत्पत्ति ही वीर्य से होती है। अतः वीर्य-शून्य तो कभी शरीर रहता ही नहीं और न वीर्य-हीन शरीर जीवित रह सकता है। पर स्पष्ट रूप से १२—१३ वर्ष की अवस्था से शरीर में वीर्य बनने लगता है। इससे पहले शरीर में जो वीर्य बनता है, वह सब का सब शरीर की वृद्धि और उसके विकास में खर्च हो जाया करता है और किशोरावस्था के आरम्भ में वह दिखलायी पड़ने लगता है। पचीस वर्ष की अवस्था तक पुरुष-शरीर का वृद्धि-क्रम जारी रहता है। तत्पश्चात् उसमें पुष्टता आती है। इसी अवस्था में वीर्य परिपक्व भी होता है। जो मनुष्य इस अवस्था से पहले ही वीर्य-पात करना प्रारम्भ कर देता है, उसका वीर्य कभी भी पुष्ट नहीं होता ओर साथ ही उसके शरीर की बाढ़ भी मारी जाती है। अतएव पचीस वर्ष की अवस्था तक वीर्य का संचय करना अत्यन्तावश्यक है। सुश्रुताचार्य ने लिखा है—

**ऊन षोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्।**
**यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विनश्यति॥**

अर्थात्—सोलह वर्ष से कम उम्र की स्त्री और पचीस से कम अवस्था के पुरुष के रज-वीर्य से जो गर्भाधान होता है वह नष्ट हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उससे जो सन्तान पैदा होती है, वह सर्वगुण-सम्पन्न और दीर्घायु नहीं होती। यह वीर्य बहुत ही कम मात्रा में तैयार होता है। कुछ लोगों का कहना है कि ४०

ग्रास आहार से १ बूँद रक्त और ४० बूँद रक्त से १ बूँद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकों का मत है कि २ तोला वीर्य के लिए १ सेर रक्त और १ सेर रक्त के लिए १ मन आहार की आवश्यकता होती है।

अब यह बात मालूम हो गयी कि यदि निरोग मनुष्य सेर-भर अन्न रोज खाये तो ४० दिन में वह ४० सेर अन्न खा सकेगा। अतएव उसकी ४० दिनकी कमाई दो तोला वीर्य है। इस हिसाब से ३० दिन की कमाई में केवल डेढ़ तोला वीर्य ही हृष्ट-पुष्ट मनुष्य को प्राप्त होता है। ऐसे मूल्यवान पदार्थ को शरीर से निकाल देना कितना अनर्थ है। इस पर लोग पूछ सकते हैं कि जब यह इतना कम तैयार होता है, तब रात-दिन विषय करने-वालों के शरीर में यह आता कहाँ से है? प्रश्न बहुत ही ठीक है। बात यह है कि मनुष्य के शरीर में वीर्य सदा कुछ-न-कुछ तैयार रहता है। हम पहले ही कह आये हैं कि वीर्य के बिना शरीर जीवित नहीं रह सकता। दूसरी बात यह है कि रात-दिन विषय करने वाले मनुष्य का वीर्य अच्छी तरह से पकने तो पाता नहीं, वह तो अपने असली रूप में आने से पहले बाहर निकल जाता है; अतः उनके वीर्य को तो वीर्य कहना ही अनुचित है।

यहाँ पर एक बात का और उल्लेख कर देना आवश्यक है। वह यह कि बहुत लोग समझते होंगे, यदि वीर्य हमेशा बनता है; और वह आहार का अन्तिम सार है तो कुछ समय में बहुत

अधिक मात्रा में एकत्र हो जाता होगा। यदि उसे काम में न लाया जाय तो अन्ततः वह किस काम आवेगा। इसका साधारण उत्तर यही है कि आहार किये हुए पदार्थ से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेदा, मेदा से अस्थि ( हड्डी ) हड्डी से मज्जा और फिर उससे वीर्य बनता है। बाद वीर्य की भी पाचन क्रिया होती है। स्थूल भाग तो वीर्य में रहता है और सूक्ष्म भाग का 'ओज' बन जाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि सब धातुओं में सर्वश्रेष्ठ वस्तु वीर्य है और वीर्य का श्रेष्ठ भाग ओज है। इसी ओज का दूसरा नाम बल भी है। इस ओज की ज्यों-ज्यों वृद्धि होती है, त्यों-त्यों शरीर की वृद्धि होती है और इसकी न्यूनता से शरीर का नाश होता है। उत्साह, साहस, धैर्य, लावण्य, संयम, तेज, सौन्दर्य, प्रसन्नता, बुद्धि आदि इसी ओज की विभूतियाँ हैं। अधिक मात्रा में वीर्य का नाश करने वालों में ये विभूतियाँ नहीं रहतीं। यही कारण है कि हमारे शास्त्रकारों ने सन्तानोत्पत्ति के लिए छोड़कर और किसी भी अवस्था में वीर्यनाश करने की आज्ञा नहीं दी है।

——:*:——

# वीर्य का स्थान

वीर्य सारे-शरीर में फैला रहता है—इसके रहने का कोई विशेष स्थान नहीं है। जिस प्रकार दूध में मक्खन रहता है, उसी प्रकार शरीर में वीर्य। जिस प्रकार दूध को मथने से मक्खन बाहर आ जाता है, उसी प्रकार रति करने से सारी शारीरिक इन्द्रियों का मथन होकर वीर्य अंडकोष में जमा हो जाता है और 'उपस्थेन्द्रिय' द्वारा बाहर निकलता है।

——:※:——

# वीर्य में कौनसे पदार्थ हैं ?

पश्चिमी विद्वनों ने 'सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र' द्वारा वीर्य का निरीक्षण करके पता लगाया है कि पुरुष-वीर्य में एक प्रकार के अत्यन्त छोटे जन्तु होते हैं जो कि आँखों से दिखलायी नहीं पड़ते। ये जन्तु किसी बढ़िया यंत्र से स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। इन जन्तुओं के केवल सिर और पूँछ होती है। इनमें सजीव जन्तुओं के समान संचालन शक्ति और स्त्री-कोष में जाकर बच्चे का जीवन बनाने की शक्ति होती है। पुरुष-वीर्य इसी प्रकार के जन्तुओं का समूह है। डाक्टर "टाल" का कहना है कि "अबतक स्पष्टतया यह बात नहीं मालूम हो सकी है। वीर्य की बनावट जहाँतक रसायनिक क्रिया से सम्बन्ध है, उसके विषय में मैं केवल अपना अभिप्राय ही देना

उचित समझता हूँ कि प्राण-तत्व और रासायनिक पृथक्करण के तरीकों में कोई प्राकृतिक सम्बन्ध नहीं है। रसायन-शास्त्र केवल इतना ही बतलाता है कि पृथक्करण के बाद शेष क्या रहा।

सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से मालूम होता है कि पुरुष-वीर्य के ये सूक्ष्म जन्तु ही स्त्री-कोष को गर्भ-रूप में परिणत करने वाले हैं। इन जन्तुओं को नीचे लिखे नामों से पुकारा जाता है—

१—स्परमेटोजा
२—सेमिनल फिलेमेण्ट
३—जूस्पर्मस
४—सेमिनल एनेमल्क्यूल्स
५—स्परमेटोजोएड्स

इसके अतिरिक्त वैनर आदि विद्वानों ने पुरुष-वीर्य में सेमिनल ग्रेन्यूल्स नाम के दाने भी मालूम किये हैं जो कि सेमिनल फिलेमेण्ट (वीर्य कीटों) की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। शुद्ध-वीर्य, वीर्य-कीट और वीर्य के दानों से बना हुआ होता है। कल्लिकर के मतानुसार पुरुष-वीर्य का प्रत्येक जन्तु $\frac{१}{६००}$ इंच का होता है। इन जन्तुओं का अगला भाग चिपटा और गोला होता है; पिछला भाग लम्बा और पतला होता है। सिर की लम्बाई $\frac{१}{१००००}$ इञ्च और चौड़ाई भी उतनी ही होती है। इनके सिर की जड़ में एक बहुत ही नाजुक और बारीक तार भी होता है, जो इसके आकार से

तिगुना-चौगुना लम्बा होता है। यह झिल्ली से ढँका हुआ होता है। इस जन्तु का सिर भी इसी झिल्ली से ढँका रहता है। डाक्टरों ने इन जन्तुओं को सजीव माना है। जिस प्रकार मेंढक के नवजात बच्चे पानी में इधर-उधर अपनी दुम को लहराते हुए तैरते हैं, ठीक उसी प्रकार वीर्य-कीट भी वीर्य में विचरते हैं। इनकी गति सदा आगे की ओर होती है। इन्हें वीर्य-कोष की गर्मी के समान काँच की किसी गरम शीशी में डाल दिया जाय तो ये वहाँ २४ से ७२ घण्टे तक जीवित रह सकते हैं। इसी प्रकार की पिचकारी द्वारा गर्भ धारण कराया जा सकता है। मृतक मनुष्य के शुक्राशय में ये वीर्य-कीट कभी-कभी २४ घण्टे तक जीवित देखे गये हैं। जब ये कीड़े मर जाते हैं, तब इनकी दुम सीधी हो जाती है।

——:*:——

# शुद्ध वीर्य की परख

स्फटिकाभ्यं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगन्धि च।
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा।

बिल्लौरी पत्थर के समान श्वेत रंग का, पतला, चिकना और मधुर शहद की गन्ध वाला वीर्य शुद्ध होता है।

——:*:——

# रज और उसमें मिश्रित पदार्थ

जिस प्रकार पुरुष-शरीर में आहार की हुई वस्तु से वीर्य तैयार होता है, उसी प्रकार स्त्री-शरीर में आहार की हुई वस्तु से रज तैयार होता है। यह रज स्त्री-शरीर का सार है। जो स्त्री-पुरुष संयोग से या अन्य प्रकार से जितना ही अधिक रज नाश करती है, वह उतना ही निर्बल और अल्पायु हो जाती है। स्त्री-जीवन के लिए इसकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है।

पुरुषों की भांति स्त्रियों में भी अंडकोष होते हैं। फर्क इतना ही है कि पुरुषों के अंडकोष बाहर की तरफ होते हैं और स्त्रियों के भीतर की ओर। ये दोनों गर्भाशय के दाहिने-बाएँ रहते हैं। जो ऊपर बतलाया जा चुका है। पुरुष-वीर्य की भांति स्त्री-रज में भी जन्तु होते हैं। किन्तु इनका आकार पुरुष वीर्य-जन्तुओं से तिगुना होता है। ये अंडे के आकार के होते है। जिस प्रकार अंडे के भीतर सफेदी ओर जर्दी होती है, उसी प्रकार इन जन्तुओं में न्यूक्लियस और प्रोटोप्लाज्म नाम के दो पदार्थ होते हैं।

---

# शुद्ध रज की परख

शशासृक्प्रतिभं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरंजयेत् ॥

जिससे कपड़ा रंग देने पर किसी प्रकार की बदरंगी पैदा न हो, खरगोश के खून के समान लाल रंग या लाख की तरह रंगीन आर्त्तव शुद्ध रज कहाता है।

सन्तान उत्पन्न करने के लिए शुद्र वीर्य, शुद्ध गर्भाशय और शुद्ध रज की नितान्त आवश्यकता है। यदि ये शुद्ध न हों— विकार-युक्त हों, तो गर्भ रहना कठिन हो जाता है। यदि गर्भ रह भी जाता है तो सन्तान रोगी, कमजोर और अल्पायु होती है। पहले हम शुद्ध वीर्य की पहचान बतलाते हैं। जो वीर्य सफेद हो, न बहुत पतला हो और न गाढ़ा, चिकना हो, जिसमें सहद के समान गन्ध हो, जिसके स्खलित होने पर किसी प्रकार की वेदना न हो और जो पानी में डालने पर डूब न जाय उसे शुद्ध वीर्य समझना चाहिये। यदि इससे भिन्न प्रकार के लक्षण पाये जायें तो समझना चाहिए कि वीर्य में विकार है, गर्भाधान करने के योग्य नहीं है। फिर किसी अनुभवी मनुष्य से वीर्य की शुद्धि के लिए उपचार कराना चाहिए।

यह वीर्य पित्त, कफ, बात और रक्त आदि के प्रकोप से

दूषित होता है। दूषित वीर्य की सुश्रुतसंहिता में यह पहचान लिखी है:—

पित्त-दूषित वीर्य—इसमें वीर्य का रंग नीला और जर्द होता है तथा स्खलित होते समय जलन होती है।

कफ-दूषित वीर्य—यदि वीर्य का रंग सफेद हो किन्तु कुछ जर्दी लिए हुए हो तथा स्खलित होते समय हलकी सी वेदना ( पीड़ा ) हो तो उसे कफ दूषित समझना चाहिए।

वात दूषित वीर्य—यदि कुछ सुर्खी और कालिमा हो तथा रुक-रुक कर स्खलित हो तो वात दूषित समझना चाहिए।

रक्त-दूषित वीर्य—यह मटमैला और सुर्खी लिए हुए होता है। और इसमें मुर्दे की सी गंध होती है। स्खलित होते समय जलन होती है तथा एक बार में बहुत सा वीर्य निकल जाता है।

कफ-वात-मिश्रित दोष—यह दोष हो जाने पर वीर्य में गांठें पड़ जाती हैं। इसी प्रकार कफ और पित्त का दोष होने पर वीर्य मवाद ( पीप ) के समान होकर दुर्गन्ध-युक्त हो जाता है। जब वीर्य में त्रिदोष होता है, तब उसमें मल-मूत्र की सी बू आने लगती है तथा इनका कुछ अंश भी उसमें आ जाता है।

——*——

# रजोदर्शन

इसका दूसरा नाम है मासिक-धर्म । भारत की स्त्रियाँ साधारणतया १२—१३ वर्ष की अवस्था में ऋतुमती होती हैं। गर्म प्रान्तों में इससे कुछ पहले और ठंडे प्रान्तों में इससे कुछ अधिक समय में स्त्रियाँ ऋतुमती होती हैं। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि जहाँ शास्त्रकारों ने १६ वर्ष के पहले गर्भाधान करना निषेध किया है, वहाँ ८—१० वर्ष की अवस्था में ही कितनी स्त्रियों को गर्भ रह जाता है। इसका मूल कारण सामाजिक बुराई है। स्त्रियों तथा पुरुषों की अज्ञता के कारण ही यह अनर्थ होता है। बात यह है कि छोटी-छोटी कन्याओं को नीच पुरुष ऐसी बातें सिखलाने लगते हैं और बड़ी उम्र की स्त्रियाँ भी कन्याओं के सामने इस तरह की गोप्य बातें करने लगती हैं, जिसका फल यह होता है कि लड़कियाँ उचित अवस्था से पहले ही रजस्वला होने लगती हैं और कुसंगति में पड़कर दुराचारिणी हो जाती हैं।

मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम् ।
ईषत्कृष्णं विदग्धं च वायुर्योनिमुखं नयेत ॥

महीने में एक बार स्त्रियों के गुह्यस्थान से एक प्रकार का कुछ काला और दुर्गन्धयुक्त रक्त निकलता है, उसी को आर्त्तव या ऋतु कहते हैं । इस रक्त का निकलना ३ से ६ दिन तक

जारी रहता है। यदि इसके बाद भी रज का निकलना बन्द न हो तो मासिक धर्म का दोष समझना चाहिए। यह क्यों निकलता है, यह जानने के लिए पाठक-पाठिकाओं का उत्सुक होना स्वाभाविक है; बात यह है कि स्वाभाविक नियमानुसार १२—१३ वर्ष की अवस्था में बालिकाओं के गर्भाशय के भीतर रक्त का संचार होना शुरू होता है। इन दिनों गर्भाशय का मुख कुछ-कुछ खुल जाता है और रक्त योनि मार्ग से होकर बाहर निकलता है। इसको मासिक-धर्म कहते हैं, क्यों कि यह हर महीने में होता है। यह लाल रंग का और तरल होता है। इसका पहले-पहल निकलना रजोदर्शन कहलाता है और बाद उसका नाम ऋतु, आर्त्तव, रजस्वला या मासिक-धर्म हो जाता है। यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि गर्भाशय का योनि से क्या सम्बन्ध है, क्योंकि यह जाने बिना इस बात का समझना असम्भव हो जायगा कि गर्भाशय से वह आर्त्तव किस प्रकार बाहर निकलता है।

जब गर्भ-स्थिति हो जाती है, तब मासिक-धर्म बन्द हो जाता है। कितनी ही स्त्रियों को गर्भ-स्थिति में भी मासिक-धर्म होता रहता है, पर ऐसा बहुत कम देखने में आता है।

**तद्वर्षाद्द्वादशात्काले वर्तमानमसृक्पुनः ।**
**परिपक्वशरीराणां याति पंचाशतः क्षयम् ॥**

१२—१३ वर्ष से लेकर ४५—५० वर्ष की आयु तक स्त्रियों का मासिक-धर्म प्रतिमास जारी रहता है, बाद बन्द हो जाता है। फिर स्त्रियाँ गर्भ धारण नहीं कर सकतीं। इसे रजो निवृत्ति कहते हैं।

हम पहले ही कह आये हैं कि मासिक-धर्म में ऋतु-स्राव की अवधि कम से कम १ दिन और अधिक से अधिक ६ दिन है। तथा इससे अधिक स्राव का होना रोग का लक्षण है। किन्तु बहुधा ३-४ दिन ही स्राव होता है। यह मासिक-धर्म रजो-दर्शन होने के बाद २८–३० दिन पर बराबर होता रहता है। अधिक मैथुन से अथवा रोगी शरीर होने से आर्त्तव आगे पीछे भी होता है किन्तु यह बड़ा ही हानिकारक है। मासिक-धर्म ठीक महीने भर बाद होना तन्दुरुस्ती का लक्षण है, यों तो एक दिन आगा-पीछा हो जाय तो बात दूसरी है। मासिक-धर्म की गड़बड़ी से गर्भाशय भी विकार-युक्त हो जाता है। अतः ऐसी अवस्था में उपचार करना बहुत ही आवश्यक है। बहुत सी स्त्रियों को मासिक धर्म के समय कुछ पीड़ा होती है। यह भी रोग का लक्षण है। मासिक-धर्म में जरा भी वेदना नहीं होनी चाहिए। बहुधा स्त्रियाँ मूर्खता के कारण इस बात को जानती ही नहीं कि मासिक-धर्म का निश्चित समय पर होना तथा उस समय एक प्रकार की वेदना का होना भी कोई रोग है। और जो जानती भी हैं, वे इस बात को प्रकट करने में संकोच करती हैं। किन्तु यह बहुत बुरी बात है। मासिक-धर्म में जरा भी गड़बड़ी होने पर उन्हें

फौरन प्रगट कर देना उचित है और फिर सावधानी के साथ किसी अनुभवी व्यक्ति की दवा से उस गड़बड़ी को दूर कर देना उनका कर्त्तव्य है। यदि इस दोष को बहुत जल्द नहीं हटाया जाता तो स्त्री की तन्दुरुस्ती आजन्म के लिये नष्ट हो जाती है। फिर तो दुनियाँ उनके मासिक-धर्म की खराबी को जान जाती है—जिसे बतलाने में वे संकोच करती थीं, और रोग भी पुराना हो जाने पर बड़ी कठिनाई से अच्छा होता है। इस लिए प्रत्येक स्त्री का कर्त्तव्य है कि इस बात की शिकायत मालूम होने पर वह उपचार करने में जरा भी विलम्ब न करे। इस बात को अनुचित लज्जा के कारण छिपाना कदापि उचित नहीं। रोग में लज्जा किस बात की? भला जिस बात के ऊपर जीवन का सारा आनन्द, सुख और शान्ति निर्भर है, उसको लज्जा के कारण छिपा कर जीवन को चौपट करके जन्मभर कष्ट भोगना मूर्खता नहीं तो और क्या है? शरीर में व्याधि को पाल-पोस कर बढ़ाना ही मूर्खता है। शत्रुको बढ़ाना उचित नहीं। जिस स्त्रीके मासिक-धर्म में अनियमितता होती है यानी कभी दस-बीस दिन महीना भर अवधि के आगे होता है और कभी दस पाँच दिन अवधि के पहले उस स्त्री से पैदा होने वाली सन्तान कभी भी जीवित नहीं रहती—अवश्य थोड़ी अवस्था में ही मर जाती है।

स्मरण रहे कि सन्तान पैदा करने में मासिक-धर्म की नियमता प्रधान चीज है। मासिक-धर्म में स्त्रियों के शरीर का विकार

निकल जाता है। ठीक समय पर रजस्वला होनेवाली स्त्रियों का चित्त हमेशा प्रसन्न रहता है और महीने-महीने स्राव बन्द होने के बाद तो उनका काया-कल्प सा हो जाता है। उस समय उनके चेहरे पर स्वाभाविक ही रौनक आ जाती है, शरीर हल्का हो जाता है, चित्त में प्रसन्नता का समावेश हो जाता है और हृदय में अपूर्व शान्ति का स्रोत बहने लगता है। इसी से रजो-धर्म होने पर स्त्रियों को क्या करना चाहिए और क्या नहीं इस बात का महर्षियों ने पूरी ताकीद की है; जो कि आगे चलकर बतलाया जायगा। यह कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं है कि इस पर ध्यान न दिया जाय।

यह आर्त्तव रक्तमय स्राव है और गर्भाशय से निकलता है। यह रक्त की भाँति शीघ्र नहीं जम सकता। इसका रंग लाल और कुछ कालिमा लिये होता है। आर्त्तव का परिमाण सब स्त्रियों में समान नहीं होता। अधिकतर इसका परिमाण एक छटाँक से चार छटाँक तक होता है। वैद्यक ग्रन्थों ने एक दिन में इस से अधिक या कम स्राव का होना भी रोग का चिह्न बतलाया है। ऋतुमती रहने तक प्रायः स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक दशा में परिवर्तन हुआ करता है; आलस्य और अरुचि की अधिकता रहती है, कमर नितम्ब और पेडू में भारीपन रहता है।

# रजस्वला के कर्त्तव्य

ऋतुकाल में स्त्रियों को बड़ी ही सावधानी से रहने की आवश्यकता है। क्योंकि सन्तनोत्पत्ति का कार्य यहीं से आरम्भ हो जाता है। जिस प्रकार बीज डालने से पहले खेत को दुरुस्त किया जाता है, उसी प्रकार गर्भ धारण करने के पहले स्त्री को अपना मन शान्त करना पड़ता है। शास्त्रकारों का वचन है कि ऋतुकाल में स्त्रा कोई भी कार्य न करे और एकान्तवास करे। एकान्त में रहने से मन में शान्ति आती है। जिस प्रकार प्लेट लगे हुए 'केमरा' ( चित्र खींचने का यंत्र ) के सामने जो दृश्य आता है, उसी का चित्र प्लेट पर अंकित हो जाता है, उसी प्रकार ऋतुकाल से लेकर प्रसव पर्यन्त स्त्री के मन पर पड़े हुए प्रभावों का सन्तान पर असर पड़े बिना नहीं रहता। स्त्री को चाहिए कि वह तीन या चार दिन तक गृहस्थी के सब कामों से अलग रहे और शान्तिपूर्वक अच्छी-अच्छी बातों पर विचार करे। ऋतुकाल से निवृत होने के बाद स्नान करे और सब से पहले अपने स्वामी का दर्शन करे। इस के बीच में उसे ऐसे ढंग से रहना उचित है कि जिस में किसी की भी सूरत उसकी आँखों के सामने न आवे। कुछ अनुभवी विद्वानों का कहना है कि ऋतुस्नान के बाद स्त्री पहले-पहल जिसे देखती है, उसी के रूप का बच्चा उसके गर्भ से उत्पन्न होता है। कई जगह ऐसा

देखने में भी आया है। जो भी हो, इतना तो अवश्य कहा जायगा कि यह समय स्त्री के शान्तिलाभ करने का है और संसार के दृश्यों से अपने चित्त को खींच कर अपने स्वामी के प्रेम में एकाग्र करने का है। इसलिए ऋतु-स्नान के बाद पति का दर्शन करना ही उचित है।

एकान्तवास में बहुत से गुण हैं। सब से बड़ा लाभ इस से यह होता है कि अनायास ही बहुत सी बुराइयों से छुटकारा मिल जाता है। उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए बुराइयों से दूर रहना बहुत जरूरी है। लिखा है:—

आरात्रमार्त्तवदिवसादहिंसा ब्रह्मचारिणी।
शयीतदर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च॥
अश्रुपात नखच्छेद मभ्यंग मनु लेपनम्।
नेत्रयोरञ्जनं स्नानं दिवा स्वापं प्रधावनम्॥
अत्युच्च शब्द श्रवणं हसनं बहुभाषणम्।
आयासं भूमिखननं प्रवातं च विवर्जयेत्॥

ऋतुकाल में हिंसा करने वाली स्त्री की सन्तान निर्दयी और हिंसा करने वाली होती है। जो स्त्री इस समय ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करती उस के गर्भ से पैदा होने वाला बालक मूर्ख, अल्पायु और व्यभिचारी होता है। इस समय स्त्री को कुशा की शय्या पर सोना चाहिए और अपने पति का मुख भी न देखना चाहिए। मिट्टी के बर्तन में अथवा पत्तल पर खटाई, मिर्च मसालों से

मन को बुरे कामों की ओर कभी भी बहकने न दे, क्षणिक आनन्द के लिये गर्भाधान के अतिरिक्त अधिक पति-समागम न करे, ईश्वर-पर दृढ़ विश्वास रक्खे। इस प्रकार के व्यवहार से रहकर जो स्त्री तीसरे या चौथे दिन रजो-निवृत्ति होने पर शुद्ध स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहन शृङ्गार आदि से सुसज्जित हो सन्तान की कामना से पीछे कही गयी बातों पर विचार करके पति समागम करती और गर्भ धारण करती है तथा प्राचीन ऋषियों के कथनानुसार आचारण करके गर्भ की रक्षा करती है, उसकी सन्तान सर्वगुणसम्पन्ना, माता-पिता पर श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली, सुन्दर और संसार में प्रशंसा प्राप्त करने वाली अवश्य होती है, इस में किसी तरह का सन्देह नहीं है।

यदि पुत्र की कामना हो तो स्त्री को आन्तरिक प्रेम-पूर्वक अपने पति के सुखका दर्शन करना चाहिये अथवा जैसी सुन्दर सन्तान की मन में लालसा हो उसी प्रकार के अत्यन्त सुन्दर चित्र का अवलोकन करना चाहिये और उसका स्वरूप गर्भाधान होने के समय तक अपने हृदय पर अंकित कर लेना उचित है। उसे इतना ध्यान-पूर्वक देखना चाहिये कि आंखें बन्द कर लेने पर भी वह चित्र ठीक-ठीक ध्यान में आ जाय। यदि कन्या की इच्छा हो तो स्नान करने के बाद दर्पण में अपना मुख देखना चाहिये अथवा किसी सुन्दरी स्त्री या स्त्री-चित्र को देखकर अपने हृदय में अंकित कर लेना चाहिये।

---

# पति-पत्नि की योग्यता

सच्ची गृहिणी वही होती है जो घर के करने योग्य कामों को स्वयं करे और नौकरों से लेने योग्य कामों को नोकरों से ले। खाद्य पदार्थों को स्वयं बनाये। आय-व्यय का हिसाब किताब रक्खे। घर में कौन वस्तु है और कौन सी घट गयी इस पर भी ध्यान रक्खे। बालकों की सफाई, खान-पान का खयाल तथा उनकी पढ़ाई, शिक्षा आदि का प्रबन्ध करे। समय विभाग बनाकर उन्हें पढ़ाये और बुरी संगत में न जाने दे। शास्त्रीय धार्मिक शिक्षा देती रहे। वेद मन्त्र तथा नीति के शिक्षाप्रद श्लोक कण्ठ कराये। पाँच वर्ष की उमर तक बच्चे को मारे-पीटे नहीं, बल्कि प्रेम प्रलोभन से काम ले। बच्चों के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रक्खे। ऐसी कोई बात मुँह से न निकलने दे जिसका प्रभाव उन पर बुरा पड़े। ये काम सुशिक्षित विदुषी गृहि-णियों के हैं। वे जैसी चाहें वैसी सन्तान बना सकती हैं। अर्थात् त्यागी, धर्मात्मा, वीर, साहसी, योद्धा कर्मवीर बनावें या हिजड़ा, डरपोक, झूठा, लबार, लम्पट, हिंसक दुराचारी बनावें। बच्चों का यह नर-शरीर रूपी खिलौना उन्हीं की प्रतिकृति ( तसवीर ) स्वरूप होता है। जैसा वे स्वयं बनती हैं, वैसा ही सन्तान को बनाती हैं। पाँच वर्ष की आयु तक बालक का मन, बचन, शरीर आइने की भाँति स्वच्छ होता है, वहाँ तक का काल

स्त्रियों के ही साथ बीतता है। जैसा माता-पिता के संस्कार पुत्र पर पड़ते हैं वैसा ही पुत्र बनता है। इस के बाद परिवर्त्तन करना बड़ा ही कठिन है।

इस समय जैसी बिना पढ़ी-लिखी मूर्खा नारियें गृहिणी बनी हुई हैं वैसा ही दुर्दशा गृहस्थ की भी है। न घर का हिसाब-किताब ठीक है न बच्चों की हालत। हो भी कहाँ से? न तो पढ़ी-लिखी हैं न शिक्षिता। वाममार्गियों ने तो स्त्रियों को कामवासना पूरा करने का साधन मात्र समझ लिया और ऐसी कपोल-कल्पित श्रुतियें बना कर स्त्री जाति का पढ़ाना ही रोक दिया है। अर्थात्—

**स्त्री शूद्रो नाधीयाताम्।**

स्त्री और शूद्र को न पढ़ाना चाहिये। जब स्त्रियों का पढ़ाना रुक गया तब पुरुष भी मूर्ख रहने लगे। क्योंकि जैसा साँचा होगा वैसी ही चीज बनेगी। जिस समय स्त्रियों के पढ़ने का अधिकार नहीं छिना था; उस समय वीर-विदुषी ब्रह्म-वादिनी उपदेष्ट्री नारियाँ होती थीं। उस समय वैसी ही उनकी सन्तानें भी होती थीं। उसी समय के चरित्र को देख कर ही महात्मा मनु ने भरतेतर देशों को चेतावनी दी थी कि—

**एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मः।**
**स्वं स्वं चरितं शिक्षेरन् पृथ्वां सर्वमानवः॥**

डंके की चोट से सभी देश देशान्तरों को मनु भगवान ने चैलेञ्ज दिया था कि अय पृथ्वी के सम्पूर्ण मनुष्यो ! तुम अपने अपने चरितों को भारतवर्ष के उत्पन्न अग्रजन्मा ( ब्राह्मणों ) से सीखो।

उपरोक्त सिंहनाद से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस देश के शिक्षक उपदेष्टा इतने प्रबल-विद्वान् शस्त्रास्त्रवेत्ता, तार्किक, नीतज्ञ तथा सर्वशास्त्र पारंगत थे कि जिनका मुकाबिला कोई अन्यदेशीय मनुष्य नहीं कर सकता था। किन्तु आज ठीक उसके विपरीत दिखायी देता है। उनकी विद्वत्ता उन्हीं को खा रही है, उनकी नीति उन्हीं के नाश का हेतु बन रही है। जिन आर्य्य सन्तानों पर भरोसा रखकर उपरोक्त दावा किया गया था वे शिक्षा ग्रहण करने के लिये दूसरे देशों की ओर लालायित दृष्टि से देख रहे हैं। ऐसा क्यों ? क्या महात्माओं के वचन मिथ्या अभिमानपूर्वक होते हैं ? ऐसा होना सर्वथा असम्भव है। क्योंकि उन्हीं महात्मा मनु का वचन है—

**सत्यं ब्रूयात् प्रियंब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।**
**प्रियं च नान्नृतं ब्रूयादेषः धर्मः सनातनः ॥**

सत्य बोलो, प्रिय बोलो। अप्रिय सत्य मत बोलो। किन्तु प्रिय-झूठ भी मत बोलो। यही सनातन धर्म है। ऐसे महात्माओं की चेतावनी मिथ्या कैसे हो सकती है। जो मीठे झूठ

वक का भी निषेध करते हैं और कड़वे सत्य को भी झूठ के बराबर त्याज्य समझते हैं। फिर ऐसी उलटी व्यवस्था क्यों? जहाँ वीरविजेता धनुर्धर राम, कृष्ण, अर्जुन के समान हुए, वहाँ आज भीरु, डरपोक, तन-बल क्षीण आर्य्य सन्तान क्यों दिखायी दे रही है? इसका कारण स्पष्ट यही दीखाता है कि वे लोग उसी सजीवन-बूटी को पान किये थे जिसके बल को देखकर ही महात्मा मनु ने उपरोक्त सिंह गर्जना की थी। मेरा मतलब उस सजीवन-बूटी से नहीं जो यति लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने के लिये महाबली हनुमान द्वारा लायी गयी थी। मेरा तात्पर्य वेदामृतमयी शिक्षा से है। जबतक उसका प्रचार रहा तबतक भारतवर्ष सब देशों का गुरु बना रहा। जब से वैदिक ज्ञान की अवहेलना होने लगी, तब से आर्य्य सन्तान की दुर्गति होने में भी कमी नहीं रही। आर्य्य जाति के पतन का मूल कारण वेदशास्त्रानुकूल आचार-विचार का परित्याग मात्र है।

अँगरेजी सभ्यता में पले हुए मनुष्य वेद-शास्त्रों का नाम सुनते ही नीम चढ़े करेले की भाँति मुँह बिगाड़ लेते हैं। उन्हें धर्मशास्त्रों में श्रद्धा नहीं, विश्वास नहीं, यहाँ तक कि वेदादि शास्त्रों के पढ़े-लिखे विद्वानों से भी बड़ी घृणा करते हैं। यथार्थतः इसमें उनका कोई विशेष दोष नहीं। क्योंकि उन्हें उसका महत्त्व ही मालूम नहीं। जबतक किसी वस्तु के गुण-दोष का

पता नहीं लग जाता तबतक मनुष्य उसके ग्रहण व त्याग की इच्छा नहीं कर सकता। अबतक वेदों के नाम पर जो-जो मन-माने कानून बनाये गये, उनका भयंकर परिमाण देखकर ही लोगों के मन में उनके प्रति घृणा पैदा हो गयी। अन्यथा यदि शुद्ध वैदकी शिक्षा का परिज्ञान उन्हें हो जाय तो वे कभी भी विमुख रहने को तैयार नहीं होंगे। अपितु ऐसा अपनायेंगे कि अन्ध विश्वासी भी नाक रगड़ते रह जायेंगे। क्योंकि वे मान लेना ही अपना उद्देश्य नहीं समझते प्रत्युत् उस पर अमल करना भी अपना कर्त्तव्य समझते हैं। किसी कवि ने ठीक कहा है—

शास्त्राण्यधित्यापि भवन्तिमूर्खाः,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणाम्,
न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।

शास्त्रों को पढ़कर भी मनुष्य मूर्ख हैं, यदि वे पढ़े हुए के अनुसार आचरण नहीं करते। जिस प्रकार रोग के लिये उत्तम से उत्तम सोची हुई औषध नाम लेने मात्र से रोग को दूर नहीं कर सकती, जब तक कि वह सेवन न की जाय। शास्त्रों के वचन व्यर्थ हैं, जब तक उन पर आचरण न किया जाय। वेदों को ठुकरा देने से ही आज भाई-भाई में विरोध पिता-

पुत्र, माँ-बेटी, बहन-भाई चचा-भतीजा स्त्री-पुरुष, जहाँ-तहाँ सभी जगह ऐसा विरोध फैला हुआ है कि जिस किसी का हक-बेहक छीन लेने के लिये प्राण की बाजी लगाये हुए हैं। वेद का सच्चा उपदेश ग्रहण करने से भाई-भाई में भरत-राम, पिता-पुत्र में दशरथ राम, स्त्री-पुरुष में सीता-राम, ऐसे-ऐसे अनेकों दृष्टान्त वैदिक काल के इतिहास में पाये जाते हैं।

दाम्पत्य-जीवन में पदार्पण करने वाले स्त्री-पुरुषों की योग्यता का वर्णन वेद में कैसा सुन्दर किया गया है।

**आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भान्तः। तं रात्रीस्तस्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयति देवाः॥**

आचार्य्य ब्रह्मचारी का उपनयन संस्कार कर गर्भ में रखता है। तीन रात तक उसे उदर में रखकर उसका भरण-पोषण करता है। उस ब्रह्मचारी को बड़े-बड़े विद्वान देखने के लिये आते हैं।' 'गर्भ' 'उदर' और तीन रात्रि से तात्पर्य्य गुरुकुल के नियमों में बँधकर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, अर्थात् विद्याव्रत-स्नातक, व्रतस्नातक, विद्यास्नातक, तीनों प्रकार के ब्रह्मचर्यों से है।

उत्तम ब्रह्मचारी—जो सम्पूर्ण वेदों को सांगोपांग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए पूरा करे।

मध्यम ब्रह्मचारी—जो दो वेदों को सांगोपांग ब्रह्मचर्य्यपूर्वक समाप्त करे।

निकृष्ट ब्रह्मचारी—जो एक वेद को सांगोपांग ब्रह्मचर्य्यपूर्वक समाप्त करे।

ये तीनों प्रकार के क्रम से ४८, ३६, २४, वर्ष के ब्रह्मचारी होते हैं। क्योंकि एक-एक वेद के पढ़ने में बारह-बारह वर्ष व्यतीत होते हैं। इसी मन्त्र के भाव को लेकर महात्मा मनु ने भी कहा है—

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं चापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

अर्थ—अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सम्पूर्ण वेदों को अथवा एक वेद को भी यथाक्रम पढ़कर गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करे।

उत्तम ब्रह्मचारी विद्वानों में बैठा हुआ कैसा प्रतीत होता है।

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोतिष्ठत्त-
प्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ अथर्व ॥

ब्रह्मचारी समुद्र के समान गंभीर, बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर, महातप को करता हुआ वेद-पठन, वीर्य निग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर, यथाविधि सम्पूर्ण विद्या में स्नान करके विद्याओं की सुन्दरता से सौन्दर्य

युक्त होके, पृथिवी में अनेक शुभ गुण कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है।

ब्रह्मचारी तीन समिधा लेकर गुरु के पास जाता है। उस समित्पाणि ब्रह्मचारी की कितनी सुन्दर उत्कृष्टता वेद में कही है—

**इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा-पिपर्त्ति ॥ अथर्व ॥**

तीनों समिधा उपलक्षण मात्र है। यथार्थतः पहली समिधा तात्पर्य है पृथिवी—अर्थात् भूगर्भ सम्बन्धी ज्ञान और दूसरी से द्युलोक की गति-विधि का ज्ञान तथा तीसरी से अन्तरिक्ष सम्बन्धी ज्ञान अर्थात् नक्षत्रादि सभी लोक लोकान्तरों के सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान को प्राप्त करने के लिये वह गुरु से प्रार्थना करता है। गुरु की कृपा से जब वह सम्पूर्ण ज्ञानों से परिपूर्ण हो जाता है तब वह स्वयं आनन्द पाता हुआ दूसरों को भी आनन्दित करता है।

**ब्रह्मचर्येति समिधा समिद्धा काषणं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रु।**
**स सद्यःएति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत ॥ अथर्व ॥**

जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर, दीक्षित होके ( दीर्घश्मश्रुः ) ४० वर्ष तक दाढ़ी मूँछ आदि पंच केशों का धारण करने वाला ब्रह्मचारी होता है, तब वह पूर्व समुद्ररूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके कुरुकुल से उत्तर समुद्र अर्थात् गृहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है। वह सब लोगों को संग्रह करके बराबर पुरुषार्थ और जगत को सत्योपदेश से आनन्दित कर देता है।

जिस प्रकार पुरुषों को ब्रह्मचर्य्य और सविद्याओं के धारण करने का अधिकार वेद में है, उसी प्रकार स्त्रियों को भी वेद की आज्ञा है कि—

**ब्रह्मचर्येण कन्या युवान विन्दते पतिम् ॥ अथर्व ॥**

ब्रह्मचर्यपूर्वक कन्या युवा-पति को प्राप्त करती है।

स्त्री और पुरुष दोनों जब समान बल-वीर्य और विद्यादि शुभ गुण कर्मों से युक्त हो तब वे विवाह के योग्य होते हैं। इस मन्त्र में कैसा उत्तम युवा-युवती का परिणय काल कहा गया है।

**तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः। स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायनिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ऋग्वेद ॥**

अर्थ—जो ( मर्मृज्यमानाः ) उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त ( प्रवतयः ) बीसवें वर्ष से चोबीसवें

वर्ष वाली युवती है। वे कन्यायें जैसे ( आपः ) जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती है वैसे ( अस्मेराः ) हमको प्राप्त होने वाली अपने अपने प्रसन्न अपने से ड्योढ़े वा दूने आयु वाले ( तम् ) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभ लक्षण युक्त ( युवानम् ) जवान पति को ( परियन्ति ) अच्छे प्रकार प्राप्त होती है ( सः ) वह ब्रह्मचारी ( शुक्रेभिः ) शुद्ध गुण और ( शिक्वभिः ) वीर्यादि से युक्त हो के ( अस्मे ) हमारे मध्य में ( रेवत् ) अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और ( दीदाय ) अपने तुल्य युवति स्त्री को प्राप्त होवे जैसे ( अप्सु ) अन्तरिक्ष वा समुद्र में ( घृतनिर्णिक् ) जल को शोधन करने हारा ( अनिध्मः ) आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम, बाहर अप्रकाशमान और भीतर सुप्रकाशित रहकर उत्तम सन्तान एवं अत्यन्त आनन्द को गृहस्ताश्र में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें। ठीक इसी वेदमंत्र का भाव लेकर मनु भगवान् कहा है:—

उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्विचक्षणः॥
काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥
त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वन्तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

यदि माता पिता कन्या का विवाह करना चाहें तो अति उत्कृष्ट शुभगुण-कर्म-स्वभाव वाले, कन्या के सदृश्य रूप लावण्यादि गुणयुक्त वर ही को चाहें। वह कन्या (वर) माता की छः पीढ़ी के भीतर भी हो, तथापि उसी को कन्या देना अन्य को कभी न देना कि जिस से दोनों अति प्रसन्न होकर गृहाश्रम की उन्नति और उत्तम सन्तानों की उत्पत्ति करे ॥ १ ॥ चाहे मरण-पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के भी बैठी रहे। परन्तु गुणहीन असदृश अनमेल दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे और वर कन्या भी अपने आप स्वसदृश के साथ ही विवाह करें ॥ २ ॥ जब कन्या विवाह करने की इच्छा करे तब रजस्वला होने के दिन से तीन वर्ष को छोड़ के चौथे वर्ष में विवाह करे अर्थात् ३६ बार रजस्वला होने के बाद विवाह में पदार्पण करना चाहिए। वेद विरोधी वाममार्गियों ने निम्न कल्पित श्लोक बनाकर उलटी ही गंगा बहा दी और आर्यजाति का मूल ही तिरोहित कर दिया—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
माता तस्या पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥

अर्थ—आठ वर्ष की पुत्री का नाम गौरी, नौ वर्ष की

का रोहिणी और दस वर्ष की का कन्या, उसके बाद रजस्वला। माता पिता और बड़ा भाई यदि कन्या को रजस्वला देख लें तो वे तीनों नरक को जाते हैं।

"प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्" के न्याय से साफ मालूम हो रहा है कि इन उपरोक्त श्लोकों के प्रचार ने तीनों को ही नहीं वरन आर्यसन्तान मात्र को आज नरक में ढकेल दिया है। न इन श्लोकों का प्रचार होता और न आज ऐसा रौरव-नरक देखना पड़ता।

गर्म देशों में प्रायः तेरह-चौदह वर्ष की आयु में कन्यायें रजस्वला होने लगती हैं। मनुस्मृति के आदेशा-नुसार छत्तीस बार रजस्वला होने पर अर्थात् तीन वर्ष और जोड़ देने से सोलहवें वर्ष के बाद सत्रहवें वर्ष की आयु विवाह योग्य सिद्ध होती है और शीत प्रधान देशों में जहाँ जितनी न्यूनाधिक शीत पड़ती है वहाँ उसी के अनुसार रजस्वला होती हैं। अर्थात् कहीं सत्रह और कहीं बीस वर्ष की आयु से रजोधर्म आरम्भ होकर तीन वर्ष के बाद विवाह योग्य तैयार होती हैं।

इसी लिये वेद, स्मृति आदि धर्मशास्त्रों ने आयु की कैद वर्षों द्वारा न दिखाकर रजस्वला होने के तीन वर्ष बाद दिखायी है।

शरीर ज्ञान के विज्ञाताओं ने वेदानुकूल जो समय कम से कम निश्चय किया है। वह बड़ा ही उत्तम और सुपरीक्षित है, जैसे सुश्रुताचार्य सुश्रुत संहिता में लिखते हैं—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥
ऊन षोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं गर्भस्थः स विपद्यते ॥
जातीवा न चिरं जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

पचीस वर्ष का पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री परस्पर
सहवास कर सकते हैं। क्योंकि वे दोनों उस समय पूर्ण जवान
हो जाते हैं। उन दोनों का वीर्य परिपक्व और अङ्ग-प्रत्यङ्ग
परिपुष्ट एवं दृढ़ हो जाते हैं। इस अवस्था में दोनों का समान
बल, भावी सन्तान के लिये बड़ा लाभकारी होता है। सन्तान
बलिष्ट और निरोग पैदा होती है। उपरोक्त अवस्था से कम आयु
वाले स्त्री-पुरुष में सम्बन्ध होने पर गर्भ नहीं ठहरता अर्थात
रह-रह कर गिर जाता है। रह भी गया तो बच्चा गर्भ में ही मर
जाता है। यदि किसी प्रकार पैदा भी हो गया तो दीर्घजीवी नहीं
होता। आजीवन रोगी दुर्बलेन्द्रिय ही रहता है। अतएव छोटी
अवस्था वाली स्त्री के साथ मैथुन न करना चाहिये। इसमें स्त्री-
पुरुष और सन्तान तीनों का ही कल्याण है।

किसान उस अन्न को खाता है जिसे धनीमानी छू नहीं
सकते, यहाँ तक कि अमीरों के घोड़े कुत्ते भी उससे कहीं
अच्छा खाना पाते हैं। इसी लिए नागरिक लोग किसान को

गँवार तथा मूर्ख बतलाते हैं। इसमें सन्देह नहीं जो अनाज उसकी पैदा की हुई सफल में सब से घटिया प्रायः शहर में न बिकने लायक होता है वह उसी को बड़े प्रेम से खाकर निर्वाह करता है। गाय भैंस का दूध जो उसके घर में होता है, वह उसे कभी नहीं पीता प्रत्युत बेंच कर दाम खड़े कर लेता है और यदि न बिका तो उसको जमाकर उसका घी निकाल कर बेंच देता है। मट्ठा (छाँछ) स्वयं बाल-बच्चों समेत पीता है। चौबीस घण्टा लगातार महीनों परिश्रम करने के बाद जो वस्तु पैदा की जाय, भोजन के समय उसका निष्कृष्टतम (खराब) भाग काम में लाया जाय यह बुद्धिमान्द्य नहीं तो और क्या है? किन्तु वही मन्द-बुद्धि किसान जिस समय खेत बोने का समय आता है, उस समय खेत की भूमि मुलायम बनाने के लिये हल चलाता, पटरा फेरता और सब भूमि समान कर डालता है। जब तक जमीन बोने योग्य नहीं हो जाती तब तक उसमें बीज नहीं बोता। जब भूमि तैयार हो जाती है तब जो बीज घर में से निकलता है। वह बीज उसकी फसल का सब से अच्छा, पुष्ट मोटा भरा हुआ चमकीला गठा हुआ अनाज होता है, जिसे वह प्राणों से भी बढ़कर सँभाल कर रखता है। यहाँ तक कि कर्ज काढ़ कर खायेगा किन्तु उसे नहीं छुएगा और उसकी बड़ी रक्षा करेगा। यदि घर में न हो तो बाजार से एक रुपये का एक डेढ़ दो सेर तक मँहगे से मँहगा खोज-खरीद

कर बोयेगा, सस्ता नहीं। ऐसा क्यों? उससे पूछिये। वह साफ कह देगा कि भविष्य में होने वाली मेहनत-मसक्कत इसी पर निर्भर है, यदि इस में किसी प्रकार की कोतायी की जायगी तो आने वाले साल में भूखों मरना पड़ेगा। यदि बीया अच्छा नहीं होगा तो फसल कहाँ से अच्छी होगी। इसी पर तो फसल का दारोमदार है। जब गाय भैंस गाभिन कराने का समय आयेगा तब भी अच्छे से अच्छा हृष्ट-पुष्ट मजबूत साँड ढूँढ़ा जायगा। इस विषय में अनाड़ी से अनाड़ी ग्रामीणी भी एक मत है फिर बुद्धिमानों का तो कहना ही क्या? किन्तु बड़े खेद की बात है, जो मनुष्य इतना बुद्धिमान बनता है वह अपनी सन्तान के लिए कुछ भी विचार नहीं करता। मनुष्य होकर इसने क्या विशेषता की, इससे तो पशु भी अच्छे हैं, जो समय आने पर ही सन्तानोत्पत्ति की चेष्टा करते हैं। उनकी सन्तान कैसी हृष्ट-पुष्ट सुन्दर फुर्तीली और तन्दुरुस्त होती है। सुन्दर निरोग और बलिष्ट सन्तान बनाने के लिये ही वेदशास्त्रों ने विवाह का समय विभाग किया था। जिसका दिग्दर्शन ऊपर किया जा चुका है।

———

# विवाह

विवाह का क्या अर्थ है यह जानना परम आवश्यक है। "वि" पूर्वक "वह" प्रापणे धातु से विवाह शब्द बनता है। जिसका अर्थ है—वर-कन्या दोनों का मिलकर विशेष रूप से गृहस्थ धर्म का पलन करने के लिए, प्रेम तथा श्रद्धा पूर्वक एक दूसरे को अन्तःकरण से स्वीकार करना—अर्थात् पति-पत्नि परस्पर एक दूसरे के सुख दु ख को अपना सुख दुःख समझते हुए, प्रेम भाव से गृहस्थ-सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करें। यह तभी हो सकता है जब दोनों में सच्चा प्रेमभाव हो। सच्चे प्रेम की उत्पत्ति एक दुसरे के गुण दोष जानने के बाद ही होती है। इसी लिए विवाह के पूर्व जन्मपत्री अर्थात् जीवनचर्या ( विद्या, बल, बुद्धि, आयु और चरित्र ) मिलायी जाती है। भूल इतनी ही है कि जन्म-दिन के ही गृह-दोष मिलाये जाते हैं। चाहिए जन्म से लेकर विवाह काल तक के गृह-दोष मिलाना। लोग गृह-दोष के स्थान पर ग्रह-दोष मिलाते हैं, यथार्थ में चाहिए गृह-दोष। जो मनु भगवान ने मनुस्मृति में दिखलाये हैं। हम पहले गुण दिखाकर फिर दोष भी दिखायेंगे—

**गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः।**
**उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्वितान्।**
**असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।**

सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥
अव्यङ्गाङ्गी सौम्यनाम्नीं हंस वारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥
॥ मनु ॥

अर्थ—यथावत् उत्तम रीति से ब्रह्मचर्य और विद्या को ग्रहण कर गुरु की आज्ञा से स्नान करके, ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपने वर्ण की उत्तम लक्षण युक्त स्त्री से विवाह करे ॥ १ ॥ जो स्त्री माता का छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो, वही द्विजों के लिये विवाह करने में उत्तम है। जिसके सुन्दर अंग, उत्तम नाम, हंस और हस्तिनी के सदृश चालवाली, जिसके सूक्ष्म लोम, सूक्ष्म केश और सूक्ष्म दाँत हों, जिसके अंग कोमल हों, उस स्त्री से विवाह करे। इस प्रकार विवाह योग्य वर-कन्या के गुण, कर्म और स्वभाव मिला लेने चाहियें। इसके अतिरिक्त जो त्याज्य दोष हैं वे भी आगे दिखाये जाते हैं। जिन दोषों का त्यागना परम आवश्यक और रहना बड़ा खतरनाक है।

चाहे वे घर या खानदान बड़े धन-धान्य से परिपूर्ण गौ भैंस घोड़ा हाथियों से भरे हुए भी क्यों न हों, विवाह में ये दश कुल त्याग ही देने चहिये—

महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामय्याव्यपस्मारिश्वित्रि कुष्ठिकुलानि च ॥
नोद्वहेत कपिलां कन्यां नाधिकांगीन रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥
नक्षवृक्षनदी नाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्य नाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥

अर्थ—१ पहला जिस कुल में उत्तम क्रिया न हो । २ दूसरा—जिस कुल में कोई उत्तम पुरुष न हो। ३ तीसरा - जिस कुल में कोई विद्वान न हो। ४ चोथा—जिस कुल में शरार के ऊपर बड़े बड़े लोम हों। ५ पाँचवाँ—जिस कुल में बवासीर हो। ६ छठाँ जिस कुल में क्षयी ( राजयक्ष्मा ) रोग हो, ७ सातवाँ—जिस कुल में अग्निमन्दता से आमाशय रोग हो। ८ आंठवाँ -जिस कुल में मृगी रोग हो । ९ नोवाँ—जिस कुल में श्वेत कुष्ठ और दशवाँ—जिस कुल में गलित कुष्ठ आदि रोग हों, उन कुलों की कन्या अथवा उन कुलों के पुरुषों से विवाह कभी न करें। पीले वर्ण वाली, अधिक अंग वाली जैसे छंगुली आदि रोगवती, जिसके शरीर पर कुछ भी लोम न हों और जिसके शरीर पर बड़े-बड़े लोम हों, व्यर्थ अधिक बोलने वाली और जिसके पीले बिल्ली के सदृश्य नेत्र हों। तथा जिस कन्या का ( ऋक्ष ) नक्षत्र पर नाम अर्थात रेवती रोहिणी इत्यादि ( नदी ) जिसका गंगा, यमुना इत्यादि ( पर्वत )

जिसका विन्ध्याचला इत्यादि ( पक्षी ) पक्षी पर अर्थात् कोकिला हंसा इत्यादि ( अहि ) अर्थात् उरगा भोगिनी इत्यादि ( प्रेष्य ) दासी इत्यादि और जिस कन्या का ( भीषण ) कालिका चण्डिका इत्यादि नाम हों उससे भी विवाह न करे। इन त्याज दोषियों का सर्वथा त्याग कर देना ही उत्तम है।

इस उपरोक्त विधि से परीक्षित स्त्री पुरुषों के परस्पर विवाह होने पर ही सच्चा दाम्पत्य सुख मिल सकता है, अन्यथा नहीं।

——:०:——

## पुरुष भेद

चत्वारः पुरुषा ब्रह्मन्नामानि च यथाक्रमम्।
शशो मृगो वृषश्चैव चतुर्थस्तु ‌‌गस्तथा ॥

शशक, मृग, वृषभ और अश्व ये चार प्रकार के पुरुष माने गये हैं।

——०——

## शशक पुरुष

अल्पाहाराल्पदर्पा लघुसुरतरताः शौचभाजो धनाढ्याः। मानोदीर्णाः शशाःस्युः सुरभिरतजलाः कान्तिमन्तःसहर्षाः ॥

अल्पाहारी. अहंकार रहित, सम्भोग में जल्दी तृप्त होनेवाला, धनवान, कान्तिवान, हमेशा प्रसन्न रहने वाला, शशक पुरुष कहलाता है।

**आताम्रस्फारनेत्रा लघु समदशना वस्तु लास्याः सुवेषाः। मृद्वारक्तं वहन्तः करमतिललितं श्लिष्ट शाखं सुवाच॥ वृत्तव्यालोललीलाः सुमृदुशिरसिजा नातिदीर्घावहन्तो। ग्रीवां जानूरुहस्ते जघन चरणयो-र्विश्रुतः कार्श्य मुच्चैः॥**

बड़ी और सुर्ख आँख वाला, छोटे किन्तु समान दाँत वाला, तिल मुख और सुन्दर प्रकृति वाला विच्छिन्न उगुलियों वाला सुन्दर मुलायम और लाल हाथ वाला निरन्तर भोग की इच्छा रखनेवाला, और जिसके सिर के बाल मुलायम हों, तथा जिसकी गर्दन चोड़ी और नाटी हो, जिसके हाथ, पाँव तथा जंघायें लम्बी हों, उसे शशक पुरुष जानो।

**मृदुवचनसुशीलः कोमलाङ्गः सुकेशः।**
**सकलगुणनिधानः सत्यवादी शशोऽयम्॥**

मीठा बोलने वाला, सुशील, कोमलाङ्गी, सुन्दर केश वाला, सर्व गुण सम्पन्न सत्यवादी शशक पुरुष कहलाता है।

**न खर्वो नातिदीर्घश्च गुरुद्विजपरायणः।**
**विमुखः परपारेषु सदा परहिते रतः॥**

न बहुत छोटा, और न लम्बा सामान्य कद वाला, ब्राह्मण और गुरु-भक्त, परायी औरत को न चाहने वाला, परोपकारी, स्वभाव वाला शशक पुरुष कहलाता है।

साधू-ां सङ्गमे चैव अनुगामी समुत्सुकः।
लक्षणैर्लक्षितः श्रीमान् शशोऽयं देवपूजकः॥

सत्पुरुषों की संगति करने वाला, सदाचारयुक्त, धनवान देवताओं का पूजक शशक पुरुष कहाता है।

गम्भीर वचनः शान्तः न पापे विद्यते मनः।
इतिते कथितं ब्रह्मन् शशकस्य च लक्षणम्॥

गम्भीर वचन बोलने वाला, शान्ति-प्रिय, हमेशा पाप से दूर रहने वाला शशक पुरुष कहाता है।

——:o:——

## मृग पुरुष

वदति मधुरवाणीं दीर्घनेत्रोऽतिभीरु-
श्चपलमतिसुदेहः शीघ्रवेगो मृगोऽयम्॥

विशाल नेत्र, मधुर भाषी, अत्यन्त डरपोक, बुद्धि-चपल, सुन्दर शरीर वाला, तथा शीघ्र दौड़ने वाला पुरुष मृग संज्ञक कहाता है।

स्मितास्यः स्निग्धगात्रश्च बह्वाशी बलवान्सदा।
नृत्यगीतप्रियो ब्रह्मन् मृगोऽयं पुरुषः स्मृतः।

चिकनी देह वाला, हँसमुख, बहुभक्षी, बलवान, नृत्य और गान को चाहने वाला, मृग पुरुष कहाता है।

भवति कमलनेत्रः पद्मगन्धः सवेषः।
उपकृतिपरधीरो नित्यमोदी मृगोऽयम्॥

कमल-नयन, कमल के समान गन्धवाला, सुन्दर वेष-भूषा वाला, धीर, परोपकारी हमेशा आनन्द में रहने की इच्छा वाला पुरुष मृग संज्ञक होता है।

मृगस्येव महाभाग, दृष्टि स्यात् चपला सदा।
बहाशी गुरुदेवेषु भक्तिमान् नियतं भवेत्॥

जिसकी दृष्टि चञ्चल मृग के समान हो, बहुत भोजन करने वाला, ईश्वर भक्त, गुरु भक्त, मृग पुरुष कहाता है।

---

## वृषभ पुरुष

खेलत्सिंहपदक्रमा मृदुगिरः
पीड़ासहास्त्यागिनो
निद्रासक्तिभृतस्त्रपा विरहिता
दीप्ताग्नयः श्लेष्मलाः
मध्यान्ते सुखिनोऽतिमज्जवपुषः
सद्धार मेदोऽधिकाः
सर्वस्त्री सुभगा नवांगुलमितं
लिङ्गं वृषोबिभ्रति॥

खेलते हुए शेर की तरह जिसकी सुन्दर चाल हो, मधुरभाषी, त्यागी, अधिक सोने वाला, लज्जा विहीन, अग्नि समान तेजस्वी कफ प्रकृतिक शरीर वाला, मध्यान्त अवस्था में सुखी, चर्बी से स्थूल देह वाला, स्त्री मात्र को प्यारा, तथा जिसका नौ अंगुल लम्बा गुप्त अंग हो वह वृषभ जाति पुरुष कहाता है।

बहुगुणबहुबन्धुः शीघ्रकामो नताङ्गः।
सकलरुचिरदेहः सत्यवादी वृषोऽयम्॥

गुणी, बहुत कुटुम्ब वाला, अति कामी, कोमलांगी, सुडौल शरीर वाला, सत्यवादी, वृषभ पुरुष कहलाता है।

शरीरे पूगगन्धिः स्यात् जिह्वा दीर्घा तथा भवेत्।
यस्य नरस्य हे ब्रह्मन् वृषः स परिकीर्त्तितः॥

जिसके शरीर से सुपारी के समान गन्ध आती हो। लम्बी जबान वाला मनुष्य, वृषभ कहलाता है।

नारी दर्शनमात्रेण यस्योद्दुत्फुल्लमानसः :
बिभेति न च पापेभ्यो वृषः स परिकीर्त्तितः॥

जिस मनुष्य का नारी को देखने मात्र से मन प्रफुल्लित हो जाय, और जो पाप करने से न डरे, वह वृषभ पुरुष कहाता है।

शोभनाङ्गो नताङ्गश्च तथा भूरि कुटुम्बकः।
गुणवान् शीलवांश्चैव वृषोऽयमीदृशोमतः॥

अधिक कुटुम्ब वाला, शोभनांग, गुणवान और शीलवान, नाटा मनुष्य वृषभ संज्ञक होता है।

हस्वौ च चरणौ यस्य हृष्ट-पुष्ट-कलेवरः।
योऽसौ लज्जाविहीनश्च, वृषः स परिकीर्त्तितः॥

हृष्ट-पुष्ट मजबूत शरीर वाला, तथा जिसके छोटे-छोटे पाँव हो और लज्जा-विहीन पुरुष वृषभ के समान होता है।

——:——

## अश्व पुरुष

काष्ठतुल्यवपुधु ष्टो मिथ्याचारश्च निर्भयः
कर्कशो दीर्घदेहश्च दरिद्रस्तु हयो मतः॥

काठ के समान कठोर शरीर वाला, झूठा, मिथ्या व्यवहारी निर्भय, धनहीन, लम्बा कद्दावर मनुष्य अश्व संज्ञक होता है।

वक्त्रश्रोत्रशिरोधराधर रदै-
रत्यन्त दीर्घैः कृषैः,
ये स्युः पीवर कक्ष मांसल भुजाः
स्थूलज्जु सान्द्रैः कचैः
प्रौढ़ष्ये कुटिलाङ्गजानु सुनखाः
दीर्घांगुलि श्रण्योः
दोर्घास्फार विलोल लोचन भृतः
प्रौढ़ाश्च निद्रालसाः।

टेढ़े मुख वाला, जिसके कान, ओठ, तथा पतले दाँत हों, मोटी बाँह, घने सीधे बाल, टेढ़ी जाँघ, सुन्दर नख, लम्बी उँगलियों वाला,

मधुर भाषी, ईर्षालु स्वभाव वाला जिसकी आँखें चञ्चल विशाल हों, और अधिक सोना पसन्द करता हो, उसे अश्व संज्ञक पुरुष कहते हैं।

गम्भीरांमधुरां गिरं द्रुतिगतिं
पीनोरुकौ विश्रुतो,
दीप्ताग्निप्रमदारताः शुचिगिरो
रेतोस्थिधातूज्ज्वला।
तृष्णार्त्तां नवनीतशीत बहुल
च रस्मरांबुद्रवा,
लिङ्गैर्द्वादशकांगुलैर्निगदिता
अश्वाः समोरस्थलाः॥

गम्भीर, मधुर बोलने वाला, शीघ्रगामी, मोटी जाँघों वाला दीप्ताग्नि स्त्रियों में रत रहने वाला, सत्य प्रिय, जिसका वीर्य हड्डी से अधिक सफेद हो, सम वक्षस्थल वाला, पुरुष अश्वसंज्ञक होता है।

स्थूलाङ्गश्चोग्रभावश्च निद्रां न भजते क्वचित्।
दिवा-रात्रि सदा तिष्ठेत् नारी दर्शन-लालसः॥

स्थूल शरीर और उग्र स्वभाव वाला, कम सोने वाला, दिन-रात स्त्रियों की लालसा करने वाला अश्वसंज्ञक पुरुष कहाता है।

कृष्ण वर्णो महापापी पर निन्दा-परायणः।
तापितः स्मरबाणेन हयो धर्म विवर्जितः॥

रंग का काला, महापापी, दूसरों की निन्दा करने वाला, काम बाण से सताया हुआ, धर्म हीन, अश्व-संज्ञक पुरुष कहाता है।

# देवादि पुरुष भेद

देवगन्धर्वयक्षाणां ये राक्षसपिशाचयाः ।
लक्षणैः संयुतास्ते स्युर्नरास्तैरेव नामभिः ॥

देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशाच ये पाँच लक्षणों वाले पुरुष इन्हीं नामों से पुकारे जाते हैं ।

—:०:—

# देव पुरुष

सत्यप्रिय, बलवान. ज्ञानी, दानी और मधुर बोलने वाला, पवित्र सुन्दर, कोमल अंग वाला, काम-क्रोध रहित, मधुर पदार्थ चाहने वाला, कान्तियुक्त लम्बी भुजा वाला, कमल समान नेत्र वाला, सतोगुणी पुरुष देव पुरुष कहाता है ।

—:०:—

# गन्धर्व पुरुष

सुन्दर स्वरूप, गायन प्रिय, मीठे खट्टे पदार्थों में रुचि रखने वाला मृग-नयन, गन्धर्व-विद्या परायण, सत, रज, गुण युक्त पुरुष गन्धर्व कहलाता है ।

—०—

## यक्ष पुरुष

दयालु, गुणों की खान, दीन रक्षक, स्थूलोदर, मजबूत शरीर वाला, जिसके जंघा और कण्ठ लाल हों, दृढ़मती, धनी, लाल वर्ण नेत्र वाला, रज तम गुण से युक्त यक्ष पुरुष कहाता है ।

—०—

## राक्षस पुरुष

भयङ्कर बड़ी-बड़ी आँखों वाला, लाल और श्याम वर्ण युक्त कामी, क्रोधी, निर्दयी, लम्बे स्थूल अंग वाला, दुष्ट बुद्धि बिल्ली की सी आँखों वाला, शराबी, अच्छे पुरुषों से द्वेष करने वाला तमो-गुणी पुरुष राक्षस कहाता है ।

—०—

## पिशाच पुरुष

क्रोधी, दयाहीन, पापकर्म करने वाला, क्रूर स्वभाव, बहुभोजी, बकरी की गन्ध वाला, अतिशय मैला, कड़ुआ खट्टा पदार्थ चाहने वाला, कौवे के समान शब्द करने वाला, विश्वासघाती, मन-मलीन पुरुष, पिशाच-पुरुष कहाता है ।

—०—

# स्त्री भेद

**पद्मिनी चित्रिणी चैव शंखिनी हस्तिनी तथा ।**
**चतस्त्रो जातयो नार्या रतौ ज्ञेया विशेषतः ॥**

पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी ये चार जाति की स्त्रियाँ होती हैं ।

—०—

# पद्मिनी स्त्री

**तिलकुसुमसमानां विभ्रती नासिकांच ।**
**द्विज-गुरुसुर-पूजां श्रद्धानां सदैव ॥**
**कुवलयदलकान्तिः कापि चाम्पेयगौरी ।**
**विकचकमलकोशाकारकामातपत्रा ॥**

तिल के फूल सदृश्य सुडौल तथा सुन्दर जिसकी नाक हो, ब्राह्मण, गुरु, और देवताओं में जो हमेशा श्रद्धा रखती हो, कमल के समान जिसकी शरीर-कान्ति हो, तथा चम्पा के फूल के समान जिसका शुभ्र-वर्ण हो, वह पद्मिनी कहाती है ।

**व्रजति मृदु सलीलं राजहंसी वतन्वी ।**
**त्रिवलिवलितमध्या हंस-वाणी सुवेषा ॥**

मृदुशुचिलघु भुङ्क्ते मानिनी गाढ़-लज्जा ।
धवल-कुसुम-वासा वल्लभा पद्मिनीस्यात् ॥

राज हंस के समान गति वाली, पतली कमर वाली, त्रिवली युक्त हंस के तुल्य जिसकी वाणी हो, मुलायम, पवित्र, और स्वतंत्र भोजन करने वाली, सफ़ेद पुष्प और वस्त्रों को प्यार करने वाली पद्मिनी कहाती है ।

अमल मुकुल मृद्वी फुल्लराजीवगन्धः ।
सुरतपयसि यस्या सौरभं दिव्यमङ्गे ॥
चकित-मृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे ।
स्तनयुगलमनर्घ्यं श्रीफल श्रीविडम्बि ॥

कमल के समान कोमल अन्तःकरण वाली, पद्म गन्ध सदृश गन्ध वाली हिरणी के समान सचकित नेत्र वाली, और जिसकी दोनों आँखों के कोने लाल हों, तथा जिसके कुच-द्वय विल्व फल के समान गोल और कठोर हों, ऐसे लक्षण युक्त स्त्री पद्मिनी होती है ।

कमल-नयन-युक्ता क्षुद्ररन्ध्रा च नासा ।
कृशतनु मृदुवाणी दीर्घ-केशी सुभाङ्गी ॥
परहित-मतियुक्ता पद्मगन्धा सुवेषा ।
अविरल कुचयुग्मा कीर्त्तिता पद्मिनी सा ॥

कमल सदृश विशाल नेत्र वाली, जिसके नाक के छेद छोटे हों, केश लम्बे लम्बे, पतला शरीर, कोमल मृदुवाणी, सुन्दर सुडौल

अंग वाली, परहित बुद्धि रखने वाली, पद्म गन्धा स्त्री पद्मिनी कहाती है ।

———*———

# चित्रणी स्त्री

यस्या मनो न चलति कर्हिचित्त प्रलोभनैः ।
सत्यं प्रियञ्च वदति सर्वदा मिष्टभाषिणी ॥
दया क्षमावती या हि देवपूजा परायणा ।
पत्यौ परायणा या हि नेक्षते परपूरुषम् ॥
विप्रभक्ता च या नारी प्रीतास्यात् स्वल्प-मैथुने ।
सदा धर्मे मतिः यस्याश्चित्रिणी सा प्रकीर्त्तिता ॥

जिसका मन कभी प्रलोभनों में न फँसने वाला हो, जो हमेशा प्रिय, मधुर, सत्य बोलने वाली हो, दया और क्षमा की साक्षात् मूर्ति हो, देव और पति पूजा में तत्पर रहने वाली, परपुरुष को न देखने वाली थोड़े मैथुन में तृप्त हो जाने वाली, हमेशा धर्म में मति रखने वाली स्त्री चित्रणी कहलाती है ।

मदनसदनमस्या वर्तुलोच्छूनमन्त-
मृदुमदनजलाढ्यं लोमभिर्नातिसान्द्रैः ॥
प्रकृति चपलदृष्टिर्बाह्य सम्भोगरक्ता ।
रसयतिमधुरालपं चित्रिणी चित्ररक्ता ॥

दृष्टि चपला, आलिंगन, चुम्बनादि वाह्य सम्भोग रत, रंगीन चित्र विचित्र वस्त्रों को धारण करने वाली, पुष्पमाला, आभूषणादि विशेष चाहने वाली स्त्री चित्रणी कहलाती है ।

सुगतिरनतिदीर्घा नातिखर्वा कृशाङ्गी ।
स्तनजघन-विशाला काकजङ्घोन्नतोष्ठी ॥
मधु सुरभिरताम्बुः कम्बु-कण्ठी चकोर–
स्वरवचन विभागा नृत्यगीतादि विज्ञा ॥

समान कद वाली, जिसके कुच बड़े और जंघाएँ बड़ी होती हैं, कौए के समान लम्बी जाँघ वाली, ऊँचे ओठ, कम्बु ग्रीवा, गायन कलाओं के जानने वाली, सुन्दरी चित्रणी कहलाती है ।

कठिन घन कुचाढ्या नातिदीर्घा मनोज्ञा ।
रतिरस-गुणयुक्ता सुन्दरी नातिखर्वा ॥
कमलनयन युग्मा लोभहीना सुशीला ।
तिलकुसुम समानां नासिका चित्रिणी सा ॥

जिसके स्तन द्वय कठिन और मिले हुए हों, शरीर की लम्बाई सामान्य हो, कमल सदृश नेत्र, लोभ रहित, तिल पुष्प के समान नासिका, सुशील, रति गुण युक्त, नारी चित्रणी कहाती है ।

——०——

# शंखिनी स्त्री

दीर्घा सुदीर्घनयना वरसुन्दरी या कामोप-
भोगरसिका गुणशीलयुक्ता ।
रेखात्रयेण च विभूषितकण्ठदेशा सम्भोग-
केलिचतुरा किल शंखिनी सा ॥

विशाल नेत्रा, शारीरिक सब अंगों से सुन्दर, काम और उप-भोग की महिमा को जानने वाली, शील गुण युक्त कण्ठ में तीन रेखा वाली, लम्बी, सम्भोग में चतुरा स्त्री शंखिनी कहलाती है ।

भवति कमलनेत्रा शीलयुक्ता च दीर्घा ।
कठिन घन कुचाढ्या शंखिनी क्षारगन्धा ॥
मधुर वचनयुक्ता कण्ठदेशे त्रिरेखाम्-
कथितमिदमशेषं लक्षणं शास्त्रयुक्तम् ॥

कमल के समान दोनों नेत्र वाली, लम्बी देह वाली, कठोर स्तन वाली, मधुर भाषिणी, शील स्वभाव युक्ता, जिसकी देह से क्षार गन्ध आती हो, तथा जिसके कण्ठ देश में तीन रेखायें पड़ी हों, वह शंखिनी कहाती है ।

तनुरतनुरपि स्याद्दीर्घ देहाङ्घ्रिमध्या ।
ह्यरुण कुसुमवासः काङ्क्षिणीकोपशीला ॥
अनिभृत शिरमंगे, दीर्घ निम्नंवहन्ती ।
स्मरगृहमतिलोम क्षारगन्धि स्मराम्बु ॥

जिसके हाथ, पैर और शरीर के प्रत्येक अंग लम्बे मोटे और पतले भी हों, लाल रंग के पुष्प और वस्त्र चाहती हो। क्रोधी स्वभाव वाली, तथा असमान अंग वाली स्त्री शंखिनी कहलाती है।

सृजति बहुनखांकं संप्रयोगे लघीयः।
स्मरसलिलपृषत्..ा किंचिदुत्तप्तगात्री॥
न लघु न बहु भोक्त्री प्रायशः पित्तलास्यात्।
पिशुन मलिन चित्ता शङ्खिनी रासभोक्तिः॥

जिसका शरीर कुछ गर्म हो, सामान्य खाने वाली, चुगलखोर गर्दभ स्वर वाली, रति के समय बहुत नख गड़ाने वाली, स्वल्प रज त्यागिनी, पित्त प्रकृति वाली स्त्री शंखिनी कहलाती है।

——:*:——

## हस्तिनी स्त्री

भवति मदन-दग्धा हस्तिनी स्थूल देहा।
नयन-दहन-रक्ता मद्य गन्धाल्पकेशी॥
कठिनन-कुचाढ्या नासिका स्थूल रन्ध्रा।
पुलकित सकलांगी सर्वदा काम दग्धा॥

हाथी के समान स्थूल देह वाली, मदमती, अग्नि सदृश रक्त नेत्र वाली स्वल्प केशा, घन सदृश कठिन स्तन द्वय वाली, नाक के स्थूल छिद्र वाली हमेशा मद गन्ध वाली, सदैव काम ताप से पुलकित अंग वाली स्त्री हस्तिनी कहलाती है।

स्थूलाधरा स्थूल कुचा, स्थूल केश नितम्बिनी।
कामेन विह्वलायाहि हस्तिनी सा स्मृता बुधैः॥
कदाचार-रतायाहि परमैथुन-काङ्क्षिणी।
हस्तिनीतां विजानीयात् त्रिषुलोकेषु विश्रुताम्।

मोटे होठों वाली, तथा स्थूल कुच वाली, जिनके नितम्ब भाग मोटे हों, अत्यन्त काम पीड़िता, आचार हीन, पर पुरुष को चाहने वाली स्त्री हस्तिनी कहलाती है।

अललितगतिरुच्चैः स्थूलवक्रांगुलीकं।
वहति चरणयुग्मं कन्धरां ह्रस्वपानाम्॥
कपिलकुचकलापा क्रूरचेष्टातिपीना।
द्विरदमदविगन्धिः स्वाङ्केऽनङ्के च॥

जिसकी पाँव की अँगुलियाँ टेढ़ी और मोटी हों, सिर के बाल भूरे रंग के हों, जिसकी चाल अच्छी नहीं, कन्धे छोटे और मोटे हों, जिसकी शकल क्रूर, अति स्थूल देह, हाथी के मद के समान गन्ध वाली स्त्री हस्तिनी कहलाती है।

द्विगुण-कटुकषायप्रायभुग्वीतलज्जा।
ललदतिविपुलोष्ठी दुःखसाध्या प्रयोगे॥
बहिरपि बहुरोमात्यन्तमन्तर्विशालं।
वहतिघजनरन्ध्रं हस्तिनी गद्गदोक्तिः॥

बहुत खाने वाली, कड़वी और कसैली चीजों को चाहने वाली

सम्भोग में अत्यन्त कठिनता से सन्तुष्ट होने वाली, जिसकी सम्पूर्ण देह रोमों से भरी हो। गद्गद् सम्भाषिणी स्त्री हस्तिनी कहलाती है।

—*—

## नारी गन्ध विचार

पद्मिनी पद्मगन्धा च मधुगन्धा च चित्रिणी।
शङ्खिनी क्षारगन्धा स्यान्मद्यगन्धा च हस्तिनी॥

पद्मिनी कमल की गन्ध वाली, चित्रणी शहद की गन्ध वाली शंखिनी क्षार गन्ध वाली तथा मदिरा के समान गन्ध वाली स्त्री हस्तिनी होती है।

—:*:—

## दैव्यादि स्त्री भेद

देवीमप्सरसो यक्षकान्तां राक्षसकामिनीम्।
कृत्यामिति जगुर्नारीं युक्तां तैरेव नामभिः॥

देवी, अप्सरा, यक्षिणी, राक्षसी और कृत्या आदि नारियें अपने अपने लक्षणों वाली अपने अपने नाम को प्राप्त होती हैं।

—:o:—

## देवी स्त्री

सत्य प्रिय, ज्ञानी, दानी, सत्य और मधुर बोलने वाली, पवित्र सुन्दर, कोमल अंग वाली, काम-क्रोध रहित, मधुर पदार्थ चाहने

असली कोकशास्त्र

चित्र नं० १

अश्व पुरुष
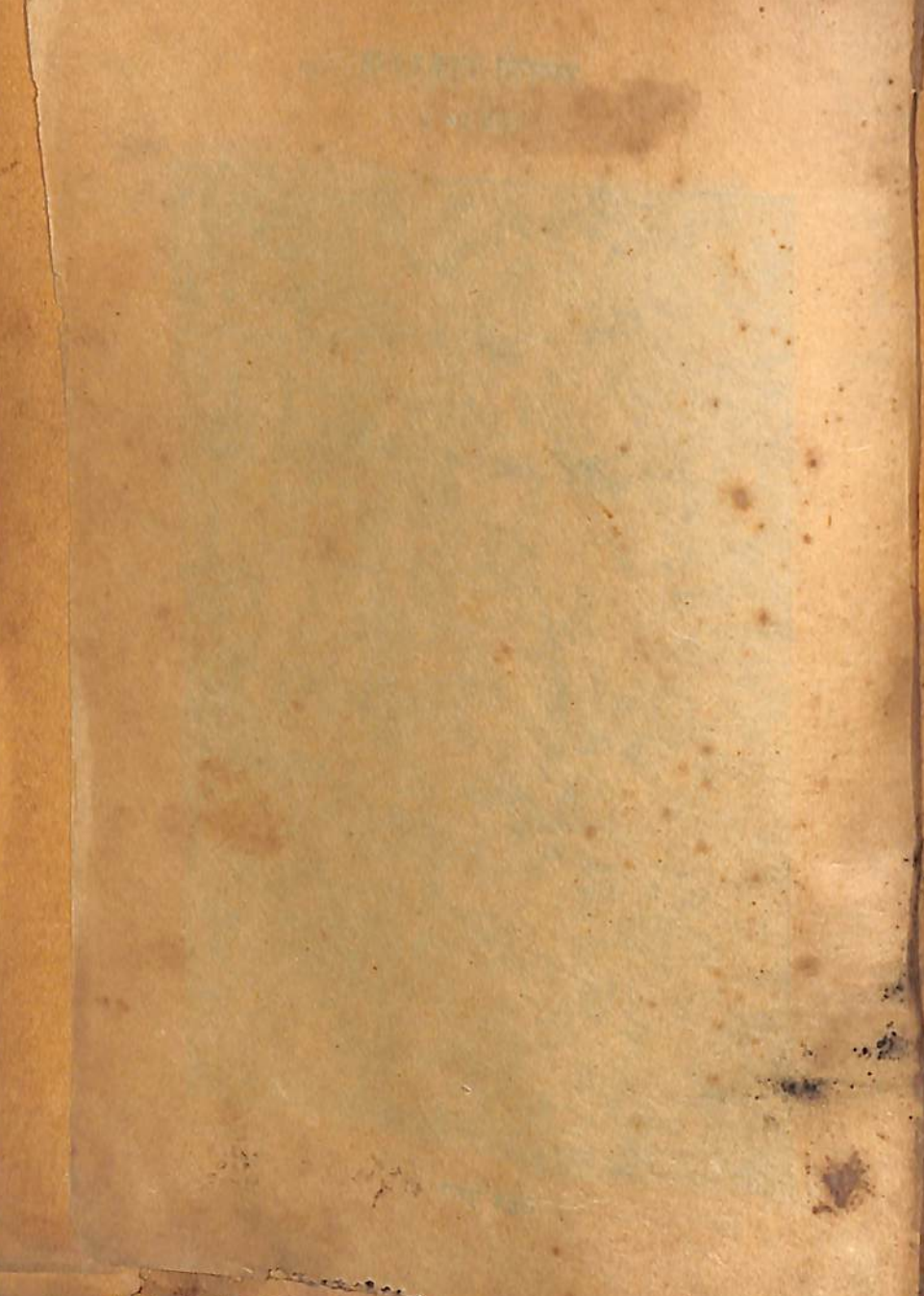
वाली, कान्तियुक्त लम्बी भुजा वाली, कमल समान नेत्र वाली, सतोगुणी देवी स्त्री कहलाती है ।

——:*——

## अप्सरा स्त्री

सुन्दर रूप, गायन प्रिय, मीठे मट्टे पदार्थों में रुचि रखनेवाली, मृगनयनी, गन्धर्व-विद्यापरायणा, सत, रज, गुणयुक्ता स्त्री अप्सरा कहलाती है ।

——:*:——

## याक्षिणी स्त्री

दयालु, गुणों की खान, दीन-रक्षिका, स्थूलोदरा, मजबूत शरीर वाली, जिसकी जंघा और कण्ठ लाल हों, दृढ़मती, धनी, लाल आँख वाली, रज, तम गुणों से युक्त स्त्री यक्षिणी कहलाती है ।

——:*:——

## राक्षसी स्त्री

भयंकर बड़ी बड़ी आँखों वाली, लाल और श्याम-वर्ण युक्त, कामी, क्रोधी, लिर्दयी, लम्बे स्थूल अंग वाली, दुष्ट बुद्धि, बिल्ली की-सी आँखों वाली, शराबी, अच्छे मनुष्यों से द्वेष करने वाली तमोगुणी स्त्री राक्षसी कहाती है ।

## कृत्या स्त्री

क्रोधिनी, दयाहीना, पाप-कर्म करने वाली, क्रूर स्वभावा, बहु-भोजी, बकरी की गन्ध वाली, अतिशय मैली, कड़ुवा, खट्टा पदार्थ चाहने वाली, कौवे के समान शब्द करने वाली, विश्वासघातिनी मन-मलीन स्त्री कृत्या कहाती है ।

—:०:—

## स्त्रियों के त्रिगुणात्मक लक्षण

गूढा स्थिग्रन्थिगुल्फा मृदुमधुरवचा:
श्लेष्मला मद्गुमभ्द्धी,
व्यक्तास्थिग्रन्थिगुल्फा युवनिरशिशिरै
रङ्गकै: पित्तला स्यात् ।
रूक्षा शीतोष्णगात्री वदति बहुतरं
वातला श्लेष्मलापि,
स्यादुष्णा नव्यसूता शिशिरनरतनु
गर्भिणी पित्तलापि ।।

१—जिसके हड्डी में ही ग्रन्थी तथा गुल्मा छिपे हुए हों, सरल मीठा बोलने वाली, कमल सदृश्य कोमल अंग वाली, कफ प्रकृतिका स्त्री कहाती है ।

२—जिसकी ग्रन्थी, गुल्म, हड्डी से बाहर दिखायी देते हों, गरम अंग वाली, पित्त प्रकृतिका स्त्री कहलाती है ।

३—रूखे, उष्ण, शीतल, शरीर वाली, बहुभाषिणी स्त्री वात प्रकृतिका कहाती है ।

—०—

# स्त्रियों के त्रिगुणात्मक भेद से तृप्ति लक्षण

अचिरलघुचिरोच्चैः कालभावावसानाः,
प्रमददहनगाढद्वारगुह्या क्रमेण ।
सततशिशिरकालोपेतहेमन्त वर्षा-
मधुषु निधुवनेच्छा संप्रयोगे प्रदिष्टा ॥

१—कफ प्रकृति वाली नारी जल्दी तृप्त होनेवाली तथा बहुत रज गिराने वाली होती है ।

२—पित्त प्रकृति वाली स्त्री कफ प्रकृति वाली से अधिक काल में छूटने वाली तथा उसकी योनि गर्म होती है ।

३—वात प्रकृति वाली स्त्री सिकुड़ी हुई योनि वाली, तथा बहुत देर में बहने वाली होती है ।

कफ प्रकृति वाली शिशिर और वसन्त में, पित्त प्रकृति वाली वर्षा और शरद में वात प्रकृति वाली वसन्त और ग्रीष्म में सम्भोग में हितकर होती हैं ।

## देवसत्वा स्त्री

सुरभिशुचिशरीर-सुप्रसन्नानना च ।
प्रचुरधनजनाढ्यां भामिनी देवसत्वा ॥

सुगन्धि से पवित्र देह वाली, सुप्रसन्नमुखी, धन-धान्य सम्पन्ना, बड़े कुटुम्ब वाली, देव स्वभाव वाली स्त्री देवसत्वा कहलाती है ।

—०—

## यक्षसत्वा स्त्री

व्यपगतगुरुलज्जोद्यानपानार्णवाद्रौ ।
स्पृहन्ति रतिसिद्धयै रोक्षणा यक्ष सत्वा ॥

माता, पिता और गुरुजनों के सम्मुख निर्लज्जता पूर्वक वर्तने वाली, समुद्र, पर्वत और वनादि स्थानों में सम्भोग चाहने वाली, क्रोधयुक्ता स्त्री यक्षसत्वा कहलाती है ।

—०—

## मनुष्य सत्वा स्त्री

भवति सरलचित्ता दक्षिणातिथ्यरक्ता ।
स्फुटमिहनरसत्वा खिद्यते नोपवासैः ॥

सरल स्वभाव वाली, चतुरा, अतिथि-पूजिका, उपवास न चाहने वाली, स्त्री मनुष्यसत्वा कहलाती है ।

—०—

## नागसत्वा स्त्री

श्वसिति वहुतरं या जृम्भते भ्रान्तिशीला ।
स्वापितसततमेव व्याकुला नागसत्वा ॥

सुशीतल श्वास लेने वाली, अधिक घूमने वाली, जम्भाई और अंगड़ाई लेने वाली, अधिक काल तक सोने वाली, सर्प की भाँति चंचल स्वभाव वाली स्त्री नागसत्वा कहलाती है ।

## गन्धर्वसत्वा स्त्री

अपेतरोषोज्ज्वलदीप्तिवेषांस्रग्गन्धधूपादिषुबद्धरागाम्
सङ्गीतलीलाकुशलां कलज्ञांगन्धर्वसत्वां युवतींवदन्ती

क्रोधयुक्ता, स्वच्छ वस्त्र धारिणी, सुगन्धित पुष्पमाला धारिणी, वेष-भूषा चाहने वाली, गाने बजाने में कुशल, अनेक तरह की कला जानने वाली स्त्री गन्धर्व सत्वा कहलाती है ।

## पिशाचसत्वा स्त्री

मनोज्झिनाऽतिव हुभुक् प्रकटोष्णगात्री ।
भुङक्ते च मद्य पललादि पिशाच सत्वा ॥

निराभिमानिनी अनेक तरह के बहुत पदार्थ खाने वाली, तथा गर्म शरीर वाली, मांस और शराब में विशेष रुचि रखनेवाली स्त्री पिशाच सत्वा कहलाती है ।

## काकसत्वा स्त्री

दृष्टिं मुहुर्भ्रमयति प्रबलाशनार्त्ति ।
रुद्धं गमेति बिपुलं किल काक सत्वा ॥

इधर-उधर बार बार देखने वाली, अधिक घूमने वाली, सर्वदा कौए के समान क्षुधातुर रहने वाली स्त्री काकसत्वा कहलाती है ।

—:०:—

## बानरसत्वा स्त्री

उद्भ्रान्तदृक्करजदन्तरणप्रसक्ता ।
स्याद्वानरप्रकृतिरस्थिरचित्तवृत्तिः ॥

जिसकी दृष्टि पागल की भांति चंचल हो, जिसके दाँत और नख तीखे हों, वह बानर के समान चंचल स्वभाव वाली स्त्री बानरसत्वा कहलाती है ।

—:०:—

## गर्दभसत्वा स्त्री

या दृष्टविप्रियवचोरचना च नारी ।
रक्त विटप प्रहरणे खर सात्विका सा ॥

व्यर्थ बकवाद करने वाली, कामुकी, बुद्धिहीना गर्दभ के समान स्वभाव वाली स्त्री गर्दभसत्वा कहलाती है ।

# योग्यायोग्य जोड़े

सामान्ये नरनारीणां गर्भाधानं च जायते।
हीनाधिक्येऽप्रजत्वं च कृशत्वं च परस्परात् ॥

समान बल और क्रिया वाले स्त्री पुरुषों का संयोग उत्तम सन्तान उत्पन्न कर सकता है। हीन बल क्रिया वालों का संयोग गुण हीन, बल हीन, रोगी, अल्पायु सन्तान उत्पन्न करने वाला होता है। इस लिए चाहिए कि शास्त्र मर्दानुसार जैसे स्त्री पुरुषों का मिलन कहा गया है, वैसों का ही संयोग मिलाना चाहिए। कौन स्त्री किस पुरुष से सन्तुष्ट होकर सुखी होती है अब यह बतलाया जाता है।

शशकं पद्मिनी तुष्टा चित्रिणी रमते मृगम्।
वृषभं शंखिनी तुष्टा हस्तिनी रमते हयम् ॥

शशक लक्षण-युक्त पुरुष पद्मिनी लक्षण वाली स्त्री से सन्तुष्ट होता है तथा पद्मिनी शशक से। चित्रिणी मृग परस्पर एक दूसरे से सुखी होते हैं। वृषभ संज्ञक पुरुष शंखिनी और हय-संज्ञक हस्तिनी से सन्तुष्ट होते हैं। इस लिए इनका जोड़ा बुद्धिमानों को मिलाना चाहिए। विपरीत योग मिलाने से हानि होती है।

# पद्मिनी मृग योग

मृग संज्ञक पुरुष के साथ यदि पद्मिनी का योग मिला दिया जाय तो उससे उत्पन्न पुत्र बलवान होगा किन्तु पूर्ण सुखी न

होकर दुखी भी होगा। यदि पुत्री होगी तो धन-हीन और अल्पायु होगी।

## पद्मिनी वृषभ योग

वृषभ संज्ञक पुरुष से पद्मिनी का संयोग होने पर जो पुत्र पैदा होगा वह बैल के समान परिश्रमी और दुराचार युक्त होगा, यदि पुत्री होगी तो कुलटा, व्यभिचारिणी होगी।

## पद्मिनी अश्व योग

यदि पद्मिनी का अश्वसंज्ञक पुरुष से योग होगा तो उनका पुत्र रोगी या नपुँसक होगा और यदि कन्या होगी तो सती, पति-परायणा, बुद्धिमती, सुलक्षणा होगी।

## चित्रिणी शशक योग

शशक और चित्रिणी के संयोग से उत्पन्न पुत्र सुशील सुन्दर स्वभाव वाला होते हुए भी अल्पायु होगा। किन्तु पुत्री पर-पुरुष-गामिनी और दुःख भोगने वाली होगी।

## चित्रिणी वृषभ योग

वृषभ और चित्रिणी के संयोग से उत्पन्न सन्तान बचपन में ही मरने वाली होती है अथवा गर्भ में ही मर जाती है।

## चित्रिणी अश्व योग

अश्व संज्ञक पुरुष के साथ चित्रिणी का संयोग होने से अल्प-काल जीने वाला पुत्र उत्पन्न होता है और पुत्री एकाक्षिणी (कानी) होती है तथा उसका रंग श्वेत होता है।

## शंखिनी शशक योग

शशक संज्ञक पुरुष का शंखिनी के साथ योग होने पर जो पुत्र पैदा होता है वह धर्मात्मा और सत्य-प्रिय होता है किन्तु कन्या बड़ी आयु वाली होकर भी क्रोधिनी होती है।

## शंखिनी मृग योग

मृग संज्ञक पुरुष के योग से शंखिनी में उत्पन्न होने वाला पुत्र दयालु सर्व-प्रिय होता है और कन्या भी अति सुन्दरी और कुटुम्ब वाली होता है।

## शंखिनी अश्व योग

अश्व पुरुष का शंखिनी से योग होने पर पुत्र दुर्बल-बुद्धि कमजोर और जन्मान्ध होता है। कन्या पति प्राणहारिणी, निर्लज्ज और व्यभिचारिणी होती है।

# हस्तिनी शशक योग

शशक संज्ञक पुरुष का हस्तिनी के साथ संयोग होने पर जो पुत्र जन्म लेता है वह दुर्बलाङ्ग और स्वल्पायु होता है। तथा कन्या भी वैसी दुर्बला, कम उमर वाली होती हुई खूबसूरत अवश्य होती है। शशक पुरुष से हस्तिनी स्त्री तृप्त नहीं होती। दोनों दुःखी रहते हैं। इस लिए असम्मान योग सर्वदा त्याज्य समझना चाहिए।

# हस्तिनी मृग योग

मृग संज्ञक पुरुष का हस्तिनी के साथ संयोग होने से जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह पशु के समान बुद्धि वाला होता है, और कन्या पतिघातिनी कुलटा होती है।

# हस्तिनी वृषभ योग

हस्तिनी का वृषभ संज्ञक पुरुष के साथ संयोग होने से जो पुत्र होता है वह बलवान युद्ध-प्रिय होता है किन्तु दुराचारी भी होता है और कन्या दुराचारिणी होती है।

विवाह के पूर्व स्त्री-पुरुष के लक्षणों का मिलान कर लेना चाहिए। जिसका जिसके साथ योग मिलता हो उसके साथ मिला देना चाहिए। तब किसी प्रकार की हानि नहीं हो सकती।

# नायिका विचार

बाला स्यात् षोड़शाब्दात्तदुपरि तरुणी
त्रिंशतिर्यावदूर्ध्वं,
प्रौढ़ा स्यात्पञ्च पञ्चाशदवधिपरतो
वृद्धतामेति नारी।
दीर्घा कृष्णा च तन्वी चिरविरहवती
निम्नकक्षा श्लथास्युः,
स्थूला गौरी च खर्वा सतत रतिपरा
व्यूढ़ कक्षा घनास्युः ॥

रति शास्त्र के जानने वालों ने सोलह वर्ष तक की आयु वाली, स्त्री को बाला ही माना है। और तीस वर्ष तक की तरुणी। तत्-पश्चात् पचपन वर्ष तक की प्रौढ़ा, कहाती है। ये तीन अवस्था वाली रमणियें ही सम्भोग योग्य कहाती हैं। पचपन वर्ष से बाद वृद्धा स्त्री सम्भोग योग्य नहीं रहती।

## बाला

जब शैशवावस्था को पार कर लड़की बाल्यावस्था में पदार्पण करती है तब उसके उन अंगों का विकाश आरम्भ होता है जो उसे पुरुष की ओर जाने से संकोच पैदा कराते हैं और साथ ही चुम्बक की भाँति उसे पुरुष की ओर खिंचाव भी पैदा करते हैं।—उन

अंगों पर चमक और कठोरता आती जाती है जो उनके परिपक्व होने की द्योतक होती है।

वह बाला जब परिपूर्णाङ्ग हो जाती है तब उसमें इतना संकोच भाव उत्पन्न हो जाता है कि वह जिन पुरुषों में बिना संकोच के आती-जाती थी, फिर नहीं आ पाती। उसकी शैशव-चपलता के स्थान पर लज्जा और गम्भीरता अपना अधिकार जमा लेती है।

उसका कटिभाग सूक्ष्म और वक्षस्थल उभर आता है। वह हमेशा अपने शरीर के सब अंगों को कपड़े से ढँके रहती है और मनुष्यों की दृष्टि से बहुत बचती है। उसकी काम-वासनायें जाग उठती हैं किन्तु उसके मन में इतनी लज्जा और संकोच होता है कि वह अपने नायक से प्रकट नहीं कर सकती, इसी नायिका का नाम मुग्धा है।

इसी मुग्धा बालिका के हृदय में मान जाग उठता है। वह मान का अभिनय करने लगती है। सखियों से बुलाये जाने पर मुँह घुमा लेती तथा इठला कर चलती है। उस समय उसे मानिनी कहते हैं। किन्तु यह उसका मान चिरस्थायी नहीं होता, क्षणिक होता है। झट स्वयं ही बोलने लगती है और फिर गम्भीर हो जाती है।

किसी एकान्त स्थान में बैठकर अनेक रंग-विरंगे वस्त्रों और आभूषणों को पहन-पहन कर पति के पास जाने के लिए शृङ्गार करती है। किन्तु अपनी प्रिय सखी को आते देखकर सब वस्त्राभूषण उतार देती है। शृङ्गार को ऐसा अस्त-व्यस्त कर देती है,

मानो उसने शृंगार किया नहीं था। सखियों के प्रेरणा करने पर भी वह कोई वस्तु नहीं पहनती। अनमनी सी होकर झुँझलाती और वहाँ से हट जाती है।

अकेले पति के पास नहीं जाती, सखियों के साथ-साथ जाती और साथ ही लौट भी आती है। पति को देखने की इच्छा रखने पर भी नजर भर कर देख नहीं पाती। उनकी नजर पड़ते ही अपनी दृष्टि दूसरी ओर या नीचे कर लेती है। पति के स्पर्श मात्र से उसका शरीर अति हर्षित होकर रोमाञ्चित हो उठता है और साथ ही सारे शरीर में कँपकँपी छूट पड़ती है।

पसीने से उसकी देह तर-बतर हो जाती है। पति के बार बार अनुरोध करने पर भी उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकलता। चेष्टा करने पर भी उससे बोला नहीं जाता, मानो उसकी जबान को लकवा मार गया हो।

पति से विशेष परिचय हो जाने पर उनके प्रश्नों का कुछ स्फुट उत्तर देती है। धीरे-धीरे झिझक कम हो जाने पर तिर्छी चितवन के साथ पति की ओर देखती है। आँखें चार हो जाने पर मान करती हुई कुछ मुस्करा देती है। पति उसके ऐसे कार्य-कलाप को देखकर उन्मत्त हो उठता है और उसे बाहु-पाश में अवेष्ठित करने की चेष्टा करता है। वह बाला काम-सिक्त होकर काम-कला के प्रभाव से अनूठी दिखायी देने लगती है। उसकी भौं कमान की भाँति तन-तन कर आकुञ्चित होती है। लज्जा भरी आँखें पलकों में

नाचने लगती हैं। देह में हलकी कँपकँपी होती है। उस पुलकित तन्वी मुग्धा बाला को देखकर उसका पति मुग्ध हो जाता है।

सखियों से की हुई पति की प्रशंसा सुनकर वह मन ही मन बहुत प्रसन्न होती है किन्तु अपने मुँह से किसी प्रकार का सहयोग नहीं देती। यदि सखियें उसका मनोभाव जानने के लिये उसके मुख की ओर देखती हैं तो वह अपना मुख दूसरी ओर इस भाँति फेर लेती है मानों उसने उनकी कोई बात सुनी ही नहीं और न सुनना ही चाहती है। अनुभविता होने से तरुणी या प्रौढ़ा उसके मनोगत-भाव को समझ पाती हैं अन्य नहीं।

रति सदन में पति के पास जाने के समय पति से दिये हुए सम्पूर्ण आभूषणों को एकान्त में पहनती है और फिर आइने में अपने शृङ्गार को देखकर खुश होती है। वह अपना पति के पास जाना अपनी प्रिय सखियों को भी प्रगट करना नहीं चाहती। इस लिए शब्द करने वाले सभी आभूषणों को उतार देती है और करधनी आदि का शब्द रोकने के लिए उसे कसकर बाँध देती है। जब दबे पाँव अलक्षित रूप से रति-गृह में पहुँच जाती है तब फिर आभूषणों से सजकर कटाक्ष बाण छोड़ती हुई पति के सम्मुख जा खड़ी होती है। उपरोक्त आचरण काम-विह्वला लज्जाशील मुग्धा बालाओं के होते हैं।

सम्भोग के अनन्तर उसका सभी शृंगार बिगड़ जाता है। वह अपनी उस अवस्था को देखकर बहुत लज्जित होती है। पति के

सम्मुख स्थिर रहना कठिन हो जाता है। कभी-कभी मुग्धा पुरुष को पराजित करने के लिये कामावेश में पुरुषारूढ़ भी हो जाती है, किन्तु स्रवित हो जाने के कारण शिथिल होकर कटी बेल की भाँति पति के वक्षस्थल पर गिर पड़ती है।

# तरुणी

मुग्धा या बाला रमण की इच्छा रखती हुई भी स्वयं पति से रुख नहीं मिलाती, पति से बार-बार आकृष्ट किये जाने पर ही रति क्रिया में प्रवृत्त होती है। किन्तु तरुणी अभ्यस्ता नारी होने से रति लालसा से परिपूर्ण होती है। उसकी सभी काम-कलायें जागृत होती हैं। वह स्वयं भी वैसी ही उन्मत्ता होती है जैसा उसका पति। वह वस्त्राभूषणों की अपेक्षा पति को अधिक प्यार करती है। उसकी पति के पास रहने की विशेष इच्छा होती है। किन्तु पति से मिलते समय वह आभूषण अवश्य पहन लेती है। उसका उद्देश्य है पति प्रसन्न रहे और उसकी मनोभिलाषा में बाधा उत्पन्न न हो। वह अपने कामोत्तेजक अंगों को किसी बहाने से नंगा कर देती है। ये उसकी आतुरता के चिह्न होते हैं। वह सखियों में स्वयं पति की प्रशंसा करती और सुनना चाहती है। उसका पति में विशेष अनुराग होता है।

—:o:—

## प्रौढा

प्रौढा में पति के सम्मुख लज्जा का अभाव-सा हो जाता है। उसमें किसी प्रकार का संकोच भाव शेष नहीं रह जाता। वह पति का साथ एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ना चाहती। उसका प्रत्येक अंग सुगठित और मनोहर होता है। उसकी मदमाती चाल मन को लुभाती है। उसकी मदभरी आँखों में सदा नायक की सूरत नाचती रहती है। भोग-विलास प्रिय नायक को वह अपनी कुशलता से आनन्द विभोर कर देती है। उस काम-कला-निपुण सुन्दरी को आलिंगन, चुम्बन, नखच्छेदन और आसनादि भेद बहुत प्रिय लगते हैं।

## वृद्धा

वृद्धा आदर करने मीठी-मीठी बात करने, कथा-कहानी सुनने-सुनाने से तृप्त हो जाती है। उसे रति सम्बन्धी बातों से कुछ विशेष आनन्द प्राप्त नहीं होता।

## स्त्री प्रसङ्ग

परमपिता परमात्मा ने सृष्टि की रचना के लिये दो शक्तियें निर्माण की हैं। एक प्राण, और दूसरी रयि। प्राण और रयि शक्ति के एक साथ मिलने से एक नयी वस्तु पैदा हो जाती है। गेहूँ, चना उर्द और वनस्पत्यादि सभी इसी नियम से उत्पन्न होते हैं।

इसमें प्राण और रयि शक्ति हमेशा विद्यमान रहती है। जो सूर्य और चन्द्र से प्राप्त होती है। सूर्य शक्ति को धारण करनेवाली प्राण और चन्द्र शक्ति को धारण करनेवाली रयि शक्ति होती है। इन्हीं प्राण वा रयि शक्ति को पुंषत्व वा स्त्रीत्व, वीर्य या रज कह सकते हैं। इन शक्तियों को ठीक समय तक परिपक्व कर लेने पर जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह बलवती और सदैव निरोग रहनेवाली होती है। इस लिए रज-वीर्य को परिपक्व अवस्था के पूर्व कभी नाश न होने देना चाहिए।

परिपक्व रज-वीर्य भी यदि परिमाण से अधिक नाश कर दिये जाते हैं तो उनका भी परिणाम उलटा ही होता है। स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति मात्र है। जैसे कहा है:—

**प्रजननार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थश्च मानवाः।**

किन्तु आजकल लोग ठीक इसके विपरीत आचरण करते हैं। अर्थात उन्होंने स्त्री को सन्तानोत्पत्ति का साधन न समझ कर भोग मात्र का साधन समझ रखा है। भोग-विलास करते हुए संयोगवश यदि गर्भ रह जाय तो वे आनन्दित होनेकी अपेक्षा अत्यन्त दुखित होते हैं और उस गर्भ को गिराने के लिए वैद्यों, डाक्टरों और मन्त्र-तन्त्र करने वालों से उपाय पूछा करने हैं। यदि दुर्भाग्यवश कोई अदूरदर्शी लोभी गर्भपात का उपाय बतानेवाला मिल गया, तो उस स्त्री का सर्वनाश ही समझना चाहिये। वह इतने भयंकर रोगों से पीड़ित हो जाती है कि उसे अन्त में प्राणों से हाथ धोना

पड़ता है। दैवसंयोग से यदि सन्तान उत्पन्न हो गयी तो वह वीर्यहीन, क्षीणकाय, सदैव रोगी रहने वाली और अल्पायु पैदा होती है।

पुरुष स्त्री के साथ अधिक सम्भोग करने में अपनी बहादुरी समझ ा है और समझता है कि स्त्री मेरे इस कर्म से प्रसन्न होकर मेरे आधीन रहेगी, किन्तु यह उसकी भारी भूल होती है। स्त्री विषयी पुरुष को अधिक पसन्द नहीं करती। क्योंकि स्त्री एक बार श्रवित होने पर अपनी अष्टगुणा शक्ति का नाश कर बैठती है और पुरुष की केवल एक गुणा शक्ति ही नष्ट होती है। काम-लोलुप पुरुष का वीर्य अपरिपक्व होने से पतला एवं निर्जीव हो जाता है और वह स्त्री के साथ भोग करने में अधिक काल तक ठहर नहीं पाता। स्त्री की भी यही अवस्था होती है। दोनों के निर्वीर्य हो जाने पर प्रेम की मात्रा घट जाती है, एक दूसरे का आकर्षण सदैव के लिए लुप्त हो जाता है। बहुधा ऐसे स्त्री-पुरुष पर-पुरुष और पर-स्त्री-गामी हो जाते हैं।

गर्भ स्थिर हो जाने पर भी प्रायः लोग स्त्री-प्रसंग नहीं त्यागते उसका प्रभाव स्त्री-पुरुष की तन्दुरुस्ती पर ही नहीं पड़ता, वरन गर्भस्थ बालक पर इतना बुरा पड़ता है कि अंग-भंग, टेढ़ा-कुबड़ा और दिमाग का खराब तथा विषयी पैदा होता है। उस पाप का भागी माता-पिता को ही होना पड़ता है। यह पवित्र कार्य मूर्खतावश ऐसा गन्दा बना दिया है कि जिसमें अपने शरीर, बल, धन, मान,

मर्यादा सभी का नाश करता हुआ मनुष्य सुख समझता है।

ऐसे वीर्यहीन पुरुषों को जब सन्तान उत्पन्न नहीं होती, तब वे देवी देवता, मियाँमदार से सन्तान माँगते फिरते हैं, परमात्मा के नियम को तोड़नेवाले के लिए, कभी सफलता नहीं मिल सकती। इस लिए वे सन्तानहीन जिन्दगी भर भाग्य को दोष देकर रोया करते हैं। इस लिए सुख की कामना करनेवाले स्त्री-पुरुषों को चाहिए कि वे शास्त्र मर्यादानुसार अपने आपको सुरक्षित रखते हुए नियमपूर्वक बरतें। तभी स्त्री प्रसंग का सच्चा सुख प्राप्त कर सकते हैं।

—:o:—

# सुहाग रात

यह वह रात है, जिस रात को नयी सृष्टि उत्पन्न करने के लिए रयि और प्राण-शक्ति का पहला मिलन होता है। दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे से बिलकुल अपरिचित होते हैं, एक दूसरे से संकुचित, परस्पर मनोभाव से अनभिज्ञ, परस्पर मिलने की इच्छा रखने वाले होते हैं। किन्तु संकोचवश कौन किसके साथ कैसा सम्भाषण आरम्भ करे, इस बात की विवेचना ही हृदयों में अति वेग के साथ हो रही होती है। यद्यपि उनका यह सम्बन्ध उनके जीवनभर के लिए होता है, तथापि वे एकाकि अपने हियाव को शीघ्र तोड़ नहीं पाते। यह ठीक भी है। उस समय उन्हें बड़ी सावधानी से ही

काम लेना चाहिए । क्योंकि उस समय के बर्ताव का प्रभाव जिन्दगीभर उनके दिलों पर अमिट रूप से ऐसा अंकित हो जाता है कि जो भुलाये भी नहीं भूलता।

कारण यह है कि उन दोनों के पूर्व चरित्र का सच्चा भाव उस प्रथम मिलन में ही मालूम होता है। यदि सूक्ष्म रीति से दोनों स्त्री पुरुष एक दूसरे के बर्ताव को लक्ष्य करें, तो मनुष्य की सम्पूर्ण जिन्दगी का परिचय उन्हें उसी समय हो सकता है । भुक्तभोगी स्त्री-पुरुष के विचार छिप नहीं सकते। कठोरता, मृदुरता, सचाई, प्रेम, सरलता आदि गुण-दोषों का भेद उस छोटे से समय में बड़ी सरल रीति से स्पष्ट हो जाता है। जिन स्त्री-पुरुषों में उस समय किसी प्रकार का प्रकृति-विरुद्ध भेद-भाव हो जाता है, वह ताबे जिन्दगी निकाले नहीं निकलता। इस लिए वह प्रथम रात्रि बड़े संयम और शिष्टता के साथ निबाहनी उचित है। और ठीक उसी रात्रि के समान अपनी सारी जिन्दगी बना लेनी चाहिए।

प्रथम रात्रि में पति-पत्नि जब एक पलंग पर बैठे हों तब उन्हें परस्पर एक दूसरे के प्रति मधुर आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। जिनमें एक दूसरे का सम्मान भलीभाँति भरा हो। स्त्री को पहले बोलने का साहस नहीं होता। इस लिए पुरुष को चाहिए कि वह ऐसे छोटे-छोटे प्रश्न करे जिनका जवाब 'हाँ' या 'ना' में ही केवल हो सकता हो। स्त्री एकाएक तीन-चार अक्षर का उत्तर नहीं दे सकती। प्रश्न करने के बाद पति को इस बात का

ध्यान रखना चाहिए कि स्त्री उसका उत्तर सिर हिलाकर देती है, या 'हाँ' 'ना' में। उत्तर देने में स्त्री कुछ विलम्ब करती है अथवा जल्दी। सिर हिलाकर और देर में जवाब देती है, तो समझ लेना चाहिए कि स्त्री बहुत संकोच करनेवाली है। फिर दुबारा और भी नम्रता के साथ प्रश्न करने चाहियें। जब वह 'हाँ' 'ना' में उत्तर देने लग जाय, तब उससे कुछ बड़े उत्तर रखनेवाले प्रश्न करने चाहिएँ। जब उनका जवाब ठीक आने लगे, तब उससे अपना हाथ दिखाने को कहे। यदि हाथ न दिखाये तब कोई प्रश्न करते हुए अपनी दृष्टि उसकी ओर से हटाकर दूसरी ओर फेर ले, और बात करते हुए बीच-बीच में उसकी ओर देखता जाय।

पुरुष इस बात पर विशेष ध्यान देता रहे, कि स्त्री उसकी ओर देखने का उपक्रम करती है, या नहीं। स्त्रियें प्रायः दृष्टि बचाकर कनखियों से पति की ओर देखा करती हैं। इससे उनका अनुराग पाया जाता है और वे पहचानने की चेष्टा भी करती हैं। उनकी लज्जा का भाव भी देखने से घटता है। यदि पुरुष उनकी ओर से दृष्टि नहीं हटाता, तो उनका संकोच-भाव दूर नहीं होता। यदि उसकी दृष्टि अपनी ओर होती मालूम न पड़े तो उसकी संकोच-मात्रा अत्यन्त अधिक समझनी चाहिए। बार-बार कहे जाने पर हाथ न दिखाये तो स्वयं बड़ी मुलाइमीयत के साथ अपने हाथ से उसका हाथ पकड़े और साथ ही इस बात पर भी ध्यान रक्खे कि वह ऐसा करनेपर अपने-आपको बचाती है या चुपचाप बैठी रहती

है। यदि हाथ खींच ले तो जबरदस्ती न करनी चाहिए फिर कुछ देर के बाद मौका देखकर अंग-स्पर्श करे। इस प्रकार बार-बार प्रयत्न करने पर स्त्री की झेंप मिट जायगी। स्त्री स्वयं भी मिलने का प्रयत्न करती है। किन्तु संकोचवश मिल नहीं पाती।

यदि स्त्री बहुत ही लज्जावती हो तो उसकी किसी सखी को मध्यस्था बनाकर बातचीत आरम्भ करे। ऐसा करने पर उसे अवश्य सफलता मिलेगी। जब संकोचभाव दूर हो जाय तब मध्यस्था को इशारे से हटा दे। सहसा कोई अयुक्त काम न कर बैठना चाहिए नहीं तो पीछे बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ता है। जैसे कहा है—

**सहसा विदधीत न क्रियां अविवेकः परमापदां पदम्।**

विशेष रूप से बोलचाल हो जाने पर भी जबतक स्त्री की सम्भोगेच्छा किसी प्रकार प्रकट न हो, तब तक उससे रति न करना चाहिए। पुरुषकी अपेक्षा स्त्री की कामेच्छा बहुत काल के बाद जागती है। प्रथम सम्मेलन में उन्हें बहुत ही संकोच होता है। इस लिये वे टालनेकी बहुत चेष्टा करती हैं। ऐसे समय में जो पुरुष उनसे शीघ्र उलझनेकी चेष्टा करता है उससे उनका चित्त हट जाता है। उनकी घृणा इतनी बढ़ जाती है कि वह आयु भर तक नष्ट नहीं होती। इसीसे स्त्रियों का हृदय बहुत कोमल कहा गया है। उनको वश में करने के लिए कुछ काल की आवश्यकता होती है। यदि आयु, ऋतुधर्म, तन्दुरुस्ती ठीक हो, तो स्त्री प्रथम रात्रि में ही पुरुष के वश में हो जाती है, उसका संकोच शीघ्र नष्ट हो जाता है।

संकोच नष्ट हो जाने पर धीरे-धीरे उसके कटि-भाग से ऊपरि अंगों का स्पर्श करे। जब वह इतना सहन कर ले और किसी बात की बाधा उपस्थित न करे तब उसके सिर के बालों को सम्भालता हुआ उसके मस्तक का चुम्बन करे, और उसके मुख पर हाथ फेरते हुए उसके कपोल पर कपोल मले। इसी प्रकार धीरे-धीरे अधरोष्ठ का चुम्बन करे। इतनी क्रिया निर्विघ्न समाप्त होने पर पुरुष को चाहिए कि वह धीरे-धीरे अपने हाथ से स्त्री के कुचों का मर्दन करते हुए नाभि-स्थल पर हाथ फेरे। इससे स्त्री को जब रोमांचित होता हुआ दिखायी दे और उसकी आँखों में झपकी-सी आने लगे तथा वह अपने शरीर का पूरा बोझ पुरुष पर, छोड़ दे, तब समझ लेना चाहिए कि अब स्त्री रति योग्य हो गयी।

प्रथम रात्रि क्रिया में प्रवृत्त होते समय पुरुष को ध्यान रखना चाहिए कि प्रथम सम्भोग में स्त्री को कष्ट होता है। कभी-कभी उस कष्ट का परिणाम स्त्री को सदा के लिए सम्भोगेच्छा से ऐसा निवृत्त करता है कि उसे पति के पास जाने की इच्छा होते हुए भी भूतपूर्व कष्ट की स्मृति से अनिच्छा उत्पन्न हो जाती है। इस लिए अत्यन्त सावधानता के साथ स्त्री की शक्ति अनुसार रति-क्रिया आरम्भ करनी चाहिए। जब स्त्री में कामोद्वेग अत्यन्त बढ़ जाता है, तब वह मद-विह्वला होकर कष्ट का अनुभव नहीं करती है पुरुष को उस समय भी बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए एक बार सम्भोग हो जाने पर फिर स्त्री को उतना कष्ट मालूम न

होता। धीरे-धीरे कष्ट का अभाव हो ही जाता है।

स्त्री को चाहिए कि वह पुरुष की रुचि की ओर ध्यान दे। ऐसे समय में उदासीन रहने से पुरुष के विचारों में भी अन्तर आ जाता है। स्त्री को वन्ध्या समझ कर अथवा रति के अयोग्य जान कर उसका मन विरक्त हो जाता है। प्रायः इसी का परिणाम देखने में आता है कि गृह-पत्नि अत्यन्त सुन्दरी युवती होती हुई भी पुरुष पर-स्त्री-गामी हो जाता है। स्त्री की यह कमजोरी उसी की घातिका हो जाती है। फिर हजार चेष्टा करने पर भी एक सूत्रता नहीं होती। इस लिए स्त्री को चाहिए कि सुन्दर वस्त्र आभूषण पहन कर, सुगन्धित द्रव्यों से वस्त्रों को सुवासित कर मनोहर हाव-भाव के साथ पति को अपनाने की चेष्टा करे। वह इस बात को मन में निश्चय कर ले कि पति को मेरी किसी प्रकार की कमजोरी दिखाई न दे। पति की इच्छापूर्ति में किसी प्रकार की त्रुटि न हो। पति को किसी प्रकार की कलह का भाव दिखायी न दे। अधिक मान या हठ न करे। पति की गति-विधि को समझने की खूब चेष्टा करे। जो रमणी इन बातों पर विशेष ध्यान रखती है, उसका पति उसके खिलाफ कभी नहीं होता, वह उसका दास बन जाता है। उस घर में कभी कलह या मत-भेद नहीं होने पाता।

---*---

# सम्भोग गृह

जिस कमरे में सोहागरात का आयोजन किया जाय, वह हवादार और स्वच्छ होना चाहिए। उसमें हलका और मधुर प्रकाश हो। वह ऋतु अनुसार वस्तुओं से सुसज्जित होना चाहिए शूर-वीर, त्यागी महात्माओं के चित्र स्थान-स्थान पर लगे रहने चाहिएँ। किसी प्रकार के गन्दे चित्र उसमें न होने चाहिएँ। सुन्दर सुगन्धयुक्त मालाओं से सजा हुआ और सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित होना चाहिए। उसमें उपयोगी वस्तु से अधिक सामान न होना चाहिए। दो पलंग, मुलायम बिस्तर से सुसज्जित जलपूर्ण पात्र, और कुल खाद्य सामग्री जैसे—मेवा, फल इत्यादि अवश्य रहना चाहिए, और सम्भोग के पूर्व निम्न बातों का ध्यान रखना परम आवश्यक है:—

१—जिस रात स्त्री-पुरुष को सम्बन्ध करना हो, उसके पूर्व उन दोनों को चाहिए कि वे उबटन आदि मलकर खूब अच्छी प्रकार शीतकाल हो तो किंचित-उष्ण जल और गरमी हो तो खूब ठण्ढे जल से स्नान करें। तत्पश्चात् सुगन्धित वस्तु लेपन करें। पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे, और स्त्री हलके रंगीन वस्त्र पहने। वस्त्र गहरे रंग से रंगे हुए न होने चाहियें। स्त्री पूर्ण शृङ्गार से अपने-आपको सजाये।

२—हलका, किन्तु बल-वर्द्धक भोजन करना चाहिए। भूखे

रहना अच्छा नहीं। भोजन करने के पश्चात् कम से कम दो घण्टा ठहर कर सम्भोग कार्य में संलग्न होना चाहिए। अन्यथा स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

३—किसी प्रकार के परिश्रम से थके हुए स्त्री पुरुष को कदापि सम्भोग न करना चाहिए।

## सम्भोग काल

१—वसन्त ऋतु सबसे उत्तम ऋतु है। क्योंकि इसमें स्वभावतः स्त्रा पुरुषों में काम जागृत रहता है।

२—ग्रीष्मऋतु की रात्रि मैथुन के लिए सर्वथा हेय है।

३—वर्षाऋतु में भी स्त्री सम्बन्ध कम करना चाहिए। क्योंकि उसमें वायु कुपित रहती है।

४—शरद ऋतु में यथा रुचि सम्भोग करना चाहिए।

५—जाड़े में रात को, ग्रीष्म में दिन को, वसन्त में हर समय, और वर्षा में जब बादल उमड़ रहे हों, पानी बरसते समय सम्भोग करना चाहिए।

## काम संदीपिनी कलाएँ

जब तक स्त्री पुरुष में काम सन्दीप्त नहीं हो जाता, तब तक रति क्रिया का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता, और न तो गर्भ स्थिति हो सकती है। इन कलाओं को जान लेने से कमजोर पुरुष

बलवती स्त्री से तथा कमजोर स्त्री बलवान पुरुष से भी सरलता पूर्वक तृप्त हो सकती है। इन्हीं कलाओं का विशेष निरूपण कामशास्त्र विशारद कोका पण्डित ने निम्न प्रकार किया है।

## स्पृष्टक आलिङ्गन

यद्योषितः संमुखमागतायाः,
अन्यापदेशाद्व्रजतो नरस्य।
गात्रेण गात्रं घटते रतज्ञा,
आलिङ्गनं स्पृष्टकमेतदाह॥

जब तक स्त्री पुरुष आपस में अपरिचित होते हैं और संकोचवश एक दूसरे से विशेष बातचीत नहीं कर पाते, उस समय घर के किसी एकान्त स्थान में भेंट हो जाने पर एक दूसरे की देह को किसी बहाने से स्पर्श करें, उस मुलायम स्पर्श को स्पृष्टक आलिंगन कहते हैं।

## बिद्धक आलिङ्गन

यद्गृह्णती किञ्चन वंचितार्थं,
स्थितोपविष्टं पुरुषं स्तनाभ्याम्।
नितम्बिनी विध्यति तां च गाढं,
गृह्णात्यसौ विद्धकमुच्यते तत॥

स्त्री पुरुषों के कुछ विशेष परिचित हो जाने पर दूसरों की

नजर बचाकर एकान्त में बैठी हुई स्त्री के स्तनों का मर्दन या बगल आदि में गुदगुदा देना अथवा एकान्त में बैठे पुरुष को स्त्री का गोदना या अपने स्तनों का उसके शरीर पर मर्दन करना बिद्धक आलिंगन कहाता है ।

## पीडित आलिङ्गन

यात्रोत्सवादौ तिमिरे घने वा,
यद्गच्छतोः स्याच्चिरमङ्गसङ्गः ।
उद्घृष्टकं तत्पुनरेव कुड्ये,
निपीडनात्पीडितसंज्ञकं स्यात् ॥

प्रकाश में अथवा घने अन्धकार में किसी विशेष बात को देख कर एक दूसरे के किसी अंग को दबाना या मसलना उद्घृष्ट आलिंगन कहाता है और यदि हलका धक्का देकर फिर उसे खींचकर आलिंगन किया जाय तो उसे पीडित आलिंगन कहते हैं ।

## कामोद्दीपिका प्रधान कला

मनसिज को जगाने वाली प्रधान कला स्पार्शिका ही है । जिसके आलिंगन चुम्बन दन्त-दशन, और नखक्षत आदि अनेक भेद हैं । जिनका दिग्दर्शन आगे किया जायगा ।

आलिंगन से दो शरीरों का संघर्ष होने पर दोनों में विद्युत प्रवाह दौड़ने लगता है । उस प्रवाह में मानसिक वृत्तियों का भी संचार होने लगता है । उन वृत्तियों में जैसे मानसिक विचार होते

हैं उनका असर परस्पर होने लगता है । शुद्ध वृत्तियाँ शुद्ध भाव को पैदा करती हैं और काम काज को प्रवृद्ध कर डालती हैं। शुद्ध वृत्तियों का प्रयोग सन्तान वा बहन भाई आदि के साथ होता है और काम काज का अपनी भार्या के साथ । इस स्पार्शिका क्रिया का प्रभाव हाथी पर अधिक देखने में आता है। जब हाथी मस्ताकर मद-मस्त हो जाता है तब आपे से बाहर होकर सब पर हमला करने लगता है । हजार प्रयत्न करने पर भी रोकना कठिन हो जाता है । चतुर पीलवान हथिनी लाकर उसके पास छोड़ देते हैं । हथिनी की सूँड़ का स्पर्श होते ही वह सब उपद्रव छोड़कर ऐसा शान्त हो जाता है मानो कुछ हुआ ही नहीं था । इस लिए स्पर्श काम-संदीपिनी कला का प्रधान शस्त्र है ।

जिन स्त्री-पुरुषों को सामान्य स्पर्श से कामोद्दीपन नहीं होता अथवा विलम्ब लगता है । उनके लिए चुम्बन का प्रयोग किया जाता है । यदि इतने पर भी काम जागृत न हो तब दन्त-दशन ( दाँतों से स्थान-स्थान पर काटना ) और नखक्षत का व्यवहार किया जाता है। किन्हीं-किन्हीं को इन दो प्रयोगों के बिना काम जागता ही नहीं । बिना काम जागे मैथुन करना मृतक-सम्भोग कहाता है । आजकल प्रायः मृत-सम्भोग ही देखा जाता है क्योंकि प्रायः स्त्रियाँ अतृप्त ही रहती हैं । पुरुष अपने वीर्य का बार-बार दुरुपयोग कर अपने पुँस्त्व को खो बैठता है और स्त्रियाँ अतृप्त रह जाती हैं ।

यह उपरोक्त आलिंगन उन्हीं स्त्री पुरुषों में विशेष रूप से होते

हैं, जिनमें परस्पर सम्भोग होकर विशेष परिचिति हो जाती है इनसे विशेष परस्पर प्रेम की वृद्धि और संकोच भाव की कमी हो जाती है इस प्रकार जब दोनों की झिझक दूर हो जाती है, तब लतावेष्ठितादि आलिंगन किये जाते हैं।

## लतावेष्ठित आलिंगन

**प्रियमनुकृतवल्लीविभ्रमा वेष्टयन्ती,**
**द्रुममिव सरलांगी मन्दसीत्का तदीयम्।**
**वदनमुदितखेलाक्रन्दमाचुम्बनार्थं,**
**नमयति विनमन्ती तल्लतावेष्टितं स्यात्॥**

जिस प्रकार एक पेड़ को लता लपेटती हुई ऊपर चढ़ जाती है उसी प्रकार अपने पैरों से खड़े हुए पुरुष को जंघाओं को और बाहों से बगल तथा कण्ठ को लपेट कर सीत्कार करती हुई पति के मुख के सम्मुख अपना मुख चुम्बन के लिये झुका देती है उसको लतावेष्ठित आलिंगन कहते हैं।

## वृक्षादि रूढ आलिंगन

**स्थितपतिमधिकृत्य प्रोक्तमाश्लेष युग्मं,**
**सपदि च कथनीयाः सुप्तसंश्लेषभेदाः।**
**तरुमिव रमितारं चुम्बनार्थाधिरोढुं,**
**यदभिलषति नारी तच्च वृक्षाधिरूढम्॥**

यह भी लतावेष्ठित के समान ही आलिंगन होता है; किन्तु अन्तर इतना ही है कि कामोद्वेग में स्त्री अपने पैर से पुरुष के एक पैर को दबाकर दूसरे पैर से उसकी जंघाओं को लपेटती हुई, अपनी भुजा को पति के कक्ष भाग से कन्धे को पकड़ कर ऊपर की ओर उठती हुई पति का चुम्बन करती है, इसको वृक्षादि रूढ़ आलिंगन कहते हैं ।

## तिलतण्डुल आलिंगन

असकृदपि विगाढाश्लेषलीलां वितन्वन्,
जनितजघनबाहुव्यत्ययांस्पर्धयेव ।
मिथुनमथ मिथोऽङ्गे लीयते निस्तरंगं,
निगदति तिलपूर्वं तण्डुलं तन्मुनीन्द्रः ॥

यह आलिंगन लेटकर और खड़े होकर दोनों प्रकार से होता है इसकी क्रिया प्रायः लतावेष्ठित या वृक्षादिरूढ़ के समान ही होती है । इसमें केवल अन्तर इतना ही है कि वे दोनों आलिंगन मुख चुम्बन मात्र के लिये किये जाते हैं, और यह प्रत्येक अंग को जोर से दबाकर एक रूपता लाने के लिए किया जाता है इससे सम्पूर्ण शरीर में रति की जागृति हो जाती है । इस लिए इसको तिल तण्डुल आलिंगन कहते हैं ।

—:o:—

# क्षीरनीरालिंगन

अभिमुखमुपविष्टा योषिदंकेऽथ तल्पे,
रुचितरुचिरगाढालिंगनो वल्लभश्च ।
प्रसरदसमरागावेशनश्यद्विचारौ,
विशत इव मिथोऽङ्गे क्षीरनीरं तदाहुः ॥

वही तिल तण्डुल आलिंगन करते हुए जब स्त्री पुरुष काम पीड़ित होकर अपने आपको भूल जाते हैं अर्थात् जिस प्रकार दुध और जल एक होकर भेद-भाव को मिटा देता है, उसी प्रकार स्त्री पुरुष का अपनी अवस्था के भेद को भूल जाने से यह क्षीरनीरालिंगन कहाता है ।

# उरुपगुढालिंगन

तत्रोरुसंदंशेनैकमूरुमूरुद्वयं वा सर्वप्राणं-
पीडयेदित्यूरूपगूहनम् ॥

काम-पीड़िता अबला की जंघाओं को अपनी जंघाओं में दबाकर जो पीडन-क्रिया किया जाता है, उसको उरूपगूढ़ालिंगन कहते हैं । यह आलिंगन आमने-सामने करवट लेटे हुए स्त्री-पुरुषों में किया जाता है । इससे मानसल भाग दबने से बहुत आनन्द मालूम होता है ।

असली कोकशास्त्र

चित्र नं० २, ३
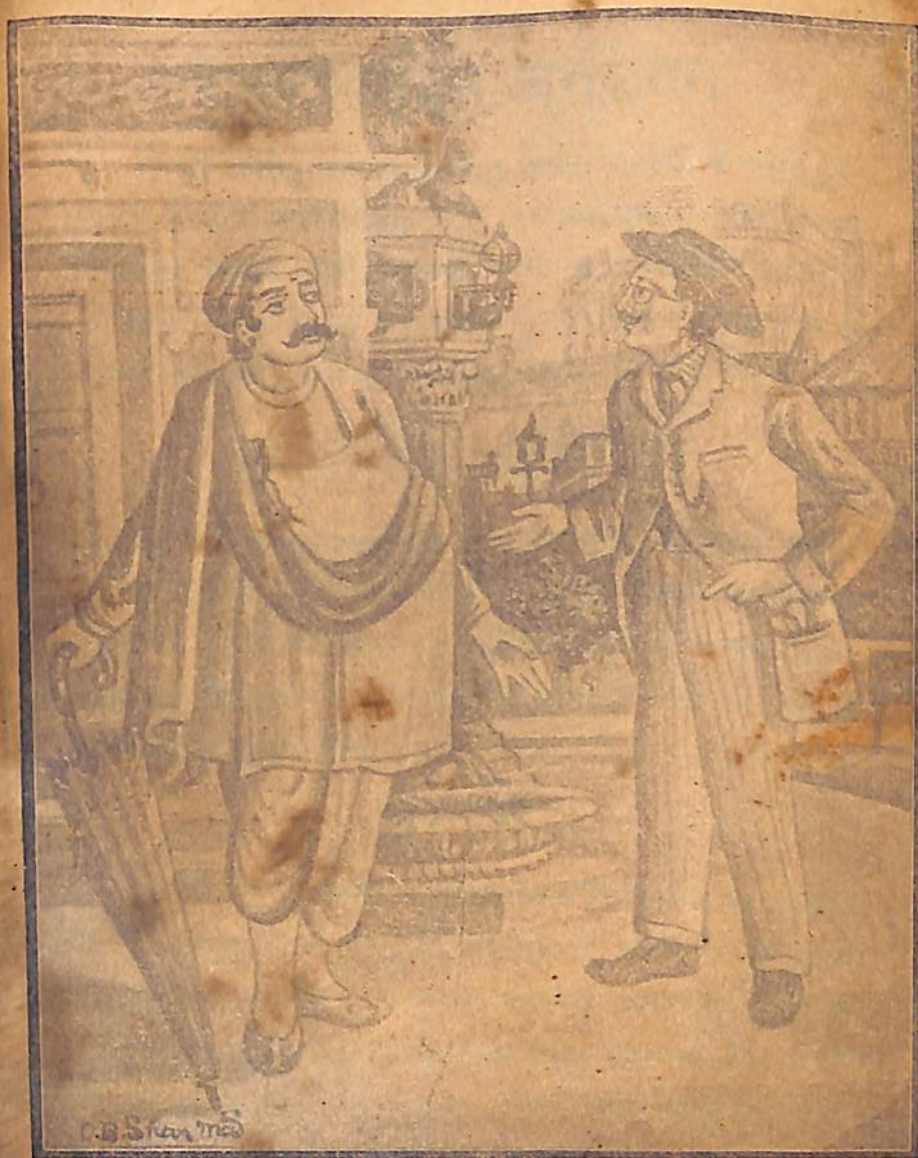
वृषभ पुरुष    मृग पुरुष

## जघनोपगुहन आलिंगन

जो स्त्री अपने बालों को फैलाकर अपनी जंघाओं के उभरे हुए भाग से पुरुष की जंघा को दबाती है, नखक्षत, दन्तक्षत और चुम्बन करती हुई ग्रहणान करती है उसको जघनोपगूहन आलिंगन कहते हैं। यह आलिंगन स्त्री के बढ़े हुए कामोद्वेग का सूचक है। जो पुरुष के मन्द कामोद्वेग को तीव्र करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

## लालाटिक आलिंगन

जब स्त्री पति की छाती में लिपट कर स्तनों का स्पर्श करती है, और मुख से मुख, आँख से आँख लड़ाकर मस्तक से मस्तक रगड़ती है तब उसको लालाटिक आलिंगन कहते हैं। यह प्रायः अकस्मात लेटे हुए पति के साथ किया जाता है। यह भी स्त्री में कामोद्वेग का सूचक होता है।

## चुम्बन

यह भी सुरत जगाने में परम सहायक है। नायक या नायिका से जब चुम्बन किया जाता है, तब चुम्बन करने वाले में पहले कामोद्वेग उत्पन्न होता है। इसका आरम्भ आलिंगन के बाद ही होता है। यथार्थतः यह आलिंगन का एक भेद-मात्र है। प्रथम चुम्बन मस्तक और फिर गण्डस्थल तथा अन्य स्थलों पर होता

हुआ मुख चुम्बन तक आ पहुँचता है । उसके भेद क्रमशः नीचे लिखे जाते हैं ।

## निमित्तक चुम्बन

बलात्कारेण नियुक्ता मुखे मुखमाधत्ते-
न तु विचेष्टत इति निमित्तकम् ॥

नव-वधू को आग्रह पूर्वक जब पुरुष चूमने के लिये उसके कपोलों पर मुख रख देता है, किन्तु वह संकोचवश कुछ चेष्टा नहीं करती तो उस चुम्बन को निमित्तक चुम्बन समझना चाहिए । यह चुम्बन सुहागरात को किया जाता है ।

## स्फुरितक चुम्बन

वदने प्रवेशितं चौष्ठं मनागपत्रपाऽनुग्रहीतुमिच्छन्ती ।
स्पन्दयति स्वमोष्ठं नोत्तरमुत्सहत इति स्फुरितकम् ॥

नवोढ़ा स्त्री के अधरोष्ठ पर जब उसका पति अपने ओष्ठ रख देता है, और वह उसके प्रत्युत्तर में चूमने की इच्छा करती हुई लज्जावश केवल ओष्ठ हिलाकर रह जाती है, अथवा उद्वेग भाव से ओष्ठ काँप जाते हैं, तब उस चुम्बन को स्फुरितक चुम्बन कहते हैं ।

## घट्टितक चुम्बन

पत्नी पती के मुख पर रक्खे हुए ओष्ठ को कुछ पकड़ कर

अपनी आँख बन्द करती हुई और पति की आँखों को भी अपने हाथों से ढाँप कर पति के ओठ को अपनी जिह्वा के अग्रभाग से धीरे-धीरे रगड़ती है, इस लिए उसको घट्टितक चुम्बन कहते हैं।

## सम चुम्बन

जब पति-पत्नि परस्पर एक दूसरे के चुम्बन का जवाब चुम्बन में यथास्थान देते हैं, उस चुम्बन को सम चुम्बन कहते हैं।

## तिर्यक चुम्बन

पति-पत्नि अपने मुख को कुछ टेढ़ा करके जब परस्पर मुख का चुम्बन करते हैं, तब उसे तिर्यक चुम्बन कहते हैं। यह चुम्बन किसी वाटिका में बेंच या घास पर पाँव फैलाकर बैठे हुए किया जाता है।

## उद्भ्रान्त चुम्बन

नायक या नायिका जब किसी एकान्त स्थान में बैठी हो, तब उनमें से एक बैठे हुए के पृष्ठ भाग से आकर अपने दाहिने हाथ से ठुड्डी को और बायें से सिर को पकड़ और अपनी ओर घुमाकर जो चुम्बन किया जाता है उसको उद्भ्रान्त चुम्बन कहते हैं।

## अवपीडितक चुम्बन

यह चुम्बन दो प्रकार का है। पहला पति-पत्नी परस्पर एक दूसरे के ओठों को ओठों में दबाकर चुम्बन करते हैं, उसको अव-

पीड़ितक चुम्बन कहते हैं। दूसरा पत्नी के अधरोष्ठ को अंगुलियों में पकड़ कर पति अपने ओष्ठों से खूब पोड़ित करे, किन्तु दाँत न लगने दे। इसे भी अवपीडितक चुम्बन कहते हैं।

## उत्तर चुम्बन

जिस भाँति पति जिस स्थान का चुम्बन करे ठीक उसी प्रकार पत्नी का उस स्थान का चुम्बन करना उत्तर चुम्बन कहाता है। इस चुम्बन का आरम्भ दोनों ओर से हो सकता है।

## प्रातिबोध चुम्बन

यदि सुचिरसमेतः प्रेयसीमप्रसुप्तां,
रहसि कृतकनिद्रां चुम्बति प्राणनाथः।
कथितविधमिदं स्याच्चुम्बनं प्रातिबोधं,
द्वयमिदमपरं स्याच्चुम्बनं छायिकाख्यम्॥

पति के घर पर देर से लौटने पर सोई हुई अथवा सोने के बहाने से लेटी हुई पत्नी का एकान्त में किया हुआ चुम्बन प्रातिबोध चुम्बन कहाता है। इस प्रकार का चुम्बन दोनों ओर से किया जा सकता है।

## छायातथा संक्रान्ति चुम्बन

अभिनवमनुरागं व्यञ्जितुं दर्पणादौ,
प्रतिकृतिविषयं वा चुम्बनं पुंस्त्रियोः स्यात्।

प्रतिकृतिशिशुचित्राश्लेषणं चुम्बनं वा,
द्वयमुपहितभावं तच्च संक्रान्तमाहुः ॥

दर्पण आदि में प्रतिविम्ब को देखकर, चित्रों या बालक बालिकाओं को प्रतिनिधि मानकर जो चुम्बन किया जाता है उसे छाया चुम्बन और संक्रान्त चुम्बन कहते हैं। ये चुम्बन अत्यन्त मुग्ध अवस्था में किये जाते हैं।

## चुम्बन द्यूत

यह चुम्बन हार जीत की नियत से किया जाता है। इससे दम्पति में प्रेम की वृद्धि होती है। इसमें पत्नी की हार ही शोभा देती है। स्त्री-पुरुषों में से जो कोई ग्रहणक विधि से दूसरे के अधर ओष्ठ को पकड़ ले उसी की जीत समझी जाती है। इस क्रीड़ा में अनेक विध छल-कपट से काम लेना पड़ता है। यह अन्य चुम्बनों की भाँति सीधी-साधी सरल रीति से नहीं किया जाता। जब पत्नी हार जाती है तब उसकी क्या हालत होती है इसका आचार्य वर्णन करते हैं—

तत्र जिता सार्धरुदितंकरं विधुनुयात्प्रणुदेद्दशे-त्परिवर्तयेद्बलादाहृता विवदेत पुनरप्यस्तु पण इति ब्रूयात्, तत्रापि जिताद्विगुणमायस्येत ॥

वह हाथ पाँव को पीटती और सिसकियाँ भरती हुई खिन्न होकर प्रणयी को धक्का देकर दूर हटाती है और दन्त-दशन या

नखछेद का प्रयोग भी करती है। पुनः पुनः पति से छेड़े जाने पर फिर चुम्बन द्यूत के लिए तैयार हो जाती है। संयोगवश अथवा पति उसका मान रखने के लिए उसे जिता देता है। उस अवस्था का वर्णन आचार्य करते हैं—

**विश्रब्धस्य प्रमत्तस्य वाऽधरमवगृह्य दशनान्तर्गतमनिर्गमं कृत्वा हसेदुत्क्रोशेत्तर्जयेद्वल्गेदाह्वयेन्नृत्येत्प्रनर्तितभ्रुणा च विचलनयनेन मुखेन विहसन्ती तानि तानि च ब्रूयादिति चुम्बनद्यूतकलहः ॥**

अधरोष्ठ को पकड़े हुए हँसती है और कहती कि यदि छुड़ाने की चेष्टा करोगे तो काटे बिना न छोड़ूँगी। उन्मत्त की भाँति उत्तेजित होकर भ्रुवों को नचाती, नयन मटकाती, तथा व्यंग बाण बरसाती हुई विनोद भरे तिरस्कार पूर्ण वाक्य बोलती है।

## राग संदीपक चुम्बन

काम पीड़िता नारी भोग की अभिलाषा से जब सोते हुए पति को जगाने के लिये उसके सम्मुख मुख को देखती हुई चुम्बन करती है, उसे राग संदीपक चुम्बन कहते हैं। यह चुम्बन पति की कामेच्छा जिताने के लिये किया जाता है। पति को ऐसा देखकर स्त्री का अभिप्राय समझ लेना चाहिए कि पत्नी सम्भोग के लिये जगा रही है।

# चलितक चुम्बन

**प्रमत्तस्य विवदमानस्य वाऽन्यतोऽभिमुखस्य**
**सुप्ताभिमुखस्य वा निद्राव्याघातार्थं चलितकम् ॥**

उन्मत्त पुरुष स्त्री से विवाद कर रहा हो अथवा अन्य किसी ओर मन लगाये हुए हो या तन्द्रा से झपकियाँ ले रहा हो। उस समय उसे सावधान कर अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये जो स्त्री से चुम्बन किया जाता है उसे चलितक चुम्बन कहते हैं। उपरोक्त किसी प्रकार विक्षिप्त पति को काम चेष्टार्थ आह्वाहन करने के लिये पत्नी को चाहिए कि वह ऊपर कहे साधारण चुम्बन का अवलम्बन करे।

# प्रातिबोधित चुम्बन

**चिररात्राबागतस्य शयनसुप्तायाः**
**स्वाभिप्रायचुम्बनं प्रातिबोधिकम्।**

रात्रि को देर करके घर आने पर, सोयी हुई स्त्री को जगाने की इच्छा से जो चुम्बन किया जाता है उसे प्रातिबोधित चुम्बन कहते हैं। इस प्रकार मृदु उपचार से जगाने पर स्त्री को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता ओर वह पुरुष के अभिप्राय को समझ जाती है। तथा स्त्री को इस बात का अभिमान होता है कि पति उससे प्रेम करता है।

## समौष्ठ चुम्बन

पति के दोनों ओष्ठों को पत्नि अपने ओष्ठों में दबाकर जब उस पर जिह्वा घर्षण करती है, उसको समौष्ठ चुम्बन कहते हैं। यह पंचशायक का कथन है।

## नखक्षत

यह प्रयोग भी कामाग्नि प्रज्ज्वलिका करने के लिए ही काम में लाया जाता है। जिन स्त्री पुरुषों की स्पार्शन शक्ति कमजोर होती है, और उनमें कामोद्वेग की उत्पत्ति नहीं हो पाती, उनमें नखच्छेद से ही रति का आविर्भाव हो आता है अथवा जिस समय स्त्री पुरुष अत्यन्त उन्मत्त होकर अपने आपको भूल से जाते हैं, उस समय इसके प्रयोग से विषय-जनित आनन्द उत्पन्न किया जाता है। इसका प्रयोग इस समय प्रायः लुप्त-सा हो गया है, इस कारण रति के एक अंग की हानि ही समझनी चाहिए। इसके अभाव से स्पार्शन शक्ति विहीन नर-नारियों की तृप्ति नहीं हो पाती। और उन्मत्त नारि की भी वही दशा होती है, इस लिए इस कला का जानना अत्यन्त उपयोगी है। जिसका दिग्दर्शन आचार्यों ने जिस प्रकार किया है। नीचे दिया जाता है।

## आच्छुरित नखच्छेद

प्रयोज्यायाश्च तस्याङ्गसंवाहने शिरसः कण्डूयने पिटकभेदने व्याकुलीकरणे भीषणे च प्रयोगः ॥

जिस समय नायक के अंगों को नायिका दबा रही हो, अथवा तैल मर्दन कर रही हो, या मुहासे फोड़ रही हो, उस समय नायिका आच्छुरित नखच्छेद का प्रयोग करती है। नायक भी ऐसी ही किन्हीं दशाओं में इस कला का प्रयोग करता है।

## अर्धचन्द्र नखच्छेद

नायक नायिका के स्तनों पर अथवा गर्दन के किसी हिस्से पर कामोद्वेग के समय नायिका में कामोद्वेग उत्पन्न करने के लिये इस अर्धचन्द्र नखच्छेद का प्रयोग करता है।

## मण्डलक्षत नखच्छेद

यह गोल आकार वाला नखक्षत होता है। यह चिगोटी करने से आमने सामने दो अँगुलियों के नखच्छेद हो जाने से उत्पन्न हो जाता है। इस लिए इसको मण्डलक्षत कहते हैं। इसका प्रयोग प्रायः नाभि के नीचे भाग में लिया जाता है। नखच्छेद लम्बी रेखा में न होना चाहिए। इसकी लम्बाई लगभग दो या तीन अँगुल के हो सकती है, और योनि के उभरे स्थान पर भी इसका प्रयोग किया जाता है।

## व्याघ्र नखच्छेद

इस रेखा का आकर कुछ खरोंच की भाँति टेढ़ा होने से इसे व्याघ्र नखच्छेद कहते हैं।

## मयूरपद नखच्छेद

अङ्गुष्ठजं नखमधो विनिवेश्य कृष्टैः,
सर्वाङ्गुलीकररुहैरुपरि स्तनस्य ।
तच्चूचुकाभिमुखमेत्य भवन्ति रेखाः,
तज्ज्ञाः मयूरपद तकंदुदाहरन्ति ॥

रमणी के स्तन-मुख पर जब पाँचो अँगुलियों के नखों के निशान बन जाते हैं, तब उसे मयूरपद नखच्छेद कहते हैं। अंगूठा स्तन के नीचे की ओर लगाकर ऊपर की ओर चारों अँगुलियों से दबाकर स्तन के अग्रभाग को नखों की ओर जोर से दबाकर उछालने से यह मयूरपद चिह्न बन जाता है।

## उत्पलपत्रक नखच्छेद

सर्वैः शशप्लुतमिदं करजैः कुचाग्रे,
ह्यन्वर्थमुत्पलदलं स्तनगुह्यपृष्ठे ।
रेखा घनास्त्रिचतुरा जघने स्तने वा,
स्मर्तुं प्रवासगमने विदधुर्विदग्धाः ॥

रमणी के कटि भाग तथा स्तनों पर कमल की पत्तियों की भाँति नखक्षत चिन्ह बना देने से उत्पलपत्रक नखच्छेद कहलाता है। मांसल भागों पर नखक्षत लाल-लाल रंग के बड़े सुन्दर चित्ताकर्षक चिन्ह बन जाते हैं, जिन्हें देखकर नर-नारी दोनों में कामोद्वेग

जागृत हो जाता है। परदेश जाते समय पुरुष स्त्री के जंघा, स्तन आदि पर नखक्षत स्मृति के लिए चिन्ह कर जाया करते हैं, और पुरुष के भी अंगों पर रमणी चिन्ह बना देती हैं। जिन स्मारक चिन्हों को प्रवास अवस्था में देखकर पति-पत्नि एक दूसरे का स्मरण कर लेते हैं।

नखच्छेदों के भेदों की पूरी गणना कामशास्त्रज्ञ आचार्यों ने नहीं की। हो भी नहीं सकती। उन लोगों का कथन है कि कामान्ध हो जाने पर रति-क्रिया में प्रवृत्त पुरुष किन-किन विचित्र कौशलों का अवलम्बन कर डालता है, उस अवस्था में उसे उनका स्वयं ज्ञान नहीं होता। शास्त्र-मर्यादा केवल मार्गदर्शिका होती है। उसका प्रयोजन सिद्ध हो जाने पर फिर उसके क्रम की आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि पुरुष अपनी बुद्धि से अनेक क्रियाओं का आविष्कार कर लेता है। जिनसे कामानुराग बढ़ जाता है। यही सफलता का चिन्ह है।

—:o:—

## दन्तक्षत

चुम्बन में ओष्ठों के कोमल स्पर्श से जब काम विशेष उद्दीप्त हो जाता है, तब चुम्बन स्पर्श का आनन्द तिरोहित-सा हो जाता है, और नर-नारी उस समय विशेष कठोर स्पर्श से काम लेने की चेष्टा करते हैं। उस अवस्था में दन्तक्षत की आवश्यकता पड़ती है। जिन स्थानों पर चुम्बन किया जाता है, उन्हीं मांसल स्थानों को ओठ और दाँतों में पकड़ कर जोर से दबाते हैं। यह क्रिया दोनों की ओर से समान ही होती है। कभी-कभी दाँतों का निशान बहुत गहरा हो जाता है। जो कई दिन तक बना रहता है। उसको देखकर उन्हें रति-सुख का स्मरण हो आता है। यह क्रिया भी रति उत्पन्न करने में परम सहायिका है।

## गूढक दन्तक्षत

रागैःकलिंगमधरे किल गूढकं स्यादुच्छूनकं-
दशनवाससि वामगण्डे।
स्यात्पीडनात्तदधरोष्ठविशेषयोगात्,
तत्र प्रवालामणिरभ्यसनेन साध्यः॥

रमणी के अधर पर दाँत का चिन्ह मात्र कर देने को गूढ़क दन्तक्षत कहते हैं। यह चिन्ह इतना स्वल्प होता है, कि जिसका दर्शन ध्यान देने से ही हो सकता है। यथार्थतः ऐसा ही दन्तदशन प्रशंसनीय समझा गया है।

# उच्छूनक दन्तक्षत

यह भी गूढ़क के समान ही होता है। किन्तु इसमें विशेषता केवल इतनी ही होती है कि यह कुछ गूढ़क की अपेक्षा तीव्र होता है। इसका प्रयोग विशेष काम वृद्धि पर अनायास हो जाता है।

# प्रवालमणि दन्तक्षत

यह अधर तथा गालों पर दाँतों की पंक्ति की माला के समान बन जाता है। इस लिए इसको प्रवालमणि दन्तक्षत कहते हैं।

# विन्दु दन्तक्षत

अल्पदेशायाश्चत्वचो दशनद्वयसन्दंशजा विन्दुसिद्धिः

अधर, ओष्ठ के मध्यभाग में तिलमात्र दोनों दाँतों से काटने पर जो विन्दु बन जाता है, उसको विन्दु दन्तक्षत कहते हैं।

# विन्दुमाला दन्तक्षत

विन्दु दशन की भाँति अनेक दाँतों के क्षत विन्दुओं की पंक्ति को विन्दुमाला दन्तक्षत कहते हैं। इस प्रकार विन्दुमाला, मणि-माला नाम के दन्तक्षत, वक्षस्थल, कुक्षि और कपोल आदि स्थानों पर निर्माण किये जाते हैं। प्रायः मांसल स्थान ही इसके लिए उपयुक्त समझे जाते हैं।

## खण्डाभ्रक दन्तक्षत

खण्डाभ्रकं स्तनतटे दशनाग्रलेख्यं,
स्यान्मण्डलाकृतियुतं विषमैश्च कूटैः ।
ताम्रान्तरा रदनराजिरखर्वसान्द्रा,
स्यात्कोलचर्वितमियं स्तनपृष्ठभूषा ॥

स्तनों के नीचे ऊपर दाँतों से क्षत किया हुआ गोल आकार वाला चिन्ह पड़ जाता है। जो मध्य में लाल, आभायुक्त होता है। वह बिखरी हुई मणिमाला के समान स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। उसको खण्डाभ्रक दन्तक्षत कहते हैं।

—:o:—

# देश भेद से नारी रमण

## देशसात्म्याच्च योषित उपचरेत।

प्रत्येक देश की प्रथानुसार स्त्रियों के साथ रमण करना चाहिए। जो पुरुष तद्देशीय स्त्रियों के समान अपना स्वभाव बनाकर रमण करता है, वह मनुष्य रति सुख का आनन्द प्राप्त कर लेता है। अन्यथा दोनों ही रति-सुख से वंचित रह जाते हैं, और प्रेम के स्थान में द्वेषभाव उत्पन्न हो जाता है। देशानुसार स्त्रियों के स्वभाव का आचार्यों ने जिस प्रकार वर्णन किया है, वह नीचे दिखाया जाता है।

मध्यदेश की स्त्रियाँ प्रायः आर्य स्वाभाव वाली होती है। जो पवित्रता के कारण चुम्बन, नखक्षत्र, दन्तक्षत, आदि से घृणा करती हैं। ऐसा व्यवहार करने वाले मनुष्य से भी घृणा करती हैं।

वाहूणीक देश की स्त्रियाँ भी नख, दन्तक्षतादि को अच्छा नहीं समझतीं।

उज्जैन देशीया स्त्रियें भी उपरोक्त स्वभाव वाली होती हैं। इनका चित्रों में अधिक प्रेम होता है।

मालव देश की स्त्रियां आलिंगन, चुम्बन, नखक्षत, दन्तक्षत अधरपान आदि में रुचि रखती हैं। किन्तु अधिक नहीं। प्रहणन को बहुत चाहती हैं।

सिन्धु देश की स्त्रियां मुख मैथुन को अधिक पसन्द करती हैं।

काठियावाड़ और लाट देश की स्त्रियाँ प्रचण्ड-कामिनी होती हैं। और मैथुन काल में सीत्कार भी बहुत करती हैं।

बंगाल देश की स्त्रियाँ प्रहणन को अधिक पसन्द करती हैं, और धातुज लिंग का भी प्रयोग करती हैं।

अन्ध्र देश की स्त्रियाँ, कोमलांगी, सम्भोग प्रिया, अश्लील विचार रखनेवाली दुराचारिणी होती हैं।

महाराष्ट्र देश की स्त्रियाँ अनेक प्रकार की कलाओं को चाहने वाली तथा स्वयं उनका ज्ञान रखने वाली, कड़े और गन्दे बचन पसन्द करने वाली अति काम-विह्वला होती हैं।

पाटलीपुत्र देश की स्त्रियाँ महाराष्ट्र के समान खुला व्यवहार करने वाली नहीं होतीं। वे एकान्त में ही कलाओं का प्रयोग करने वाली होती हैं।

द्रविड़ देश की स्त्रियों की योनि से भोग के पहले ही थोड़ा सफेद रज निकल आता है।

गौड़ देश की स्त्रियाँ मीठा बोलने वाली, कोमलांगी, अधिक सम्भोग में अनुरागवती होती हैं।

आभीर देश की स्त्रियाँ प्रसन्न चित्त से आलिंगन चाहने वाली, छाती आदि पर धक्का चाहने वाली, और चुम्बन से विशेष प्रसन्न होने वाली होती है। नाखून और दाँतों के क्षत को विशेष नहीं चाहतीं।

मालव देश की स्त्रियों का भी ऐसा ही स्वभाव होता है।

गुजरात देश की स्त्रियाँ फूले हुए केशों को धारण करने वालीं, पतले शरीर वाली, मोटे स्तनों वाली, सुन्दर आँखों वाली, मीठा बोलने वाली, भीतरी बाहरी दोनों प्रकार के सम्मार्गों को चाहने वाली होती हैं।

लाट देश की स्त्रियाँ मन्द ताड़न करने से, नखक्षत, दन्तक्षत आदि से शीघ्र द्रवित होने वाली तथा विशेष आलिंगन चाहने वाली प्रचण्ड वेगवती कोमल शरीर वाली, रति-काल में विशेष आनन्द से विभोर होने वाली होती हैं।

अयोध्या की स्त्रियों की योनि में अत्यन्त खुजली होती है। इस लिए वे बनावटी लिंग से खूब ताड़न किये जाने पर द्रवित होती हैं। स्त्री राज्य की स्त्रियों के भी यही स्वभाव होते हैं।

कोंकण देश की स्त्रियाँ अपने दोष छिपाने वाली और परदोषों पर हँसने वाली होती हैं। चुम्बन, नख, दन्त, आदि क्षतों को सहने वाली, मध्य वेगवती योनि द्वार से वीर्य को चूसने वाली और अनेक विध रमण करने वाली होती हैं।

कामरू देश की स्त्रियाँ अत्यन्त कोमलांगी, बार-बार द्रवित होने वाली, स्पर्श मात्र से सम्भोग के लिए तत्पर होने वाली, मधुर भाषण करने वाली और सच्चरित्रा होती हैं।

उड़ीसा देश की स्त्रियाँ दन्त, नख आदि चिन्हों को चाहनेवाली होती हैं।

अंग, बंग, कलिंग आदि देशों की स्त्रियाँ भग-भूषण ( चमड़े

का लिंग ) को चाहने वाली नख, दन्त, आदि चिन्हों, मुष्टिकाघात आदि में रुचि रखने वाली, निरन्तर सम्भोग चाहने वाली, निर्लज्ज और अधिक अनुरागवती होती हैं।

——:*:——

# आसन

आजकल जितने भी वैवाहिक सम्बन्ध होते हैं उनमें कोकशास्त्र के अनुसार बताये हुए नर-नारियों के चिन्ह मिलान से मिलाकर नहीं किये जाते। जिस कारण उच्च रत या नीच रत वाले स्त्री पुरुष का योग नहीं मिल पाता। जिसका परिणाम यह होता है, कि योग्या-योग्य जोड़ी मिल जाने से किसी की भी तृप्ति नहीं होती। गृहस्थ सुख का अभाव हो जाने से गृहस्थ एक प्रकार का भार मालूम होने लगता है। आसनों की व्यवस्था समझ लेने से कैसा भी अनमेल विवाहित स्त्री-पुरुष क्यों न हो, वह रति-सुख से वंचित नहीं रह सकता। और सुसन्तान प्राप्त कर वह गृहस्थ को स्वर्ग के समान देख सकता है। आसन निर्माण का यथार्थ कारण यही है। किन्तु इस समय लोग उन आसनों का दुरुपयोग कर लाभ के स्थान में हानि भी उठा बैठते हैं। इसमें आसनों का कोई दोष नहीं। जैसे वैद्यकशास्त्र में अनेक प्रकार के रोग नाश करने की अनेक विध औषधियाँ बतलायी गयी हैं, यदि कोई अनाड़ी उनका अनुचित प्रयोग कर दुःख उठावे तो उसमें आयुर्वेद रचयिता का कोई दोष

नहीं। किस आसन से किस प्रकार का लाभ होता है, इसका विचार आगे किया जायगा।

यद्यपि शीत का निवारण एक बड़े वस्त्र को शरीर पर लपेट लेने मात्र से ही हो सकता है किन्तु वह एक वस्त्र अनेक विघ्न उत्पन्न कर सकता है उसी वस्त्र को काट-छाँट कर कुड़ता, कोट, पैजामा आदि बनाकर पहन लेने से शीत का निवारण भी हो जाता है, सुन्दर भी लगता है, और किसी काम में किसी प्रकार की बाधा भी उपस्थित नहीं होती। मनुष्य प्रत्येक वस्तु को किसी अच्छी अवस्था में देखना चाहता है—एक ही वस्तु से अनेक उपकार लेना चाहता है काम भी निकल जाय, और मनोविनोद भी हो, तथा किसी प्रकार की हानि न हो, ऐसा विचार दूरदर्शी पुरुषों का होता है। इसलिए विचारशील पुरुष शास्त्रानुसार बतलाये हुए मार्ग से चलते हैं। क्योंकि वह अनेक प्रकार से अनुभव द्वारा निश्चित किया हुआ होता है। यथार्थतः इस आसनकला के ज्ञान के बिना आज सहस्रों स्त्री-पुरुष सन्तानहीन, नर-नारी से विमुख गृहस्थ को शमशान के समान किये हुए हैं। इन बातों की शिक्षा किसी भी रूपमें स्त्री-पुरुषों को नहीं मिलती। इसकी शिक्षा ग्रहण करना एक प्रकार से बड़ी गन्दी बात मानी जाती है। और इस प्रकार की जो पुस्तकें लिखी भी जाती हैं, उनको बड़ी हेय दृष्टि से देखते हैं। अनेक लोगों ने तो आसनों को ही अनुपयुक्त और हेय ठहरा दिया है। इस लिए उसके सम्बन्ध में वे विचार भी क्यों करने लगे ? वे स्वयं

घृणा करते हैं और दुसरों को भी घृणा का उपदेश देते हैं, वस्तुतः वे स्वयं ही नहीं समझ पाये, यही समझना चाहिए। इन आसनों का निर्माण वात्स्यायन मुनि ने किया है। जिन्होंने न्याय-दर्शन पर भाष्य किया है, जो एक बड़ा जबर्दस्त तार्किक ग्रंथ सुप्रसिद्ध है। और भी अनेक आचार्यों ने इस विषय पर विचार किया, जिनका आधार लेकर कोका पण्डित ने कोकशास्त्र का संकलन किया, ऐसे दूरदर्शी लोकप्रसिद्ध अनुभवी महात्माओं के दिखलाये हुए मार्ग नुकसान पहुँचाने वाले हों, ऐसा सम्भव नहीं समझा जा सकता। यह दूसरी बात है कि उन आसनों के प्रयोग को हम भलीभाँति समझ न सकने से इष्टार्थ लाभ न उठा सकें।

उपरोक्त आसन व्यवस्था जिन स्त्री-पुरुषों के लिये अत्यन्त आवश्यक होती है, उनका वर्णन पहले किया जाता है।

**आरोहपरिरोहाभ्यां षण्णवद्वादशाङ्गुलैः।**
**गुह्यैः शशोवृषोऽश्वोना हरिण्यश्ववेभिकाःस्त्रियः॥**

शश पुरुष की मूत्रेन्द्रिय छः अंगुल लम्बी होती है। वृष संज्ञक पुरुष की नौ अंगुल लम्बी, तथा अश्व पुरुष की बारह अंगुल लम्बी इन्द्रिय होती है। इसी प्रकार छः अंगुल लम्बे चौड़े काम-मन्दिर के परिमाण वाली हरिणी, नौ अंगुल परिमाण वाली अश्वा तथा बारह अंगुल वाली हस्तिनी होती है।

जिन स्त्री पुरुषों के गुप्तांग परिमाण समान होते हैं, वे समरत वाले कहलाते हैं। जैसे शश और हरिणी, वृष और अश्वा,

अश्व और हस्तिनी सम-रत वाले समझे जाते हैं। क्योंकि शश छः अंगुल गुप्तेन्द्रिय वाला और हरिणी छः अंगुल गहरी परिमाण वाली होती है। इसी प्रकार वृष नौ अंगुल और अश्वा भी नौ अंगुल, तथा अश्व बारह एवं हस्तिनी भी बारह अंगुल लम्बे परिमाण वाली होती है।

किन्तु इन्हीं के विषम जोड़ों के योग से उच्चरत, और नीचरत पैदा होता है। जैसे—हिरणी वृष, बड़वा अश्व, ये दोनों उच्चरत वाले कहलाते हैं। क्योंकि इन दोनों पुरुषों की इन्द्रियें इन दोनों स्त्रियों की अपेक्षा बड़ी होती हैं। इस लिए दोनों को रति-सुख का आनन्द मिलता है। बड़वा शश, हस्तिनी और वृष ये दोनों नीचरत कहाते हैं। क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा इन दोनों स्त्रियों का काम-मन्दिर गहरा होता है। इस लिए दोनों को किसी प्रकार का रति-सुख नहीं मिलता। छः अंगुल वाली हरिणी और बारह अंगुल वाले अश्व का संयोग अति उच्च-रत कहाता है। बारह अंगुल वाली हस्तिनी और छः अंगुल वाले शश पुरुष का संयोग अति नीचरत कहाता है इन दोनों को रति का कुछ भी सुख नहीं मिलता। समान रतों को उत्तम, उच्चरतों को मध्यम और अत्युच्च तथा अतिनीच रतों को अधम कहते हैं।

समान रत स्त्री-पुरुष दोनों को सुख देनेवाला और तृप्त करने वाला होता है उसमें आनन्द ही आनन्द मिलता है, दुःख का लेश भी नहीं। इस लिए उसको उत्तम रत कहा है। उच्च रत में स्त्रियों

की योनि छोटी होने और पुरुष का लिंग बड़ा होने से स्त्री को दुःख होता है। उसके मन में हर्ष के स्थान पर क्लेश पैदा होता है। उनकी मानसिक प्रसन्नता नष्ट हो जाती है और तृप्ति नहीं होती, केवल पुरुष की दुःख-सुख के साथ अर्ध-तृप्ति होती है इसलिए उसको मध्यम कहा गया है। अति उच्च और अति नीच रतों में स्त्री-पुरुषों की इन्द्रियें एक दूसरे की अपेक्षा अत्यन्त छोटी बड़ी होने से किसी को भी आनन्द प्राप्त नहीं होता। और न किसी की तृप्ति ही होती है। इस लिए इसको अधम कहा गया है।

इन उत्तम, मध्यम और अधम रतों को समान बनाने के लिये आसनों के प्रयोग से कुछ उपाय बतलाये गये हैं। जैसे—

**रागकाले विशालयन्त्येव जघनं मृगी समविशेदुच्चरते।**

सम्भोग काल में उच्चरत में स्थित स्त्री को उचित है कि वे अपनी जंघाओं को फैला दे। ऐसा करने से पुरुषेन्द्रिय का प्रवेश बहुत सरल हो जायगा। मृगी और वृष संज्ञक पुरुष का उच्चरत कहाता है। यदि मृगी अपनी जंघाओं को फैला दे तो उसके स्मर-मन्दिर का द्वार इतना फैल जायगा कि वृष पुरुष की गुप्तेन्द्रिय सरलता पूर्वक प्रविष्ट होकर दोनों को रति-सुख का आनन्द उत्पन्न कर देगा।

वह मृगी जाति की स्त्री यदि अश्व पुरुष के साथ सम्बन्ध करती हुई अपने जघनस्थल को पूर्ण विस्तृत कर दे तो उसे भी सम-रत के समान उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है। आप पूर्ण तृप्त होती हुई पुरुष को भी तृप्त कर सकती है।

**अवहासयन्तीव हस्तिनी नीचरते ।**

यदि हस्तिनी और वृष पुरुष का संयोग हो तो इस नीचरत
में स्त्री को चाहिए कि वह अपनी जंघा को सिकोड़ ले। इससे
स्मर मन्दिर का मुख छोटा हो जायगा और सम-रत के समान
दोनों को पूर्ण सुख प्राप्त होगा।

**न्याय्यो यत्र योगस्तत्र समपृष्ठम् ।**

शश मृगी का, वृष बड़वा, और अश्व हस्तिनी का संयोग
समरत कहाता है। क्योंकि इनमें स्वाभाविक रति-सुख प्राप्त होता
है। दोनों की गुप्तेन्द्रिय समान होने के कारण किसी को इन्द्रिय
संकोच-विकाश करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

प्रत्येक पुरुष को चाहिए कि आसन बाँधते समय स्त्री के
काम-मन्दिर में पुरुष अपनी कामेन्द्रिय का प्रवेश बहुत धीरे-धीरे
करे, जिससे योनि में रहनेवाला स्निग्ध द्रव्य कामेन्द्रिय पर लगकर
वह गीली हो जाय। अन्यथा एकाकि प्रवेश करने से स्त्री को बहुत
कष्ट होता है, और कभी-कभी जननेन्द्रिय का चर्म भी उलट जाता
है। जिससे बड़ी भारी हानि पैदा हो सकती है।

## सुख आसन

स्त्री की दोनों जंघाएँ पुरुष अपनी जंघाओं पर रखकर अंग-
प्रत्यंग का मृदु स्पर्श चुम्बनादि करता हुआ सुकर रीति से उतान
लेटी हुई रमणी से भोग करता है, इसलिए उसे सुख आसन कहते
हैं। इस सुखआसन का प्रयोग समरत स्त्री पुरुषों में किया जाता है।

## उत्फुल्लक आसन

करयुग्मधृतत्रिकमूर्ध्वलसज्जघनं
पतिहस्तनिविष्टकुचम् ।
स्फिग्बिम्बबहिर्धृतपाष्णियुगं,
ह्यु त्फुल्लकयुक्तमिदं करणम् ॥

स्त्री अपने नितम्ब के ऊपरी भाग को तकिये के सहारे ऊपर उठाकर पति के नितम्बों को अपने हाथ की हथेलियों के सहारे ऊपर उठाये रहे, और पुरुष दोनों हाथ से स्त्री के स्तनों का मर्दन करे इसको उत्फुल्लक आसन कहते हैं ।

## विजृम्भितक आसन

यदि तिर्यगुदञ्चितमूरुयुग,
दधती रमते रमणी रमणम् ।
विहितापसृतिर्विवृतोरुभगा,
भुवि जृम्भितमुक्तमिदं करणम् ॥

पुरुष के समान स्त्री अपनी जंघाओं को ऊपर उठाकर पति के साथ तिरछे होकर भोग करती हुई स्वयं भी आगे-पीछे हिलती है, उसकी योनि तथा जंघाएँ खुली रहती हैं, उसे विजृम्भितक आसन कहते हैं ।

## इन्द्राणिक आसन

निजमूरुयुगं सममादधती,
प्रियजानुनि योजयति प्रमदा ।
यदि पार्श्वत एव चिराभ्यसना-
दिन्द्राणिकमुक्तमिदं करणम् ॥

जब स्त्री दोनों जंघाओं को मिलाकर पति की एक जंघा पर रखकर भोग करती है, उसको इन्द्राणिक आसन कहते हैं।

तथाचतररतस्यापि परिग्रह ।

उपरोक्त तीनों आसनों में चाहे कैसा भी उच्चरत क्यों न हो, अत्यन्त सुख के साथ सम्भोग होता है, और सभी उच्चरत वालों को पूर्ण आनन्द मिलता है।

## सम्पुट आसन

सम्पुटेन प्रतिग्रहो नीचरते ।

नीच रत वाले जोड़ों को सम्पुट से आनन्द मिलता है, अर्थात् बड़वा, हस्तिनी आदि शश के साथ संभोग करते समय अपनी जंघाओं को सिकोड़ लें। इस प्रकार सम्पुट करने से नीचरत भी समरत के समान सुख पहुँचाता है।

एतेन नोचतररतेपि सम्पुटकम् पीडितकम्
वेष्टितकम बाडवकमिति हस्तिन्याः ।

हस्तिनी के साथ जब शश पुरुष सम्भोग करे तब हस्तिनी को सम्पुट पीडितक, वेष्टितक, वाडवक संज्ञक योनि संकोचक आसनों से काम लेना चाहिये।

## सम्पुटक आसन

सरलीकृतजंघमुभौ मिलितौ,
यदि सम्पुटको भवति द्विविधः।
उत्तानकपार्श्वशाद्यु वृतेः,
स च पीडितमूरुनिपीडनतः॥

भोग करते समय स्त्री पहले अपने पैरों को फैलाकर तत्पश्चात् जंघा को ढीला कर दोनों परों को मिला दे। इसको सम्पुटक आसन कहते हैं। इसके दो भेद हैं, यदि स्त्री सीधी लेटी रहे तब उत्तान् सम्पुट, और यदि तिरछी करवट लेटी रहे तो पार्श्व सम्पुट भेद हो जाता है। पार्श्व सम्पुट आसन करते हुए पुरुष को स्त्री के दाहिने तरफ रहना चाहिए। इसमें सब आचार्य्य एकमत हैं।

## पीडितक आसन

सम्पुट की भाँति सम्भोग करते हुए यदि स्त्री अपनी जंघाओं को खूब संकुचित करे तो उसे पीडितक आसन कहते हैं।

## वेष्टितक आसन

उत्तान सम्पुट की भाँति भोग करते हुए योनि को अत्यन्त

संकुचित करने के लिये यदि स्त्री अपनी दोनों जंघाओं को आपस में लिपटा ले तो उसे वेष्टितक आसन कहा जायगा।

## वाडविक आसन

अल्प वीर्य पुरुष की कामेन्द्रिय को स्त्री जब अपने भगोष्ठों से खून दबाकर अन्दर की ओर खींचती है, तब उसे वाडविक आसन कहते हैं।

## भुगनक आसन

सौवर्णनाभास्तू भावप्यूरू उध्वां वितितद्भुग्नकम्।

स्त्री की जंघाओं को ऊपर उठाकर अधोभाग से जो मैथुन किया जाता है, उसको भुगनक आसन कहते हैं।

## जृम्भितक आसन

पुरुष स्त्री की जंघाओं को अपने कन्धे पर रखकर जब भोग करता है, उब उसे जृम्भितक आसन कहते हैं।

## उरुस्फुटन आसन

स्त्री की दोनों मिली हुई जंघाओं को पुरुष अपने हाथ से पकड़ छाती से लगाकर रमण करे तो उसे उरुस्फुटन आसन कहते हैं।

## उद्भुग्न आसन

उरुस्फुटन आसन के समान ही यह भी आसन किया जाता है। इसमें केवल जंघा छाती से नहीं लगायी जाती।

## अर्धनिपीडित आसन

यदि स्त्री पुरुष के कन्धे पर एक पैर रखकर भोग करे तो उसे अर्धनिपीडित आसन कहते हैं।

## सारित आसन

यदि एक चरण पुरुष के कन्धे पर और दूसरा नीचे की ओर फलाकर सम्भोग करे तो उसे सारित आसन कहते हैं।

## वेणुविदारित आसन

स्त्री भोग करते समय पुरुष के कन्धे पर एक पैर को रख दूसरे को खाट पर पड़ा रहने दे फिर खाट वाले पैर को कन्धे पर और कन्धे वाले को खाट पर शीघ्र गति से बदले तो उसको वेणुविदारित आसन कहते हैं।

## शूलचित आसन

यदि स्त्री अपने पैर को पुरुष के सिर पर रखकर दूसरे पैर को नीचे फैलाकर सम्भोग करे तो उसे शूलचित आसन कहते हैं।

## कर्कटक आसन

स्त्री अपने दोनों पैरों को अपनी नाभि में लगाकर सम्भोग करे तो उसको कर्कटक आसन कहते हैं।

## प्रेंखा आसन

कर्कटक की भाँति पुरुष से सम्भोग करती हुई नारी मतवाली होकर जब दोनों पाँव को हाथी के कान के समान हिलाने लगती है तब उसे प्रेंखा आसन कहते हैं ।

## पद्मासन

भोग करते समय जब रमणी अपनी दाहिनी जंघा को बायीं जंघा पर चढ़ा ले तो उसे पद्मासन कहते हैं ।

## अर्ध पद्मासन

यदि रमणी एक जंघा को ऊपर उठाकर दूसरी जंघा उस पर रख भोग करे तो उसे अर्ध पद्मासन कहते हैं ।

## परावृत्तक आसन

भोग करते समय जब स्त्री-पुरुष आपस में आलिंगन करें और थोड़ी देर बाद स्त्री पुरुष की गोद में पिछली ओर से घूमकर इस भाँति आगे आ जाय कि पुरुष की इन्द्रिय योनि से बाहर न निकलने पाये तो उसे परावृत्तक आसन कहते हैं ।

## फणिपाश आसन

स्त्री अपनी दोनों जंघाओं को पति के कन्धे के ऊपर से निकाल कर पति के कण्ठ तक पहुँच जाय और पति भी अपनी भुजाओं से जकड़ कर उसे बाँध ले तो उसे फणिपाश आसन कहते हैं ।

## स्थितरत आसन

स्त्री पुरुष परस्पर एक दूसरे का सहारा लेकर अथवा किसी दीवार के सहारे खड़े रहकर भोग करें तो उसे स्थितरत आसन कहते हैं ।

## अविलम्बितक आसन

खड़े पुरुष के गले में हाथ डाल पुरुष के बाहुपाश में जकड़ी हुई अपनी जंघाओं में पति को लपेट कर जब रमणी रमण करती है तब उस आसन को अवलम्बितक आसन कहते हैं ।

## हिंडोल आसन

अवलम्बितक आसन की भाँति यह आसन भी किया जाता है इसमें केवल इतना ही अन्तर होता है कि स्त्री हिंडोले की तरह स्वयं हिलती हुई भोग करती है, इसलिए इसको हिंडोल आसन कहते हैं ।

## धेनुक आसन

पशु के समान नीचे को मुख कर नायिका जब पीछे से पुरुष से वृष के समान मैथुन कराती है, तब उसे धेनुक आसन कहते हैं ।

## कौर्म आसन

पुरुष भुजाओं से भुजाएँ और जंघाओं से जंघाएँ तथा मुख से

मुख मिलाकर सर्वाङ्ग निपीडित करता हुआ जब सम्भोग करता है, तब वह कौर्म आसन कहाता है।

## ऊर्ध्वगतोरुयुग आसन

कौर्म आसन की भाँति यह भी आसन होता है। इसमें केवल इतनी विशेषता है कि रमण करते समय पुरुष की टाँगें ऊपर की तरफ हों तो वह ऊर्ध्वगतोरुयुग आसन कहाता है।

## परिवर्तित आसन

टाँगें ऊपर करते समय यदि स्त्री अपनी योनि का संकोच-विकाश करे तो उसे परिवर्तित आसन कहते हैं।

## समुद्र आसन

टेढ़ी करवट लेटी हुई स्त्री की जंघा में टेढ़े सोकर जंघा से जंघा मिलाकर रमण करने को समुद्र आसन कहते हैं।

## परिवर्तनक आसन

स्त्री या पुरुष पहले समुद्रक यन्त्र की विद्या को करके फि. उलटी तरह फँसाकर रमण करे तो उसे परिवर्तनक आसन कहते हैं।

## युग्म पद्मासन

एक पैर फैलाकर दूसरा सिकोड़ कर बैठी हुई स्त्री के साथ उसी प्रकार बैठकर पुरुष उसके साथ जकड़ कर आलिंगन चुम्बन करता हुआ सम्भोग करे तो उसे युग्मपद आसन कहते हैं।

# विमर्दितक आसन

यदि स्त्री की कोहिनी के बीच में अपनी कटिभाग को फेरता हुआ भोग करे तो उसे विमर्दितक आसन कहते हैं ।

# विपरीत आसन

पिय को तिय नीचे करे, पिय सम भाव दिखाय ।
आसन है विपरीत यह, पिय तिय के मन भाय ॥

# विपरीतासन का प्रभाव

सा प्रकीर्यमाणकेशकुसुमाश्वासविच्छिन्नहासिनी वक्त्र संसर्गार्थं स्तनाभ्यामुरः पीडयन्ती पुनः पुनः शिरो नमयन्ती याश्चेष्टाः पूर्वमसौ दर्शितवांस्ता एव प्रतिकु र्वीत पातिता प्रतिपातयामीति हसन्ती तर्जयन्ती प्रतिघ्नती च ब्रूयात् पुनश्च व्रीडां दर्शयेच्छ्रमं वीरामाभीप्सां च, पुरुषोयंसृप्तैरेवोपसर्पेत् ॥

विपरीतासन से ही स्त्री के स्वभाव का पता चलता है । जब वह पुरुष के ऊपर आ जाती है तब वह जिस प्रकार अनंग की उत्पत्ति होती है उन-उन उपायों का अवलम्बन करती है । उसे क्या प्रिय है और वह किस प्रयोग से तृप्त होती है, इस बात का परिचय भलीभाँति विचारशील पुरुष को लग जाता है । पुरुषारूढ़ होकर

## असली कोकशास्त्र

चित्र नं० ४, ५

चित्रणी स्त्री　　　　शशक पुरुष
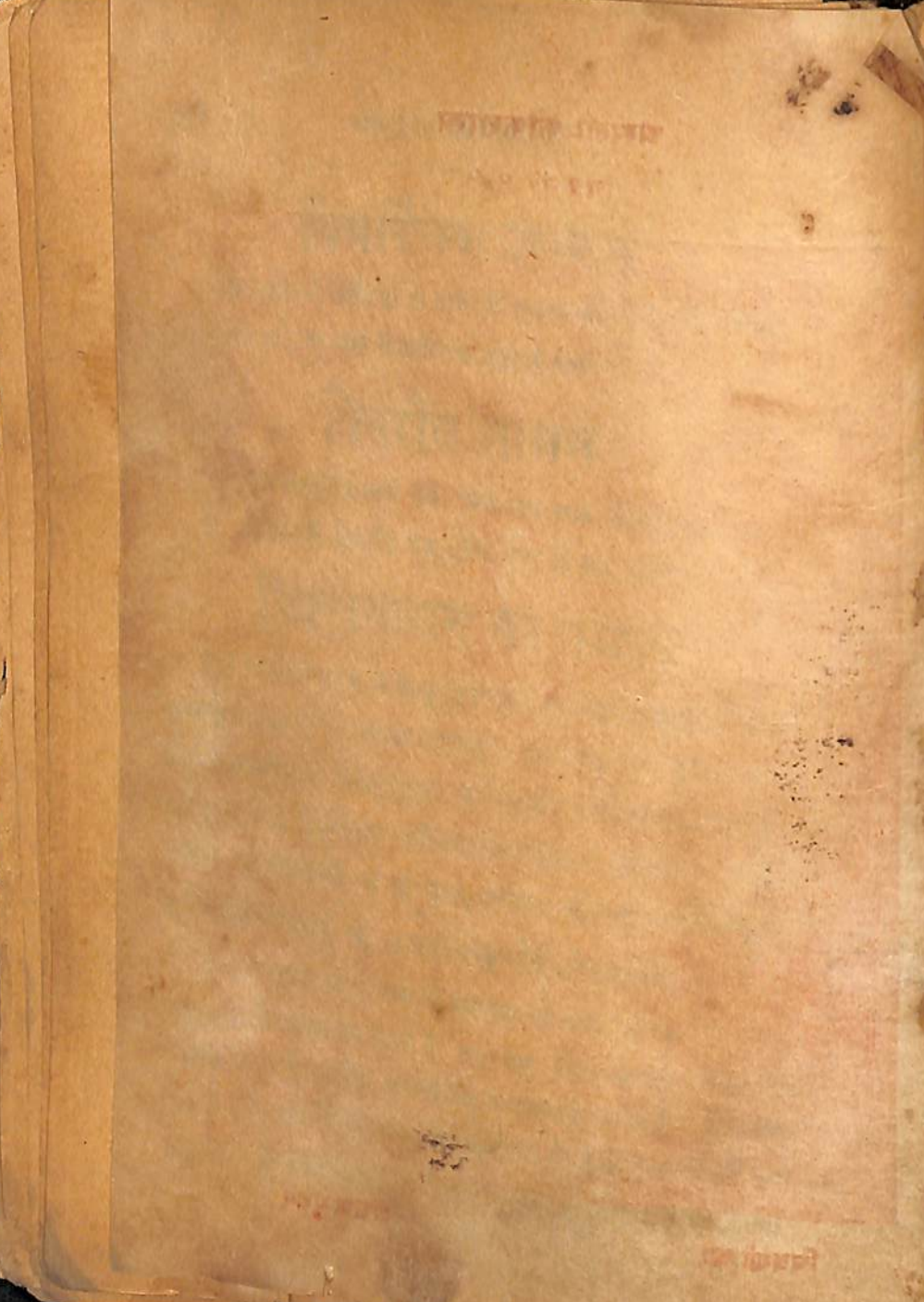
उसके बाल बिखर जाते हैं, काम के आवेश में चुम्बन करती हुई काटती है, हँसती है, लम्बे श्वास छोड़ती हुई छाती रगड़ती है। ये सब उसकी रतिरस स्फोटक कलायें हैं।

कभी-कभी वह उन्मत्त होकर कहती है—क्या समझ कर मुझे नीचे पटक रक्खा था? क्या कमजोर समझ रक्खा था? देखो, उसी का यह बदला है। योद्धा जिस प्रकार रण में ललकारते हैं उसी प्रकार यह भी ललकारती, भय दिखाती, हँसती, तिरस्कार करती हुई मदनयुद्ध में पुरुष की तरह प्रहार करती है। जब उसका जोश कुछ ठण्ढा होता है तब लज्जा से उसका सिर नीचे झुक जाता है और रतिश्रम से थक कर विश्राम की इच्छा से, पुरुष की भाँति मृदु उपचार करने लगती है।

विपरीतासन से रतिक्रिया करते समय स्त्री जिन-जिन तरीकों से काम ले, पुरुष को स्मरण रखना चाहिए कि स्त्री उन्हीं-उन्हीं उपायों से तृप्त हो सोती है। अतः उन्हीं उपायों से काम लिया करे तो दोनों को अपूर्व आनन्द मिलेगा।

सुवर्णनाभ आचार्य का मत है कि यदि स्त्री का रतिरहस्य जानना हो तो पुरुष को ध्यान रखना चाहिए कि सम्भोगकाल में जिस अंग को स्पर्श करने से स्त्री आँख की पुतली घुमावे, उसी अंग में काम का वास है। अतः उसी अंग का मर्दन, स्पर्शन बार बार करे, इससे स्त्री शीघ्र सन्तुष्ट और द्रवित होगी।

—:०:—

## अनुराग वृद्धि के लक्षण

गात्राणां स्रंसनं नेत्रनिमीलनं ब्रीडानाशः।
समधिका च रतियोजनेति स्त्रीणां भावलक्षणम् ॥

शरीर की शिथिलता, नेत्रों का बन्द करना, लज्जा का नाश, योनि संकोचन करने की चेष्टा करना, पुरुष कामेन्द्रिय के साथ योनि का विशेष घर्षण करना, अनुराग वृद्धि के लक्षण हैं।

## द्रवितकाल के लक्षण

हस्तौ विधुनोति स्विद्यति दशत्युत्थातुं न ददाति
पादेनाहन्ति रतावसाने च पुरुषातिवर्तिनी ॥

वीर्य क्षरण काल में स्त्री दोनों हाथों को कँपाती और पसीने पसीने होकर काटती हुई इतना खींचकर चिपका लेती है कि पुरुष को अलग होने नहीं देती। पाँव से ताड़ती हुई भोग सन्तुष्ट पति को टाँगों में दबा लेती है।

श्लेषयेत्स्वजघनंमुहुर्मुहुः,
सीत्करोति मदगर्विताकुला।
भावसिद्धिसमयस्य सूचकं,
वक्ष्यमाणरतेस्तु लक्षणम् ॥

जंघाओं का बार-बार सिकोड़ना, और काम-विह्वल होकर मुख

से "सी-सी" शब्द करना, ये सब द्रवितकाल में स्त्रियों के तृप्ति के लक्षण हैं। उस समय खूब सावधानी से पुरुष को स्त्री का सहयोग देना चाहिए। देशकालज्ञ पति को स्त्री बहुत प्रेम करती है।

## अतृप्ति के लक्षण

**हस्तमाधुवति हन्ति नो ददा-**
**त्युज्झितं झटिति लंघयेदिति।**
**स्वेच्छया भ्रमिणि वल्लभेऽथवा,**
**योषिदाचरति पूरुषायितम् ॥**

अतृप्त स्त्री के हाथ काँपते हैं, पति को ताड़ती है छोड़ना नहीं चाहती, विपरीतासन करने के लिए पति के ऊपर सवार हो जाती है। लज्जाविहीन होकर पुरुषों का सा आचरण करती है। ये सब उसके अतृप्ति के लक्षण हैं। पुरुष को उचित है कि यदि वह स्त्री को तृप्त न कर पाता हो तो निम्न प्रयोग करे।

**तस्याः प्राग्यंत्रयोगात्करेण संबाधं गज इव क्षोभयेदामृदुभावात् ततो यन्त्रयोजनम् ॥**

सम्भोग क्रिया आरम्भ करने के पूर्व, स्त्री की योनि में रहनेवाले भगांकुर को अँगुली के मृदुस्पर्श से स्निग्ध करे, और साथ-साथ मर्दन, स्पर्शन चुम्बन दन्तदशन आदि कलाओं का भी प्रयोग करता रहे। इस प्रकार करने से जब स्त्री की कामवासना पूर्णरूप से जागृत हो जाय तब सम्भोग आरम्भ करे। इस विधि से दोनों एक साथ

अवश्य तृप्त होंगे। यह विधि हाथी के भोग-विलास की है वह पहले अपनी सूँड से हस्तिनी के भगांकुर को मर्दन करता है। जब वह कामातुरा हो जाती है तब भोग करता है। इससे हस्तिनी सदैव तृप्त और गर्भवती होती है। अब इसके बाद मैथुन के भेदों पर विचार किया जायगा। मैथुन के दस भेद हैं। जैसे—उपसृप्तक, मन्थन, हुल, अवमर्दन, पीडितक, निर्घात, वराहघात, वृषाघात, चटिक-विलसित और सम्पुट। इन दस मैथुनों को मनुष्य करता है। इस लिए यह पुरुषोपसृप्त कहाता है।

## उपसृप्तक मैथुन

न्याय्यमृजुसंमिश्रणमुपसृप्तकम्।

जो साधारण रीति से स्त्री-पुरुष सम्भोग करते हैं उसे उपसृप्तक मैथुन कहते हैं। क्योंकि वह सुगम और योग्य भी है।

## मन्थन मैथुन

हस्तेन लिंगं सर्वतो भ्रामयदिति मन्थनम्।

अपनी कामेन्द्रिय को जब पुरुष स्त्री की योनि में डालकर घुमावे तब उसे मन्थन मैथुन कहते हैं। इस प्रकार का मृदु उपचार काम जगाने के लिए किया जाता है। अति कोमलांगी स्त्रियों के साथ ऐसा मैथुन किया जाता है।

—:०:—

# हुल मैथुन

नीचीकृत्य जघनमुपरिष्टाद्‌घट्टयेदिति हुलः ।

स्त्री की दोनों जंघाओं को अपने हाथों से नीचे दबाकर कामेन्द्रिय का धक्का मारने को हुल कहते हैं । यह कुछ कठोर-प्रकिति वाली स्त्री पसन्द करती है ।

# अवमर्दन मैथुन

तदेव विपरीतं सरभसमवमर्दनम् ।

हुल विधि के विपरात स्त्रा की जंघाओं को तकिये आदि के सहारे से ऊपर उठाकर जो जोर से कामेन्द्रिय की ठोकर मारी जाती है उसे आवमर्दन मैथुन कहते हैं । यह अत्यन्त कठोर प्रकृति वाली स्त्री को अच्छा लगता है ।

# पीडितक मैथुन

लिंगेन समाहत्य पीडयंश्चिरमव-
तिष्ठेदितिपीडितकम् ॥

कामेन्द्रिय को भग में डालकर बलपूर्वक दबा रखने का नाम पीडितक मैथुन है ।

# निर्घात मैथुन

सुदूरमुत्कृष्य वगेन स्वजघन-
मवपातयेदिति निर्घातः ।

पुरुष अपनी कामेन्द्रिय को स्त्री के भगोष्ठ तक खीचकर जोर से प्रहणन करे । इसको निर्घात मैथुन कहते हैं । यह स्त्री पुरुष दोनों के अत्यन्त कामपीड़ित हो जाने पर किया जाता है । क्योंकि वे ही इस चोट को सहन करते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं । अन्यथा इसका अप्रिय असह्य कटुरस आस्वादन करना पड़ता है ।

# वराहघात मैथुन

**एकत एव भूपिष्ठमवलिखेदिति वराहघातः ।**

स्त्री के मदन-गृह में यदि पुरुष किसी एक ही ओर को चोट मारे तो उसे वराहघात मैथुन कहते हैं । सूअर सम्भोग करते समय एक ही ओर को आघात करता रहता है । यह उसका स्वभाव है इस लिये इस मैथुन का नाम वराहघात पड़ गया है ।

# वृषाघात मैथुन

**स एवोभयतः पर्यायेण वृषाघातः**

यदि वराहघात की भाँति दायें-बायें दोनों ओर ध्वजा घात किया जाय तो उसे वृषघात मैथुन कहते हैं । यह बैल के अनुकरण से वृषाघात कहा गया है ।

# चटकविलसित मैथुन

**सकृन्मिश्रितमनिष्क्रम्य द्विस्त्रिश्चतुरिति घट्टये-दिति चटकविलसितं रागा वसा निकम् ॥**

पुरुष लिंग को यनि से बाहर न निकाल कर भीतर ही भीतर बारम्बार लगातार आघात करे तो उसे चटकविलसित मैथुन कहते हैं। यह प्राय रतिक्रिया की समाप्ति पर किया जाता है।

सम्पुट-मैथुन की विधि पहले आसनों में दिखलाई जा चुकी है।

पुरुषोसृप्त मैथुन दिखाने के बाद अब पुरुसाइत अर्थात विपरीतासन के भेद दिखाते हैं। जो नीचे दिखाये तीन प्रकार के हैं। जैसे संदंश भ्रमरक प्रह्वोलित। जिनका प्रयोग केवल स्त्री की ओर से किया जाता है।

# संदंश मैथुन

**वाडवेन लिङ्गमवगृह्य निष्कर्षन्त्या पीडयन्त्या वा चिरायस्थानं सांदंशः ॥**

पुरुष के ऊपर चढ़कर संभोग करती हुई नारी अपने भगोष्ठों में पुरुष की कामेन्द्रिय को जोर से पकड़ कर देर तक खींचकर पीडन करती हुई मैथुन करता है उसे संदंश मैथुन कहते हैं। घोड़ी घोड़े के साथ इसी प्रकार मैथुन करती है।

# भ्रमरक मैथुन

**युक्तयन्त्रा चक्रवद्भ्रमेदिति भ्रमरक आभ्यासिकः।**

सम्भोग के समय यन्त्रयोग को अलग न करते हुए जो स्त्री चक्र के समान घूमती है उसे भ्रमरक मैथुन कहते हैं, यह अभ्यास

से सिद्ध हो सकता है। स्त्री को जिस प्रकार चक्कर लगाने में सरलता पड़े उस प्रकार पुरुष को सहायता करनी चाहिए।

# प्रेंखोलित मथुनै

**जघनमेव दोलायमानं सर्वतो भ्रमयेदिति प्रेङ्खोलितम् युक्तयन्त्रैव ललाटे ललाटं निधाय विश्राम्येत् ॥**

भ्रमरक मैथुन करते हुए यदि स्त्री अपने नितम्बभाग को झूले की तरह झुलाती रहे तो उसे प्रेङ्खोलित मैथुन कहते हैं। उपरोक्त मैथुन करते हुए जब नारी थक जाय तब यन्त्रयुक्त रहती हुई पुरुष के माथे पर अपना माथा रखकर थकावट मिटाये। जब रतिक्रिया समाप्त हो जाय तब अलग हो जाय।

# कामकला के स्थान

आकाशस्थ चन्द्रकला के समान स्त्रियों के शरीर में कामकला का विकाश और अन्त होता है। ऐसा कामकला विशारदों का निर्णय है। इस निर्णय से लोग प्रायः यह समझ लेते हैं कि चन्द्र जिस तिथि का हो उस तिथि में बतलाये हुए अंग में काम वास करता है। यह उनके समझने की भूल है। स्त्री के शरीर में काम के स्थान परिवर्त्तन का कोई सम्बन्ध नहीं है। चन्द्रकला की वृद्धि के समान, काम शरीर में स्थान परिवर्त्तन करता रहता है, इस उपमा से ही यह भ्रम पैदा हुआ। यथार्थतः स्त्री जब ऋतु स्नान से

जिस दिन शुद्ध हो जाती है, वह पहला दिन शुक्ल प्रतिपदा का समझना चाहिए। तत्पश्चात् द्वितीया आदि क्रम से कृष्ण प्रतिपदा तक किन-किन अंगों में काम वास करता हुआ घूमता है उसका वर्णन जैसा आचार्यों ने किया है वैसा आगे दिखाया जाता है।

**अंगुष्ठे पदगुल्फजानुजघने नाभौ च वक्षः स्तने।**
**कक्षाकण्ठकपोलदन्तवसने नेत्रालिके मूर्द्धनि॥**
**शुक्लाशुक्लविभागतो मृगदृशामङ्गेष्वनङ्गस्थिति-**
**रूर्ध्वाधोगमनेन वामपदतः पक्षद्वये लक्षयेत्॥**

ऋतु स्नान का दिन शुक्ल प्रतिपदा का समझा गया। उस दिन कामदेव स्त्री के बायें अंग में पाँव के अँगूठे से अरम्भ होकर क्रमशः ऊपर को चढ़ता हुआ पन्द्रह दिन में शिर पर पहुँच जाता है और फिर सोलवें दिन से दाहिने अंग से नीचे का ओर उतरता हुआ अँगूठे पर पहुँच जाता है। इस प्रकार महीनाभर काम सम्पूर्ण शरीर में चक्कर लगाया करता है। जिस दिन जिस अंग में वास करता हो उस अंग को उस दिन विशेषरूप से मर्दन-स्पर्शन करने से स्त्री शीघ्र स्रवित होती है। उन अंगों के स्थान क्रमशः दिखाये जाते हैं।

पाँव का अँगूठा, पाँव का तलभाग, घुटना, जाँघ, योनि, कमर, नाभि, हृदय, कुच, बगल, कण्ठ, कपोल, ओष्ठ, नेत्र, पलक, मस्तक। इसी आरोह अवरोह भेद से काम का चक्कर बराबर बना रहता है। उस-उस तिथि में क्या-क्या करना चाहिए अब उसका वर्णन नीचे किया जाता है।

# प्रतिपदा तिथि

कंठे संश्लिष्य गाढं शिरसि विदधतश्चुम्ब-मोष्ठौरदाग्रै, रापीड्याचुम्ब्य गण्डौ विरचितपुलकाः पृष्ठतःपार्श्वयोश्च। दत्वा सूक्ष्मं नखांकं मृदुकरज-मुखैरश्वयन्तो नितम्ब, प्राग्भारं मन्दसीत्काः प्रतिपदि युवतीं नागरा द्रावयन्ति ॥

ऋतुस्नाता की प्रथम तिथि अर्थात् प्रतिपदा को भोगी पुरुष स्त्री के कण्ठ का आलिंगन करता हुआ ललाट और गाल का चुम्बन करे, फिर अपने दाँतों से ओष्ठों को दबाकर होठों का चुम्बन करे। तत्पश्चात् बगल-बगल के स्थानों को मृदु तीव्र स्पर्श द्वारा अर्थात् चिकोटी नखच्छेद आदि से रोमाञ्चित करे और नितम्ब आदि देशों के अग्रभाग को गुदगुदा कर सीत्कार करती हुई युवती को द्रवित करे। किन्तु इस तिथि में स्त्री-सहवास न करना चाहिए। कारण गर्भ नहीं ठहरता। यदि स्थिर भी हो जाय तो बालक जन्मते ही मर जाता है और मैथुन करनेवाले पुरुष की आयु घटती है।

# द्वितीया तिथि

स्तनमिलतसुखार्तो गण्डयार्लो विचुम्बन्,
नयनकुचयुगं चाकृष्य पार्श्वे नखाग्रैः

अधरमवलिहन् दोर्मूलचञ्चन्नखाग्र,
कृतघनपरिरम्भो द्रावयेद्द्वितीयुग्मे ॥

द्वितीया को स्तनमर्दन तथा उनका आकर्षण विकर्षण करता हुआ गालों और आँखों का चुम्बन करे । अधरपान करता हुआ नितम्बों पर चुटकी तथा कन्धों पर नखदान करे । ततः गाढ़ आलिङ्गन द्वारा स्त्री को स्खलित करे । यह तिथि भी सहवास के योग्य नहीं । कारण यह कि इस दिन संयोग से स्त्री के गर्भाशय को हानि पहुँचती है । गर्भ रह जाय तो बच्चा गर्भ ही में मर जाता है । पुरुष को भी उपदंश रोग हो जाया करता है ।

## तृतीया तिथि

तृतीयायां श्लिष्यन्निबिडनममासाद्य पुलकं,
मुहुर्बाह्वोर्मूले मृदुलिखितपार्श्वः कररुहैः ।
भुजापीडं कण्ठे दशनवसनास्वादतरलः,
स्तनोपान्तारब्धच्छुरितमबलां विह्वलयति ॥

तृतीया को गले में बाहु डालकर आलिंगन करता हुआ नितम्ब और कन्धों को नखक्षत करे । स्थान-स्थान पर दन्त-दशन का प्रयोग करता जाय । इस तिथि को भी त्याज्य समझा गया है । इस दिन के सहवास से जो सन्तान उत्पन्न हो जाती है, वह किसी न किसी अंग से हीन होती है । सदैव रोगी रहने वाली तथा अल्पायु भी होती है ।

## चतुर्थी तिथि

**चचुर्थ्यामालिंग्य स्फुटमलघुसंपीडितकुचा,**
**दशन्तो विम्बोष्ठं नखलिखितवामोरुफलका:।**
**ददन्तो दोर्मूले छुरितमसकृन्नीरजदृश:,**
**शरीरं क्रीडन्ति स्मररसनदीनिर्भरजलै: ॥**

चतुर्थी को गर्दन तथा स्तनों को कड़ायी से मर्दन करे। बायीं जंघा और बाहुमूल में नखक्षत करता हुआ होठों पर दन्तदशन करे। इस प्रकार स्त्री चतुर्थी को भलीभाँति द्रवित होती है। इस तिथि में स्त्री प्रसंग वर्जित है। इसका यह कारण है कि इस सहवास से जो सन्तान होगी वह बहुत कम जीनेवाली और दरिद्री होती है। गर्भाशय को भी बहुत हानि होती है।

## पञ्चमी तिथि

**पञ्चम्यां चिकुरान्दक्षिणकरेणाकृष्य दृष्ट्वाऽधरं,**
**दत्त्वा चूचकयो: सखेलपुलकं चुम्बेत्कुचौ भावत: ॥**

पञ्चमी को द्रवित करने के लिए पुरुष को चाहिए कि वह स्त्री के सिर के बालों को खींचे। होठों को दाँतों से काटता हुआ चुम्बन करे और स्तनों को मर्दन कर चूमे। इस तरह स्त्री शीघ्र द्रवित होती है। इस दिन के सहवास से हृष्ट-पुष्ट बल-बुद्धि युक्त सर्वगुण सम्पन्न सन्तान उत्पन्न होती है।

# षष्ठी तिथि

**षष्ठयां गाढविगूढगात्रमधरं दष्ट्वाऽर्थ नाभीतले,**
**प्रारब्धच्छुरितो लिखेत्कररुहैरुर्वोस्तटी रुन्मदः ॥**

षष्ठी तिथि में स्त्री को द्रवित करते समय नाभी के अधोभाग में नखच्छेद करे। अधरपान और जंघाओं के सन्धिस्थल में नख-छुरित करे। इस दिन का गर्भज बालक मध्यम श्रेणी के गुणों वाला होता है।

# सप्तमी तिथि

**मृदितमदनवासो दन्तवासो लिहानः,**
**करजकलितकण्ठोपान्तवक्षःकपोलः।**
**कृतघनपरिरम्भः संभृतानंगरंगो,**
**गमयति मृदुभावं भामिनीमन्हि भानोः ॥**

सप्तमी के दिन प्रसन्न चित्त होकर स्त्री के ओष्ठों का चुम्बन करे, जंघा का सन्धिस्थल, कण्ठ, वक्ष और कपोलों पर नख विलेखन करे। यह भी निषिद्ध रात्रि है, इस तिथि के सम्भोग से जो कन्या होती है वह कुल को दाग लगाने वाली होती है। कोई इस तिथि में सन्तानाभाव मानते हैं।

## अष्टमी तिथि

अष्टम्यां परिरभ्य कण्ठमसकृन्नाभिं नखैरञ्चन्,
दष्टौष्ठः पुलकं ददत्कुचतटीं चुम्बेद्विमृद्योच्चकैः ॥

अष्टमी के रोज नखों से नाभि को खींचकर नारी को पुलकित अधरपान करता हुआ, कुचों को मले तथा विविध चुम्बन से स्त्री को द्रवित करे। इस दिन के संयोग से जो संतान होती है वह धनी-मानी होती।

## नवमी तिथि

नाभीमूल विलोलपाणिरधरं दष्ट्वा स्तनौ पीडयन्,
मृद्नीयान्मदनालयं चावलिखन् पार्श्वे नवम्यांनखैः ॥

नवमी के दिन स्त्री द्रवित करनेके लिये, अधरपान करता हुआ नाभि और पेडू पर हाथ फेर कर मृदु मर्दन करे। भगोष्ठों को अंगुलियों से सहलाता हुआ स्तन और नितम्बों पर नखदान करे। नवमी तिथि के सहवाश की कन्या सौभाग्यवती सुन्दरी होती है।

## दशमी तिथि

ललाटमाचुम्ब्य नखैर्लिखन्तः,
शिरोधरां भ्रामितवामहस्ताः।
कटिस्तनोरः स्थलपृष्ठमध्ये,
स्मरं दशम्यां प्रतिबोधयन्ति ॥

दशमी के दिन स्त्रियों का काम जगाने के लिये माथे का चुम्बन, अन्य सभी कामोत्तेजक स्थानों पर दन्त-दशन, नखच्छेद, मर्दन आदि करते हुए कड़ा आलिंगन करने से काम जाग जाता है। दशमी के सहवास का पुत्र हमेशा स्वस्थ बल-पौरुषयुक्त होता है।

# एकादशी तिथि

**एकादश्यां करजकलितग्रीवमालिङ्ग्य गाढं,**
**पायं पायं दशनवसनं किंचिदालीढलोलम्।**
**घातंघातं हृदि सहसितं मन्मथागारमुद्रा–**
**भङ्गक्रीडातरलितकराः कामिनीं द्रावयन्ति॥**

एकादशी को नितम्ब देश में काम का वास होता है। अतः अन्य सभी स्थानों में यथाविधि कामोत्पादन-कलाओं का प्रयोग करते हुए नितम्ब का खूब मर्दन करे। इससे स्त्री रतिसुख को प्राप्त होती हुई स्रवित होगी। इस तिथि में भी सम्भोग न करना चाहिए। एकादशी के सहवास से उत्पन्न कन्या गुप्त-व्यभिचारिणी अथवा वेश्या होती है।

# द्वादशी तिथि

**द्वादश्यां परिरभ्य गाढमसकृच्चुम्बन् कपोलौ दृशो-**
**रुन्मेषं विदधीत सीत्कृतिजुषो व्यादष्टदन्तच्छदः॥**

द्वादशी को बार-बार गले लगाकर आलिंगन चुम्बन आदि करे।

अधर का चुम्बन करता हुआ युवती की आँखें खोले । इस क्रिया से वह द्रवित हो जायगी । इस तिथि का गर्भज पुत्र गुणवान शील स्वभाव वाला होता है ।

# त्रयोदशी तिथि

चुम्बन् गण्डतटीं मनोभवतिथौ मृद्नन् ससीत्कं कुचौ
कान्तां द्रावयति द्रुतंकररुहैर्भिन्दन् शनैःकन्धराम् ॥

त्रयोदशी को स्त्री के उरु केन्द्र में काम का अधिवास होता है । अतः अन्य अंग मर्दन करता हुआ उस प्रदेश का विशेष मर्दन करे । इससे स्त्री तृप्त होती है । स्त्री-प्रसंग में यह भी वर्जित तिथि है । इस रात्रि के गर्भ से उत्पन्न कन्या कुल में दाग लगाने वाली कुलटा होती है ।

# चतुर्दशी तिथि

कन्दर्पारितिथौ विचुम्बितदृशो दोर्मूलचञ्चन्नखाः,
कामागारनिवेशितद्विपकराः क्रीडन्ति कान्तातनौ ॥

चतुर्दशी के दिन स्त्री के सब शरीर में काम का वास होता है । अतः सम्पूर्ण कलाओं का प्रयोग करना चाहिए । इस दिन दोनों को विशेष आनन्द का अनुभव होता है । इस चोदहवीं रात्रि का गर्भज पुत्र धार्मिक, यशस्वी और सुशील होता है ।

# पूर्णिमा और अमावस्या

दर्शे पूर्णतिथौ च नर्तितनखाः स्कन्धस्थलीरङ्गतोऽ
नङ्गागारचुचूलिकाश्रितकराः कुर्युःस्त्रियंविह्वलाम् ॥

पूर्णिमा और अमावस्या को यदि पुरुष स्त्री-प्रसंग करे तो उन्हें सम्पूर्ण कलाओं का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि काम सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होता है। पन्द्रहवें दिन सम्भोग से जो कन्या पैदा होती है वह पतिव्रता, धार्मिका सुन्दरी और यशस्विनी होती है। इस दिन के गर्भाधान से बड़ा प्रतापी पुण्यवान् पुत्र उत्पन्न होता है। जैसे कहा है—

षोडशे दिवसे गर्भो जायते यदि वै स्थिरः।
चक्रवर्ती भवेद्राजा जायते नात्र संशयः ॥

# निषिद्ध मैथुन

रजसाभिप्लुतां नारीं यो नरो ह्युपगच्छति।
प्रज्ञातेजोबलं चक्षुरायुस्तस्य प्रहीयते ॥ मनु०

रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने से पुरुष की आयु, बल, बुद्धि, तेज और नेत्रशक्ति क्षय को प्राप्त होती है। इस लिए रजस्वला स्त्री से कभी भूलकर भी मैथुन न करना चाहिए और जिन-जिन तिथियों को निषेध किया गया है उन-उन का सर्वदा त्याग कर देना आवश्यक है।

# काम के पाँच बाण

'कामः पञ्चशराः स्मृतः'

कामदेव के पाँच बाण माने गये हैं। वे कौन-कौन से हैं इस पर विचार किया जायगा। यह पञ्चशरी कामदेव अपने किसी न किसी बाण से नर-नारियों को बींध लेता है। उन बाणों का कोई क्रम नहीं निश्चित किया जा सकता, क्योंकि उनका प्रयोग अलग-अलग होता है। शब्द, स्पर्श, रूप रस, गन्ध, ये कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नासिका आदि के विषय हैं। इन्हीं को बाण समझना चाहिए। प्राणी इनके पीछे अन्धा होकर प्राण गँवा बैठता है इस लिये इनको बाण कहा गया है।

# शब्द बाण

यह ऐसा बाण है जिस समय इसका प्रहार होता है उस समय प्राणी अपने आपे में नहीं रहता। जब यह व्यंग या कठोर रूप से प्रयोग में लाया जाता है तब यह कलह या युद्ध उत्पन्न कर विनाश का हेतु बन जाता है। उस समय इसे वाग्बाण कहते हैं। वह काम बाण नहीं कहाता। शब्द बाण से विद्ध प्राणी मूक की भाँति प्राण गँवाता है। जिसका नीचे एक उदाहरण दिखाया जाता है।—

जंगली मृग को पकड़ने के लिए जब बहेलिये बन में जाते हैं, तब वे जंगल के किसी भाग में जाल लगा देते हैं और आप किसी

मधुर बाद्य को लेकर वन में बजाते फिरते हैं। जब मृगों का झुण्ड दिखायी देता है तब उसके पास से वाद्य-स्वर उत्तान कर निकलते हैं। मृगों का झुण्ड का झुण्ड उस वाद्य-स्वर की मधुर तान को सुनते ही खाना-पीना छोड़कर मस्त हो जाता है और उस बहेलिये के पीछे-पीछे चलने लगता है। मीलों का चक्कर लगाते-लगाते जब वह बहेलिया जाल के पास आकर कुछ आगे बढ़ जाता है और मृग-झुण्ड जाल के फन्दे के नीचे आ जाता है तब दूसरे लताकुञ्ज में छिपे हुए बहेलिये जाल की रस्सी खींचकर उस झुण्ड को जाल में फँसा लेते और मार डालते हैं। यह है काम का शब्द-बाण जो पशुओं पर भी काम करता है। इसी शब्द-बाण के फेर में पड़कर मनुष्य तवायफों के फन्दे में फँसकर अपना सर्वस्व नाश कर देते हैं। इसी बाण के प्रभाव से कृष्णचन्द्रजी ने काले विषधर साँप को नाथा था, यह जगत-प्रसिद्ध बात है। आभूषणों की झँकार कामी जनों के हृदय में काम का संचार करती है। इसीलिए ब्रह्मचर्य-अवस्था में ( कीर्त्तनम् ) स्त्रियों का गुण कीर्तन करना या सुनना मना किया है।

## स्पर्श बाण

स्पर्श विषयक बाण भी कामज-बाण है। कोमल त्वचा का स्पर्श कामोत्पादक है, क्योंकि कोमल त्वचा में स्पर्श बाण का शीघ्र प्रयोग होता है। युवक-युवतियों के स्पर्श-मात्र से उनके शरीर में

विजली दौड़ जाती है। यही स्पर्श बाण का प्रहार है। इसका विशेषोद्वेग हाथी में देखा जाता है। मदोन्मत्त हाथी जब बिगड़ जाता है, तब उसे वश में लाने के लिए हथिनी को छोड़ते हैं। उसके स्पर्श-मात्र से शान्त होकर हाथी खड़ा हो जाता है। जंगली हाथी को पकड़ने के लिये जंगल में एक गहरा गड्ढा खोदकर उस पर पतली लकड़ियों की छत बना देते हैं। बाद उसके ऊपर जौ आदि बो देते हैं। हाथी हरी-हरी जौ की खेती समझ कर खाने आता है और उसमें गिर पड़ता है। जब भूख-प्यास से व्याकुल होकर क्रोध से चिङ्घाड़ने लगता है तब सिखायी हुई हथनियों की सूँड़ से फँसवा कर बाहर निकाला जाता है। भूखा-प्यासा और क्रुद्ध होने पर भी हथनियों के स्पर्श से वह शान्त हो जाता है। स्पर्श बाण के सामने वह सब दुःख भूल जाता है। पुरुष भी इस कोमल स्पर्श का अनुभव जब कामिनी में करता है तब उन्मत्त की भाँति सब कुछ भूल जाता है और उसके सामने काम ही काम दिखाई देता है। इसी लिए ब्रह्मचारी को ( केलिः ) स्त्रियों के साथ खेलने को मना किया है। क्योंकि उसमें अंग-स्पर्श होना सम्भव होने से स्पर्श बाण का प्रयोग अनिवार्य है।

—:*:—

# रूप बाण

रूप बाण का असर आँख से होता है, अन्धे को नहीं। रूप का प्यासा पतंग, रूप-राशि अग्निज्वाला में अपने प्राणों की बलि देता है। यह रूप बाण का असर है कि वह पंख जल जाने पर भी रूपज्वाला की ओर देखता-देखता प्राण विसर्जन कर देता है। उसका उस ओर ताकना इस बात का सबूत है कि वह पंख न रहने से लाचार है नहीं तो वह वहाँ पहुँचने में कुछ उठा न रखता। इसी रूप बाण के चक्कर में पड़कर हजारों नर-नारी, लोक-लज्जा कुल-मर्यादा से हाथ धो बैठते हैं। अपने तन मन धन को इस रूपज्वाला में भस्म कर गली-गली में ठोकरें खाते फिरते हैं। जिसको यह रूप का बाण लग जाता है वह अपना सर्वस्व नाश करके भी पर-जले पतंग की भाँति उसी ओर टुकुर-टुकुर निहारता रहता है। उसकी आशालता तबतक नहीं मुझाती जबतक वह चिता पर नहीं पहुँच जाता। ब्रह्मचारी को इस बाण से बचाने के लिए मनुजी ने कहा है, ( प्रेक्षणम् ) अर्थात् स्त्री की रूपराशि को देखने का निषेध किया।

# रस बाण

रस शब्द से अनेक रसों का ग्रहण होता है। जैसे जिह्वा से मधुर शब्द द्वारा व्यक्त मधुररस, जिह्वा से चखा हुआ मधुररस, मधुरध्वनि जनित मधुररस, इत्यादि अनेक मधुर रस हैं जो समय

पर कामवाण का काम करते हैं इस लिए उन्हें रस बाण भी कहते हैं। नाना विध रसों का आस्वादन कर मनुष्य रस बाण के लक्ष्य होकर काम के शिकार हो जाते हैं। इसी कारण मनु भगवान् ने खट्टे आदि कामोत्तेजक रसों का निषेध ब्रह्मचर्य अवस्था में किया है।

## गन्ध बाण

बढ़िया सुगन्धित मालाओं के हार इत्र फुलेल व्यवहार करने वाले स्त्री-पुरुष गन्धबाण से बिद्ध होकर काम के शिकार हो जाते हैं। यथार्थतः कामोत्तेजना के लिए इनका व्यवहार किया भी जाता है। इन्हीं रसबाण और गन्धबाण से बिंधा हुआ भ्रमर, काठ जैसी कठोर वस्तु में छेद करने की सामर्थ्य वाला होकर भी, अति कोमल पद्मपुष्प में सूर्य छिपते ही बन्द हो जाता है और भीतर बैठा गन्ध रस का भोग करता हुआ मन-ही-मन सोचता है कि सबेरा होते ही सूर्य उदय होगा तब फूल खिल जायगा और मैं उड़कर दूसरे फूल पर जाऊँगा। किन्तु पुष्प की उन मुलायम पंखड़ियों को सामर्थ्य रहते हुए भी नहीं काटता। प्रातःकाल होने के पहले ही, हाथियों का एक झुण्ड आता है और पानी पीते समय किलोल करता हुआ उस मृणालमय पुष्प को सूँड से उखाड़ कर खा जाता है। भ्रमर का न वह पुष्प खिलता है और न वह दूसरे पुष्प पर जाता है। उसकी सम्पूर्ण आशायें मन में समाप्त हो जाती हैं। ठीक यही अवस्था इन उपरोक्त बाणों से बिद्ध, कामदेव के शिकार कामी पुरुषों

की होती है। उनकी कामनायें पूर्ण नहीं होतीं, वे अपूर्ण-की-अपूर्ण मन में रह जाती हैं क्योंकि शास्त्र का कथन है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥

काम भोग से शान्त नहीं होता प्रत्युत भोगने से और भी बढ़ता है। जिस तरह की अग्नि में घी डालने से अग्नि और भी बढ़ती है।

—:o:—

# स्त्री सौन्दर्य

स्त्री शरीर के किन-किन अवयवों की कैसी गढ़न होनी चाहिये जिससे शरीर सुन्दर प्रतीत होने लगे। आचार्यो नें इन बातों पर विचार करते हुए कुछ बातें दर्शायी हैं।

पहला—आँख,सरस,और चमकीली,एवं साफ होनी चाहिये। मुख कान्तिवान् अर्थात् पुरजलाल हो, दाँत उज्ज्वल चमकीले और समानपंक्तिबद्ध हों, अंगुलियों के नाखून स्वच्छ और गोलायी लिये हुए होने चाहिएँ।

दूसरा—आँखों की पुतलियाँ, पलकों के बाल, भृकुटी के बाल, तथा सिर के बाल, ये सब भौंरे के समान काले-स्याह होने चाहिएँ।

तीसरा—अधर, जिह्वा, मसूड़े और कपोल ( गाल ) ये सब विम्ब-फल के समान लाल होने चाहिएँ।

चौथा—अँगुलियों के अगले हिस्से, पाँवों की एड़ियें, सिर और बाल के भुजाओं के माँसल भाग गोल होने चाहिएँ।

पाँचवाँ—सिर के बाल, अँगुलियाँ, पलकें और नेत्र लम्बे होने चाहिएँ।

छठवाँ—जंघा, नितम्ब, गर्दन और पिंडलियाँ, ये स्थान भरे हुए और स्थूल होने चाहिएँ।

सातवाँ—स्तन, कन्धे, आँख और मस्तक बड़े विशाल होने चाहिएँ।

आठवाँ—नाक, कान नोकीले न छोटे न बहुत बड़े समान आकार वाले होने चाहिएँ।

नवाँ—पेट लम्बा किन्तु बढ़ा हुआ नहीं होना चाहिए।

दसवाँ—कमर पतली किन्तु मजबूत होनी आवश्यक है।

आचार्यों ने शरीर के रंग का विशेष पृथक् वर्णन नहीं किया। इससे मालूम होता है उन्होंने शरीर की बनावट को विशेष महत्त्व दिया है। कपोलों के रंग की लाली से कुछ झलक दिखाया देती है सम्भव है वह सब शरीर पर लागू समझी जाय।

—:०:—

# स्त्री के सोलह शृङ्गार

आदौ मज्जन-चीर-चारु-तिलकं नेत्राजनं कुण्डलम् ।
नासा मौक्तिक-हार-केशकुसुमं सिन्दूर वस्त्रं परम् ॥
देहे चन्दनलेप-कञ्चुकमणी क्षुद्रावली घण्टिका ।
ताम्बूलं करकंकणं चतुरता शृङ्गार का षोडश ॥

( १ ) सबसे पहले दाँतों में मञ्जन फिर उबटन तब स्नान करना चाहिए। मञ्जन और उबटन स्नान के ही अंग हैं इस लिए उनकी पृथक गणना नहीं की गयी। मञ्जन से दाँतों की सफाई और उबटन से शरीर की खाल में कोमलता आती है। तत्पश्चात् स्नान करने से सर्वस्नान कहाता है अन्यथा एकांगी या अर्द्धस्नान कहा सकता है।

( २ ) दूसरा स्नान के बाद सुन्दर साड़ी आदि वस्त्र धारण करना।

( ३ ) तीसरा तिलक अर्थात् ललाट में सिन्दूर आदि की बिन्दी लगाना।

( ४ ) चौथा आँखों में अञ्जन या काजल लगाना। इससे आँख की ज्योति और सौन्दर्य दोनों बढ़ते हैं। तथा नेत्ररोग नाश होते हैं।

( ५ ) पाँचवाँ, कान में कुण्डल या कर्णफूल आदि पहनना।

( ६ ) छठवाँ, नाक में मोती पड़ी नथिया या लौंग बुलाक आदि पहनना ।

( ७ ) सातवाँ, सोने का गले में कण्ठाहार या सिकड़ी आदि पहनना ।

( ८ ) आठवाँ, बाल सँवार कर चोटी बाँधना ।

( ९ ) नौवाँ, फूलों के बने हुए आभूषण अंगों में पहनना ।

( १० ) दसवाँ, माथे में सिन्दूर भरना ।

( ११ ) ग्यारहवाँ, शरीर में केसर कस्तूरी मिश्रित चन्दनादि सुगन्धित वस्तुओं का लेप करना ।

( १२ ) बारहवाँ, कुचबन्धिका अर्थात् अँगिया ( चोली ) पहनना ।

( १३ ) तेरहवाँ, कमर में करधनी पहनना ।

( १४ ) चोदहवाँ, हाथों में कङ्कण ( कङ्गन ) या चूड़ी आदि पहनना ।

( १५ ) पन्द्रहवाँ, अँगुलीक अर्थात् अँगूठी छल्ला आदि आभूषणों को धारण करना ।

( १६ ) सोलहवाँ, केसर कस्तूरी मिश्रित सुगन्धित पान खाना ।

ये उपरोक्त स्त्री के नैतिक शृंगार हैं । जो स्त्री प्रतिदिन बिला नागा सोलहों शृङ्गार करती है । उसका पति कभी विमुख नहीं हो सकता । स्त्री के ये ही मोहनास्त्र हैं ।

# कामोद्बोधक साधन

के गृह्णन्ति कचान् ललाट नयने चुम्बति दन्तच्छदं, दन्तोष्ठेन निपीडयन्ति बहुशश्चुम्बति गण्डस्थलीम् । कक्षाकण्ठतटं लिखन्ति नखरैर्गृह्णन्ति गाढं स्तनौ मुष्टया वक्षसि ताडयन्ति ददते नाभौ चपेटा शनैः ॥

स्त्री के बालों का स्पर्श करना, ललाट और आँखों का चूमना, दातों तथा ओष्ठों से स्त्री के अधर व ओष्ठों का चुम्बन करना, तथा गालों का चूमना । नाखून, बगल कण्ठ आदि स्थानों में गुदगुदी करना, चुटकी भरना कुचों का मर्दन करना या नखच्छेद का प्रयोग करना । छाती पर धीरे-धीरे मुष्टिका आघात करना तथा मुलायम हाथ से नाभि पर थपथपाना और—

कुर्वन्तिस्मरमन्दिरे करिकरक्रीडां स्त्रियोजानुनी,
गुल्फांगुष्ठपदानि च प्रतिमुहुर्निघ्नन्ति तैरात्मनः ।
इत्येवं कलयन्ति ये शशिकलामालिंग्य मज्जन्ति ते,
शीतांशूपलपुत्रिकां शशिकर स्पृष्टामिव प्रेयसीम् ॥

स्त्री को योनि में हाथी की सूँड़ की तरह क्रीड़ा करना, अपने जानु, गुल्फ अंगूठे तथा पावों से स्त्री के अंगों को मस्ती के साथ रगड़ना, इन्हीं क्रिआओं द्वारा स्त्री के अंगों में सोये हुए कामदेव को जगाकर कामी-जन आनन्द लेकर स्त्री को भी आनन्दित करते हैं ।

# पति के कर्त्तव्य

१—पति का सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह पत्नी को अपना सच्चा मित्र तथा सहायक समझता हुआ उसके साथ अपने समान बर्त्ताव करे। उससे कभी छल-कपट युक्त व्यवहार न करे। अपने हृदय से उसका सच्चा सत्कार करता हुआ प्रेमपूर्वक बर्त्तें।

२—स्त्री चाहे सरूपा हो या विरूपा, उसे त्याग कर दूसरी से सम्बन्ध न करे। जैसे कहा है—"एका भार्य्या सुन्दरी वा दरी वा" उसी में सन्तुष्ट रहे और सुख-स्वर्ग समझे। वह यथार्थ ही सुखी हो जायगा।

३—पुरुष की सच्चरित्रता, दुश्चरित्रा स्त्री को भी सच्चरित्रा बना लेती है। कहा है—"शस्त्रं शास्त्रं बीणा वाणी नरश्चनारी पुरुष विशेषं प्राप्य योग्यायोग्या भवन्ति" ये उपरोक्त वस्तुएँ जैसे पुरुष को प्राप्त होती हैं वैसी ही हो जाती हैं। इस लिए पुरुष का सच्चरित्र होना परम आवश्यक है।

४—स्त्रियें प्रायः अपने पति को साफ-सुथरा देखना पसन्द करती हैं। इस लिये पुरुष को चाहिए कि वह यदि अपने लिये स्वच्छ वस्त्र या स्वच्छता न रखता हो तो अपनी स्त्री के लिये अवश्य पवित्र रहे और स्वच्छ वस्त्र धारण करे। जैसे स्त्री की मलीनता उसे पसन्द नहीं, वैसे ही पति की गन्दगी पत्नि को भी नहीं भाती।

५—पति को कभी पत्नी के साथ निर्लज्जता का व्यवहार न करना चाहिए। नहीं तो पत्नी का इतना निर्लज्जतापूर्ण कटु व्यवहार बढ़ जायगा कि वह असह्य हो जायगा। कारण पति पत्नी का शिक्षक होता है। वह जैसा आचार व्यवहार करता है, पत्नी शिष्या की भाँति वैसा ही स्वरूप धारण कर लेती है। इस लिये पति को जैसा आचार-विचार अच्छा प्रतीत होता हो, वैसा ही बर्ते, उसे पत्नि की ओर से तदनुरूप ही प्रतिध्वनित होता दिखायी देगा।

६—हास्य-विनोदात्मिक-कला का प्रयोग पति को पत्नी के साथ प्रतिदिन करना चाहिए। अन्यथा वह किसके साथ विनोद करेगी। मनहूस और नीरस-हृदय पति से पत्नी विरक्त हो जाती है। इस कला का परिमित व्यवहार होना चाहिए। इतना उच्छृ-ङ्खल न हो कि असह्य हो उठे और विनोद के स्थान पर कलह का रूप धारण कर ले।

७—जैसे पुरुष स्त्री के मुख से पुरुष-जाति की निन्दा सुनना नहीं चाहता, वैसे ही स्त्रियें भी पुरुष के मुख से स्त्री-जाति की निन्दा सुनना पसन्द नहीं करती। इस लिये पति को चाहिए कि वह पत्नी के सन्मुख कभी स्त्री-जाति की निन्दा न करे। अन्यथा व्यर्थ विरोध उत्पन्न हो जायगा।

८—पति को उचित है कि पत्नी के सामने कभी पर-स्त्री की गुणावली बखान न करे। क्योंकि स्त्रियें अपने पति के मुख से दूसरी स्त्री की प्रशंसा सुनना नहीं चाहतीं, कारण कि वे समझती

हैं, पति मुझमें इन गुणों की कमी देखकर उसकी प्रशंसा दिखाकर मेरी निन्दा कर रहा है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि पुरुष भी अपनी स्त्री के मुख से पर-पुरुष-स्तुति सुनना नहीं चाहता। वह भी इसमें अपनी बेइज्जती का ही अनुभव करता है और कभी-कभी इसका ऐसा परिणाम निकलता है कि स्त्री समझती है क्या कारण जो पति पर-स्त्री की प्रशंशा कर रहे हैं सम्भव है इनका मन उसपर आ गया हो और ये उससे फँस गये हों या फँसने की इच्छा रखते हों अन्यथा इन्हें उसकी प्रशंसा की क्या आवश्यकता थी ? पुरुष भी अपनी स्त्री के मुख से पर-पुरुष-स्तुति सुनकर मन में सन्देह करने लगता है कि इसमें अवश्य दाल में काला है। इससे नतीजा यही साफ निकलता है कि स्त्री-पुरुष दोनों ही इस बात को निन्दनीय समझते हैं। इस लिए इस हानिप्रद कार्य को दोनों में से किसी को भी न करना चाहिये।

९—स्त्री अपनी प्रशंसा पति के मुखसे सुनना चाहती है। पति को चाहिए, पत्नी के बनाये भोजन पक्वान्न आदि की प्रशंशा करे। जिससे उसका उत्साह बढ़े और वह भविष्य में उत्तमोत्तम पदार्थ बनाने की चेष्टा करे और प्रशंसा लाभ करने की इच्छा करे। जब कभी पत्नी नये ढंग के मन लुभानेवाले शृंगार और वस्त्र धारण करे तब उसकी खूब बड़ाई करनी चाहिये। क्योंकि वह पति से मान पाने के लिए ही केशविन्यास आदि विविध रचना करती है। पति से मान पाकर उसकी अन्तरात्मा फूल उठती है और वह सम-

झती है, पति मुझमें अनुराग रखते हैं। अतः विकसित पुष्प की भाँति सदैव प्रफुल्लित होकर वह प्रत्येक गृह-कार्य तथा शृंगारादि कलाओं को सम्पन्न करती है। इससे उसका स्वास्थ और प्रेम चन्द्रकला की भाँति दिन-वदिन बढ़ता रहता है और गृहस्थ की उन्नति होती है।

१०—परायी स्त्री से हँसी-मजाक भूलकर भी न करना चाहिए, चाहे वह अपनी कितनी ही सन्निकट सम्बन्धिनी भी क्यों न हो, इससे वह दूसरों की नजरों से गिर जाता है और अपनी स्त्री की नजर से भी। कभी कभी इसका बड़ा निषद परिणाम देखा गया है। पुरुष अपनी स्त्री को निकट-सम्बन्धी के साथ मजाक करती देखकर हृदय से क्रोध-विह्वल हो उठता है। वह नहीं चाहता कि उसकी स्त्री किसी पर-पुरुष से उपहास करे या दूसरा कोई पुरुष उससे ऐसा व्यवहार करे। इससे स्पष्ट यही परिणाम निकला कि परस्पर प्रेम चाहने वाले स्त्री-पुरुषों को एक दूसरे की इच्छा विरुद्ध ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे उनमें किसी प्रकार का मनमुटाव पैदा हो।

११—पति का कर्त्तव्य है, वह स्त्री के जिन वस्त्राभूषणों की कमी हो, उनका प्रबन्ध स्त्री के बिना कहे ही स्वयं करे। स्त्री की शोभा में कमी आने से उसी को बुरा लगेगा और यदि स्त्री कहेगी तो भी अच्छा मालूम नहीं होगा। इस लिए पहले ही प्रबन्ध कर देने से दो लाभ होते हैं, एक तो स्त्री के सजने-धजने में किसी प्रकार

की बाधा उपस्थित नहीं होती और दूसरे बिना माँगे वस्त्र आभूषणादि पाकर स्त्री बहुत प्रसन्न होती है और वह कभी आवश्यकता रहने पर भी किसी चीज की फरमाइश नहीं करगी। इस प्रकार बर्त्तन से पति-पत्नी में उत्तरोत्तर प्रीति बढ़ती ही रहेगी।

१२—जो अपनी स्त्री को प्रतिव्रता देखना चाहें वे स्वयं पत्नी-व्रती बन जायें। उनके सामने राम का आदर्श मोजूद है।

१३—प्रायः मनुष्य स्त्रियों से गृह-सम्बन्धी कार्य न लेकर, मजदूरनी आदि से काम ले लेते हैं। वे समझते हैं स्त्रियों को कष्ट न हो किन्तु इसका परिणाम बड़ा बुरा यह होता है कि स्त्रियाँ इतनी सुकुमार और आलसी हो जाती हैं जो आड़े वक्त पर अर्थात् धनाभाव दशा में अपनी गृहस्थी का भार उठा नहीं पातीं। उस समय अपनी करनी पर मनुष्य को पछताना पड़ता है। सुकुमारिता और आलस्यता के कारण उनके शरीर निर्बल, निस्तेज तथा रोगी होकर अकालकवलित हो जाते हैं। निर्बलता के कारण गर्भ स्थिर नहीं होता, यदि गर्भ रह भी जाय तो कुछ समय बाद वह गिर जाता है और यदि न गिरा तो बच्चा-जच्चा दोनों को जनमते समय मृत्यु से युद्ध करना पड़ता है। प्रथम दोनों परलोक यात्रा कर जाते हैं, बच रहे तो दोनों डाक्टरों की सेवा में हमेशा उपस्थित रहते हैं। यदि स्त्रियाँ घर के सभी काम में लगा दी जायँ तो वे बलवती रहें, उन्हें गर्भधारण से लेकर बच्चा जनने तक कोई आपत्ति उठानी न पड़े और न डाक्टर वैद्यों की सेवा ही करनी पड़े। उदाहरण में आप

चित्र नं० ६

पद्मिनी स्त्री
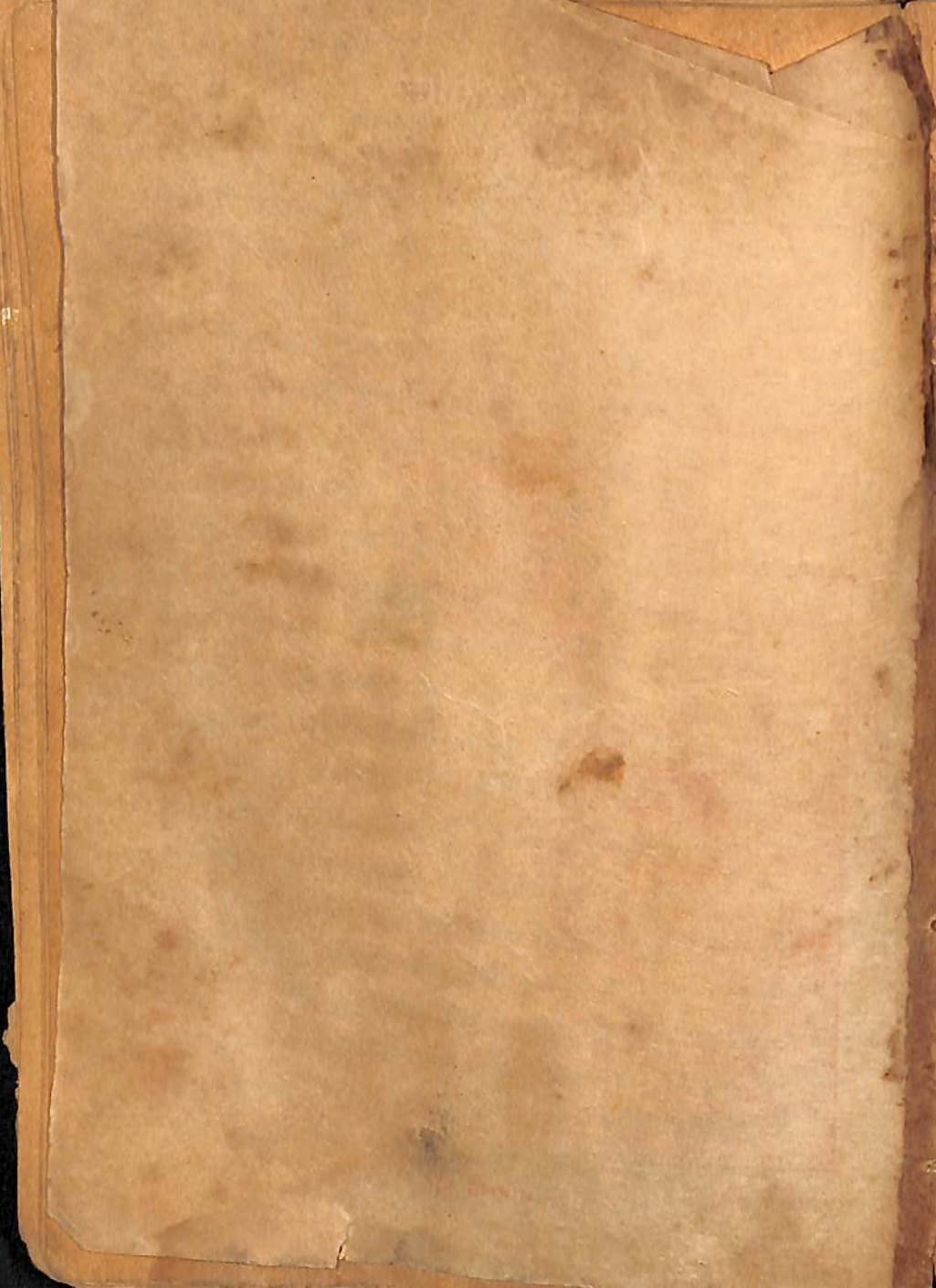
ग्राम्य या जंगली सपरिश्रम जीविका उपार्जन करनेवाली स्त्रियों को ले लीजिए। उन्हें कोई भी शिकायत नहीं होती, रास्ते चलते किसी आड़ में बच्चा जन लेती हैं। न उन्हें प्रसव वेदना होती है और न धाय को आवश्यकता होती है। थोड़ी देर के बाद बच्चा उठाकर घर जा पहुँचती हैं। परमात्मा ने सृष्टि के सभी नियम समान बनाये हैं, हम अपनी गलती से हेर-फेर कर दुःख उठाते हैं। समस्त संसार के जीवों को ले लीजिये उनको गर्भ धारण से लेकर गर्भ मोचन तक किसी की सहायता को आवश्यकता नहीं पड़ती। न उनके पास धाय, न सेविका, न डाक्टर-वैद्य, सदैव समान परिश्रम करते हुए निरोग अपनी जाति के अनुसार बल पुरुषार्थ उनमें पाया जाता है ऐसा क्यों? इसका स्पष्ट उत्तर यही हो सकता है कि वे सृष्टि-नियम के अनुकूल आचार-विचार करते हैं इसलिए सुखी रहते हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि के अभिमान में प्रकृति विरुद्ध काम करता है और दुःख उठाता है।

१४—पति को चाहिए पत्नी के स्वच्छ वायु सेवन का प्रबन्ध करे अर्थात् प्रातः सायं दोनों समय भ्रमणार्थ जहाँ की वायु अच्छी हो वहाँ ले जाय। इससे मन बहलता है और स्वास्थ्य वृद्धि होती है। वायु सेवन करनेवाली नारियों को देखा होगा वे कैसी स्वस्थ होती हैं।

१५—यदि पत्नी से कोई अपराध हो जाय तो उसे प्रेम से समझा दो, उसकी सखियों में उसे अपमानित मत करो। तुम्हारे

समान वह भी अपनी इज्जत की रक्षा चाहती है । अपमानित होने पर उसके हृदय में द्वेष उत्पन्न हो जाता है । सम्भव है क्रोधवश वह भी तुम्हारा अपमान कर बैठे । मान सबको प्यारा है, अपमान नहीं ।

१६—पुत्रवती पत्नी को पति "बच्चे की माँ" कहकर पुकारने लगते हैं । यह उनकी भूल है ऐसा उन्हें न करना चाहिए क्योंकि यह रूखा सम्बोधन है । वह ऐसा शुष्क सम्बोधन पति मुख से सुनना नहीं चाहती । सच तो यह है कि अगर पत्नी ही पति को "बच्चे के बाप" कहकर पुकारे तो कितना बुरा मालूम हो । जैसे पति पत्नी के मुँह से प्राणनाथ ! प्राणवल्लभ आदि प्रिय सम्बोधन सुनना पसन्द करता है, वैसे ही पत्नी भी पति के मुख से प्राण-प्यारी प्राणवल्लभे आदि मधुर सम्बोधन सुनना चाहती है ।

१७—जैसे आप अपने इष्ट-मित्रों में बैठकर वार्तालाप का आनन्द मनाया करते हैं वैसे ही स्त्रियाँ भी अपनी सखी सहेलियों में बैठकर विनोद किया करती हैं उनके इस कार्य को देखकर पुरुष बुरा मानकर जली-कटी सुना डालते हैं । उनका यह व्यवहार युक्त नहीं होता । स्त्रियों का मनोविनोद भी अपने ही समान समझना चाहिए । अन्यथा वे कैसे मन बहलायेंगी । समान सखियों में मनोविनोद करने से उनका स्वास्थ्य बनता है ।

१८—धार्मिक उत्सवों में स्त्रियों को साथ ले जाना चाहिए । इससे उनकी योग्यता बढ़ती है । कथा-वार्त्ता सुनने से वे व्यवहार कुशला हो जाती हैं ।

१९—पति को सदैव संयमी होकर रहना चाहिए। ऋतु अनुसार जैसा स्त्री-प्रसंग बतलाया गया है वैसा बर्त्तने से दोनों को आनन्द मिलता है। अन्यथा लम्पट पुरुष को स्त्री प्यार नहीं करती।

२०—पति को काम-काज में ही समय न बिता देना चाहिए। प्रत्युत कुछ समय बचाकर अपनी सहधर्मिणी के साथ भी हास्य-विनोद करना चाहिए। अच्छी-अच्छी कविता या पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिए। जिससे स्त्री का ज्ञान बढ़े और मनोविनोद भी हो।

२१—माता पिता या अन्य सम्बन्धियों के शिकायत कर देने मात्र से स्त्री को डाँट-डपट न दिखा देना चाहिए। प्रत्युत कारण की खोज करनी चाहिए, पश्चात् जैसा उचित हो वैसा एकान्त में समझा देना चाहिए। कभी-कभी बिना अपराध भी स्त्रियाँ सन्देह मात्र में अपराधिनी ठहरा दी जाती हैं। वे अपने बड़े-बूढ़ों से कुछ कह नहीं पातीं।

२२—स्त्रियाँ प्रायः अपने रोग को छिपाया करती हैं। यहाँ तक कि वे अपनी सखियों से भी नहीं कहतीं। जब रोग इतना बढ़ जाता है कि दबाये नहीं दबता तब वह स्वयं प्रगट हो जाता है। उस समय प्रायः असाध्य अवस्था में पहुँच जाता है। इस लिये स्त्रियों के इस सलज्ज या भययुक्त अविवेकी स्वभाव को जानकर पति को चाहिए वह प्रतिदिन सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करता रहे। अथवा इतनी गाढ़ मैत्री उत्पन्न करे जिससे वह स्वयं अपना रोग

प्रगट कर दिया करे ।

२३—पति-पत्नी का कर्त्तव्य है कि धन जोड़-जोड़ कर रखने की चेष्टा न करें, उसका सदुपयोग अर्थात् बच्चों के पढ़ने-पढ़ाने में खर्च करें जिससे सन्तान सुयोग्य होकर सुख पा सके, और स्वयं भी अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करते रहें। अच्छे कामों में खर्च करना यह धन का सदुपयोग है। यदि बच्चे को मूर्ख रखकर धन इकट्ठा करोगे तो वह नालायक रहकर सब धन नष्ट कर देगा ।

२४—कुछ रुपया स्त्री के पास रख छोड़ना चाहिए। प्रतिदिन के खर्च के लिए पत्नी को तुमसे बार-बार न माँगना पड़े, इससे बड़ी अंडस होती है और बुरा भी लगता है ।

२५—पती को पत्नी के कर्त्तव्य सदैव चिताते रहना चाहिए और स्वयं भी अपने कर्त्तव्यों का ध्यान रखना चाहिए । जो इस प्रकार विवेक से काम लेता रहेगा तो कभी मतभेद उत्पन्न नहीं होगा और हमेशा प्रेमभाव बना रहेगा ।

२६—पत्नी की कही हुई बात को बड़े ध्यान से सुनना चाहिए और फिर विचार कर जैसा उचित हो वैसा उत्तर या प्रबन्ध करना चाहिए ।

२७—जिस प्रकार पत्नी वस्त्राभूषणों से सजाकर पति को प्रसन्न करने के लिए उसके पास आती है वैसे ही पत्नी भी पति को स्वच्छ वस्त्र और पुरुष के पहनने योग्य आभूषणों से तथा सुगन्धित पुष्प इत्र फुलेल आदि द्रव्यों से सुवासित एवं सुसज्जित देखना चाहती

है। इस लिए तुम भी मनोविनोद की सामग्री से सज-धज कर पत्नी के पास जाओ। स्मरण रहे शृङ्गार करते समय किसी को किसी के पास न रहना चाहिये। दोनों को अलग-अलग एकान्त में वस्तु रचना करनी चाहिए। अन्यथा बाधा पड़ती है और सजी-सजायी वस्तु के देखने में जो आकर्षण एवं प्रियता मालूम होती है, वह सजते समय देख लेने से नहीं रहती। यह मनुष्य-स्वभाव है।

२८—स्त्री को उपहार में बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी वस्तु भेंट दी जा सकती है। तुम यह न समझो कि छोटी-सी वस्तु देने से स्त्री का मन क्या खुश होगा? वह इस छोटे उपहार को पाकर भी आपके प्रेम का अनुभव करेगी। न होने से होना तो अच्छा है। कहावत है—"मान का पान भी बहुत बड़ा होता है।"

२९—पतिव्रता स्त्री को पति-प्रेम चाहिये। यदि वह मिल जाता है तो वह धन, वस्त्र, आभूषण आदि सब भूल जाती है। उदाहरण में महरानी शैब्या और सती सीता को देखो—बनवास की हालत में वे दोनों कैसी अवस्था में थीं। किन्तु उनका मन कभी उदास नहीं हुआ। इस लिए सच्चा पति-प्रेम उत्पन्न करना पति का कर्त्तव्य है। उसीके प्रेमभरे व्यवहार से उसकी उत्पत्ति होती है।

३०—कोई लोग बलपूर्वक कठोर शासन द्वारा स्त्री को वश में रखना चाहते हैं। यह उनकी अज्ञता है। उनके वश में लाने का सिर्फ एक उपाय सच्चा प्रेम और मीठा वचन है। कहा है—"वशी-करण इक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर" "प्रेमरस सान्यो कभी

विलगे ना विलगाय से, उलझन बड़ी बैर की, जो सुलझे ना सुल-झाय ते"। इस लिए पत्नी को प्रेम से ही वश में करना चाहिये, बल से नहीं।

—o—

# पत्नी-कर्त्तव्य

**अभीवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**
**चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्॥**

१—स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह अपने से बड़े माता, पिता, सास श्वसुर और पति को नित्य प्रति प्रातः और सायंकाल, आदर और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करे। तथा उनकी तन मन से सेवा करे। इससे उसकी आयु, विद्या, यश और बल चारों की वृद्धि होगी।

२—"पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्" स्त्रियों का पति ही एक गुरु है। इस लिए गृहस्थ सम्बन्धी जो परामर्श करना हो वह पहले पति से ही कर लेना चाहिये। उस परामर्श में जैसा निश्चय हो वैसा करना उचित है। इससे लाभालाभ होने पर किसी को उल-हना देने का अवसर नहीं मिलता।

३—पत्नी को चाहिए कि वह पति के अतिरिक्त और किसी से सन्तान की इच्छा न करे। देवी देवता या मियाँ मदार से जो स्त्रियाँ सन्तान माँगती फिरती हैं वे पतिव्रता नहीं कही जा सकतीं।

क्योंकि पति से उनका विश्वास उठ गया—पति को उन्होंने पुत्र उत्पन्न करने के योग्य नहीं समझा। इस लिए वे दूसरों के पास जाने लगीं। वह सन्तान पति की न होने से हरामी कहलायेगी। क्या यह कुलघ्नकार्य ( कुल को नाश करने वाला ) नहीं है ? पति देवता और पत्नी ही देवी होती है। इन दोनों की प्रसन्नता से जो सन्तान होती है, वह सदाचारिणी और कुल को तारने वाली होती है। रहे मियाँ मदार—जो स्वयं मर चुके अपनी रक्षा न कर सके। जिनकी हड्डियाँ भी कबर में शेष हों, इसमें सन्देह है, न मालूम कब की गल-सड़ कर मिट्टी में मिल गयी होंगी। उनसे सन्तान की आशा करना कितनी मूर्खता की बात है ? इस लिये पतिव्रता नारी को अपने पति के अतिरिक्त किसी से पुत्र की कामना न करनी चाहिए। नहीं तो उसका पतिव्रत धर्म भंग समझा जायगा।

४—किसी के मुख से चाहे वह कितना भी हितु क्यों न हो पति-निन्दा न सुननी चाहिए। इससे अपना प्रेम पति की ओर से घटता है और परस्पर कलह उत्पन्न हो जाती है। यदि सच्चा प्रेम और श्रद्धा स्थिर रखना चाहें तो पति-निन्दक को डपट कर रोक दें।

५—पत्नी को चाहिए कि वह पति के मनोगत-भावों का प्रतिक्षण स्वाध्याय करती रहे। पति का जैसा स्वभाव हो उसके अनुसार चलकर उन्हें अपना प्रेम-पात्र बना ले। तुम उनसे खूब प्रेम करो, उनकी किसी बात को मत काटो, जल्दी-से-जल्दी उनकी आज्ञा का पालन करो। उनकी बात को बड़ी सावधानी से सुनो,

ताकि उन्हें दुबारा कहने की आवश्यकता न पड़े। जब बोलो तब बड़े प्रेम के साथ बोलो। ये सब मोहनास्त्र हैं, इनका प्रयोग करना जो स्त्री जान जाती है वह शीघ्र ही पति को अपने वश में कर लेती है।

६—अपनी भी शकल-सूरत किसी को मनचाही नहीं मिलती। यदि पति ही मनचाही शकल का नहीं मिला तो इसमें किसका दोष कहा जाय। इस पर भी अपनी सूरत सभी को प्यारी मालूम होती है। भाग्य-रेखा से पति-पत्नी का संयोग होता है, उसी पर सन्तोष रखना चाहिए, चाहे वह सरूप हो या कुरूप। यदि तुम उससे अधिक रूपवती होगी तो वह तुमसे अधिक प्रेम करेगा। तुम रूपगर्विता होकर उसके प्रेम की उपेक्षा न करो, बल्कि अपनाओ और दूने उत्साह से उसका स्वागत करो, वह तुम्हें प्यारा लगने लगेगा। सच्चे प्रेम का पाना बड़ी तपस्या का फल है। वह समान रूप वाले या कुछ कम रूप वाले पुरुष से प्राप्त हो सकता है, अधिक रूपवाले से नहीं। अधिक रूपवान् पुरुष भ्रमर की तरह अनेक कलियों का रस चूसना चाहते हैं। उन्हें अपने रूप का गर्व होता है। वे किसी एक रमणी से प्रेम नहीं करते; उनका क्षणिक-प्रेम होता है, स्थिर नहीं। विरला ही कोई स्वरूपवान् पुरुष पत्नी-व्रती होता है।

७—पति जब बाहर से घर आये, उसका प्रसन्न मुख होकर अभिवादन करते हुए स्वागत करो। पति तुम्हारे इस व्यवहार से

आन्तरिक दुःखों को भूल जायगा, उसकी थकावट दूर हो जायगी और वह सच्चे प्रेम का अनुभव कर परम सुखी होगा। वह सुखी होकर तुम्हारी शुभ कामनायें सोचने लगेगा। जब वह घर से जाने लगे तब भी प्रेमपूर्वक प्रसन्न-मुख होकर नमस्ते करना चाहिए। इसका प्रभाव उस पर यह होता है कि वह बाहर काम से छुट्टी पाने पर घर की ओर आने के लिए व्याकुल हो जाता है और कोई उपहार में देने योग्य नयी वस्तु भी लाने से नहीं चूकता।

८—सुन्दर वस्त्र और आभूषणों को पहन कर पत्नी को चाहिए कि वह हाव-भाव के साथ वेश्या की तरह पति को रिझाये। वेश्या धन की लालसा से झूठा प्रेम दिखाकर पुरुषों को मोहती हैं और उनका छल, बल, कल से सब धन हरण कर लेती हैं। कहना चाहिए कि उनकी इच्छा पूरी हो जाती है। यदि स्त्री भी उपरोक्त-कलाओं से काम लेकर पति को मोह ले तो उसे भी रति-सुख और प्रेम की प्राप्ति अवश्य हो जायगी, और उनका अटूट सम्बन्ध स्थिर रहेगा।

९—जिस प्रकार माता बड़े प्रेम के साथ बच्चे को भोजन कराते हुए मीठे-मीठे बचन कहती और तरह-तरह के मन बहलाने वाले चुटकले कहती है। प्रत्येक खाद्य-पदार्थ की तारीफ कर अधिक खिलाने की तरकीब करती है। कहती है—अभी तुमने कुछ नहीं खाया, तुम्हारी भूख घट गयी है, ऐसा करने से शरीर कैसे बना रहेगा, इत्यादि अनेकविध बचनों से उत्साहित करती है तथा

भोजन भी बदल-बदल कर तरह-तरह के बनाती है। यह है सच्चा मातृ-प्रेम। कुलटा माताओं में यह प्रेम नहीं होता। वैसे पत्नी को भी खिलाने पिलाने में सच्चे मातृ-प्रेम वाली माता के समान व्यवहार करने वाली बनना चाहिए।

१०—स्त्री को चाहिए बच्चों की सफाई का ध्यान रक्खे। इससे बच्चे निरोग और बुद्धिमान् होते हैं। जब वे बड़े हों तब उन्हें बड़ों के प्रति बोलने के छोटे-छोटे वाक्य सिखाने चाहिएँ। वर्णमाला का शुद्ध उच्चारण कराना सिखाना चाहिए। उस समय जिन वर्णों का उच्चारण बच्चा शुद्ध नहीं कर पाता वह थोड़े ही प्रयास से ठीक हो जाता है। उसकी बहुत कोमल जबान होती है। किन्तु यदि उस समय ध्यान न दिया जाय तो फिर सुधारना बड़ा कठिन हो जाता है।

११—घर की छोटी से लेकर बड़ी वस्तु तक कोई भी बिना पति की राय के किसी को न देना चाहिए। तुम्हें नहीं मालूम पति को इन वस्तुओं के जुटाने में किन-किन मुसीबतों का सामना करना पड़ा। वह यदि फिर जुटाने की शक्ति रक्खेगा तो तुम्हें आज्ञा दे देगा। अन्यथा समय पर तकलीफ उठानी पड़ेगी और पति से भी दो बात सुननी पड़ेगी।

१२—बिना पति की आज्ञा के किसी से कोई वस्तु लेनी भी न चाहिए। क्योंकि उस वस्तु को देखकर पति के मन में सन्देह उत्पन्न हो सकता है। ऐसे कुलटा स्त्रियों के व्यवहार देखे गये हैं कि वे

उपपति ( जार ) से प्राप्त किये उपहार को सखी का उपहार कह-कर पति को धोखा दे देती हैं। जब पति को घर में आयी वस्तु का असली रूप मालूम रहेगा, तब किसी प्रकार का सन्देह नहीं हो सकेगा। इस लिए ऐसा काम मत करो कि जिससे घर में कलह को स्थान मिले।

१३—पत्नी को पति के सोने के बाद सोना चाहिए और जागने के पहले उठना। प्रात जब सबेरे सो कर उठे तब उनके चरण छू कर नमस्ते करे।

१४—स्त्री को चाहिए कि जो रुपया पति से प्राप्त हो उसे एक कापी में जमा कर ले और जिस-जिस काम में खर्च हो ब्योरेवार लिखकर उन्हें समझा दे। यदि कोई बड़ी रकम खर्च करने का समय आये तो उनकी स्वीकृति लेकर खर्च करे।

१५—जिसके शरीर में चर्बी अधिक हो उसे महीने में दो-चार उपवास कर डालने चाहिएँ। चर्बी अधिक बढ़ जाने से गर्भ स्थिर नहीं होता। गर्भ अवस्था में हलका और सुपच भोजन करना उत्तम है गरिष्ठ नहीं। गर्भावस्था में उपवास सर्वथा वर्जित है। क्योंकि उससे गर्भस्थ बालक को हानि पहुँचती है। बच्चे की सब जिम्मे-दारी माता पर ही निर्भर है।

१६—पति जितना रुपया मासिक पैदा करता हो, स्त्री को उसके अन्दर ही खर्च कर कुछ बचाना चाहिए। जिससे बच्चों की पढ़ाई-लिखाई और विवाह आदि का काम चल सके। रोग-भोग

का तो ठिकाना नहीं कब आ उपस्थित हो। उस समय की रक्षा बचे धन से ही हो सकती है। जो नारी इस बात पर ध्यान नहीं देती और फजूल खर्च करती है, उसके पति को कर्ज लेकर दूसरे का ऋणी होना पड़ता है। जिसका परिणाम यह होता है कि कर्जा उतारते-उतारते बच्चों को दुःख उठाना पड़ता है। लिखा है "ऋण-कर्त्ता पिता शत्रुः" अर्थात् ऋण का करनेवाला पिता अपनी सन्तानों का शत्रु होता है। ऐसा करने से उसका कारण तुम हो जाओगी।

१७—क्या तुम अपने माता पिता भाई बहिन की बुराई पति-मुख से सुनना पसन्द करती हो? यदि नहीं! तो तुम भी पति के सम्मुख उनके माता पिता और भाई बहन की बुराई मत करो! क्योंकि उनको भी यह अच्छा प्रतीत नहीं होगा। यदि यश कामना चाहो तो उनकी प्रशंसा करो। पति प्रसन्न होगा और यदि वे भी सुनेंगे तो तुम्हारा यश गायेंगे। प्रशंसा-से-प्रशंसा और बुराई से बुराई मिलती है। जैसा बोता है वैसा काटता है।

१८—यदि तुम अपनी सखियों की अपेक्षा अपने आपको विशेष बुद्धिमती, स्वच्छ, पवित्र शृङ्गार वेषभूषा तथा भोजन आदि पदार्थ बनाने में कुशल व श्रेष्ठ बनाओगी तो तुम्हारे पति का मन तुम्हें छोड़कर और किसी स्त्री पर नहीं जायगा।

१९—जब कभी किसी के घर विवाह आदि संस्कार में जाना हो, तब पति से पूछकर उनकी अनुमति से जाना चाहिए अन्यथा नहीं। जो पराये घर में बिना प्रयोजन केवल बातें करने के लिए,

अपने घर का काम-काज छोड़कर जाती है। उसका आचार-विचार अच्छा नहीं समझा जाता और वह पति की नजरों से गिर जाती है।

२०—स्त्री को चाहिए कि सखियों के अथवा अन्य स्त्रियों के साथ बैठकर किसी दूसरे की निन्दा न करे और न सुने ही। यदि कोई स्त्री निन्दा करती हो तो उसे मीठे वचनों से समझा दे कि निन्दा अच्छी वस्तु नहीं, किसी का बुरा सोचना अच्छा नहीं, ऐसा करने से दोष अपने में इकट्ठे होने लगते हैं। यदि इस प्रकार समझाने से मानकर वह कोई अच्छी बात आरम्भ कर दे तो अच्छा, अन्यथा वहाँ से टल जाय। बुराई करने या सुनने से दोनों की हानि होती है, इस लिए इसका सर्वथा त्याग रखना चाहिए।

२१—पति यदि कोई वस्तु भेंट करे, तो तुम उसे बड़े प्रेम से अपनाओ और उसको प्रशंसा करो, इससे पति का मन प्रसन्न होगा और भविष्य में और वस्तु लाने के लिए उसका मन उत्साहित होगा।

२२—पति को प्रसन्न करने के लिए तुम भी कोई अपने हाथ की बनी हुई चीज भेंट करो जो उनके व्यवहार में हमेशा रहनेवाली हो। इससे उनका मन खुशी से फूल उठेगा और उन्हें इस बात का गर्व होगा कि हमारी धर्म-पत्नी दस्तकारी में सिद्धहस्त है। इसी प्रकार आदान प्रदान से परस्पर प्रेम की वृद्धि होती है।

२३—घर में सब प्रकार नौकरों-चाकरों की सुविधा होते हुए भी तुम पति की सेवा अपने हाथ से करो। नौकरों पर उसका भार मत छोड़ दो, यह तुम्हारा धर्म है। यदि तुम नौकरों के भरोसे

अपना कर्त्तव्य छोड़ दोगी ते धर्मच्युत हो जाओगी। उसका फल तुम्हारा विनाश होगा। क्योंकि धर्मशास्त्र में लिखा है—"धर्म एव हतो हन्ति, धर्मोरक्षति रक्षितः" नाश किया हुआ धर्म, अपने नाशक का नाश कर डालता है और रक्षा किया हुआ अपने रक्षक की रक्षा करता है। इसकी सत्यता बड़े-बड़े धनिक घरानों में स्पष्ट दिखायी दे रही है। पति पत्नी की कुछ भी परवाह नहीं करता। वहाँ स्त्रियाँ केवल विलास की सामग्री बनी बैठी हैं, और सब काम नौकरों द्वारा नकल जाता है। जब गृहपत्नी की रूपछटा कम हुई तब वे हृदयरूप-सिंहासन से उतार दी जाती हैं और बाजारू वेश्याओं के पास पहुँचते हैं। बस यही सुख उन्हें पत्नी से मिलता था और सब सम्बन्ध ते नौकरों से था। तुम्हारा सम्बन्ध केवल भोग-विलास के लिए नहीं हुआ प्रत्युत् पति-सेवा के लिए भी है। इसी लिए तुम धर्मपत्नी सहायिका समझी जाती हो। जो स्त्री पतिसेवा अपने आप करती है उसका पति उसे जीवनभर नहीं छोड़ता। उसका प्रेम वृद्धा हो जाने पर भी वैसा ही अटल रहता है जैसा युवावस्था में था।

२४—पत्नी को चाहिए कि पति के इष्ट-मित्रों के साथ मीठा व्यवहार करे उनका नम्रतापूर्वक सम्मान करे। जिसे पति देखकर प्रसन्न हो।

२५—सेवक के विषय में लोग कहते हैं—"हमें काम प्यारा है, चाम प्यारा नहीं" इस जनश्रुवि से स्पष्ट मालूम होता है कि चाम

इन दोनों के प्रकोप से रज-स्राव का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसके लिए खट्टे, उष्ण तथा तीखे पदार्थों का यथाशक्ति सेवन करना लाभदायक होता है।

११—प्रदर, गर्मी तथा सूजाक आदि रोगों के कारण भी गर्भ की स्थिति में बाधा पड़ती है।

१२—गर्भ स्थिर न होने का कारण नपुंसकता भी है। जो मनुष्य स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा करे, लेकिन अपनी निर्बलता के कारण इच्छा पूरी न कर सके या स्त्री के पास जाते ही जिसका पतला वीर्य अपने आप ही निकल जाय, दम फूलने लगे, उसे नपुंसक कहते हैं। भावप्रकाश में सात प्रकार की नपुंसकता लिखी है।

**क्लीवःस्यात्सुरता शक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते।**
**तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते** ॥ भावप्रकाश

मन की निर्बलता के कारण उत्पन्न हुई नामर्दी को 'मानस क्लैब्य' पित्त की अधिकता से पैदा हुई नामर्दी को 'पित्तज-क्लैब्य' वीर्य की कमी के कारण होनेवाली नपुंसकता को 'वीर्य-क्षय जन्य-क्लैब्य' बीमारी के कारण नामर्दी को 'रोग-जन्य क्लैब्य' वीर्य-वाहक नसों के कट जाने के कारण पैदा हुई नामर्दी को 'शिरोच्छेद जन्य क्लैब्य' वीर्य के रोकने से उत्पन्न होने वाली नामर्दी को 'शुक्रस्तम्भन-क्लैब्य' और जन्म से ही नामर्दी को 'सहज-क्लैब्य' कहते हैं।

## वन्ध्या प्रकार और उसकी चिकित्सा

**काकवन्ध्या मृतवत्सा गर्भस्राव्यस्तु याः स्त्रियः ।**
**आदि वन्ध्याश्च गीयन्ते दोषैरेभिर्नचान्यथा ॥**

—बालतन्त्रम् ।

वन्ध्या चार प्रकार की होती हैं। काकवन्ध्या, मृतवत्सा, गर्भस्रावी और आदिवन्ध्या या जन्मवन्ध्या ।

काकवन्ध्या उसे कहते हैं जिस स्त्री के एक सन्तान होकर फिर गर्भ न रहे ।

मृतवत्सा वह है, जिसके बच्चे पैदा होकर मर जायँ—जियें नहीं ।

गर्भस्रावी उस स्त्री को कहते हैं, जिस स्त्री के गर्भ स्थित हो-हो कर नष्ट हो जायँ ।

आदिवन्ध्या, जो स्त्री कभी भी गर्भ धारण न करे ।

ये चारों वन्ध्यायें ऊपर कही गयीं रक्त-पित्तादि दोषोंवाली वन्ध्याओं से सर्वथा भिन्न प्रकार की हैं। इनके अतिरिक्त आठ प्रकार की वन्ध्यायें और होती हैं ।

**त्रिपत्नी शुभ्रती सज्जा त्रिमुखी व्याघ्रिणी बकी ।**
**कमली व्यक्तिनी चैवनासां चिह्नं वदाम्यहम् ॥**
**त्रिपत्नी नाम या वन्ध्या त्रिपत्ने पुष्तिता भवेत् ।**

द्वे जीरके श्वेतवचाककोंट्याश्च फलं समम् ॥
तण्डुलोदक संपिष्टं चेत्थिता सूर्य सम्मुखो।
त्रिदिनं च पिबेन्नारी दुग्धभक्तं च भोजनम् ॥

त्रिपक्षी, शुभ्रती, सज्जा, त्रिमुखी, व्याघ्रिणी, बकी कमली और व्यक्तिनी। ये आठ प्रकार की वन्ध्यायें और होती हैं। अब इनके लक्षण अलग-अलग कहे जाते हैं। जो स्त्री तीन पक्ष में ऋतुमती हो, उसे 'त्रिपक्षी वन्ध्या' कहते है। दोनों जीरे, खुरासानी वच, ककोड़े का फूल इन चीजों को बराबर-बराबर लेकर चावल के पानी में पीसकर सूर्य के सामने खड़ी हो तीन दिन प्रातःकाल पीना चाहिए और दूध तथा चावल के अतिरिक्त दूसरी कोई भी चीज खाना उचित नहीं है। ऐसा करने से अवश्य गर्भ रह जाता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है।

शुभ्रती नाम की वन्ध्या का शरीर संकुचित-सा रहता है और देह में निवर्णता रहती है। यह बन्ध्या कभी गर्भ धारण नहीं करती। नागकेशर ३ टंक, हाअवेर ३ टंक, मोरशिखा ३ टंक और मिश्री १८ टंक लेकर महीन पीस डाले। बाद उसे कपड़छान करके तीन-तीन टंक की पुड़िया बना ले। सबेरे स्नान करने के पश्चात एक पुड़िया एक वर्णी गाय के दूध के साथ सेवन करे और दूध चावल का भोजन करे तो शुभ्रती वन्ध्या अवश्य गर्भ धारण करने में समर्थ हो।

जो स्त्री अनियमित समय में, कभी तो महीने के भीतर और कभी महीने में कई बार और कभी डेढ़ दो महीने बाद रजस्वला होती है उसे 'सज्जा वन्ध्या' कहते हैं। इसके लिए स्याहजीरा, सफेद जीरा, खुरासानी बच, मँजीठ, ककोड़ी, हड़जोड़ी इन औषधियों को बराबर भाग में ले चावल के पानी में महीन पीस छानकर तीन दिन तक सबेरे सेवन करना चाहिए।

जो स्त्री भोजन और मैथुन से कभी तृप्त नहीं होती तथा सम्भोग के समय जिसकी योनि से जल निकले उसे त्रिमुखी वन्ध्या कहते हैं। यह भी गर्भ नहीं धारण करती।

'न्याग्रणी' वन्ध्या उसे कहते हैं, जिसके एक बच्चा अधिक अवस्था हो जाने पर पैदा हो और फिर गर्भ न रहे। इसके लिए वही औषधि गुणकारी है जो त्रिपक्षी वन्ध्या के लिए लिखा गया है।

जिस स्त्री के आठवें दसवें दिन सफेद खून धातु के समान गिरे और कोई सन्तान न हो उसे 'बका वन्ध्या' कहते हैं। इस वन्ध्या के लिए किसी प्रकार की दवा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह वन्ध्यात्व कभी भी दूर नहीं हो सकता।

जिस स्त्री की योनि से निरन्तर पानी झरता रहे और गर्भ न रहे उसे कमलिनी वन्ध्या कहते हैं। यह भी असाध्य है, किसी प्रकार की दवा करना बेकार है।

व्यक्तिनी वन्ध्या उसे कहते हैं जिसकी योनि से सफेद धातु प्रति दिन गिरे यानी सोम प्रदर हो गया हो। लाल चिरायते के

बीज, मिश्री, आँवला और रतनजोत को समान भाग में लेकर गो-दुग्ध में पीस २१ दिन तक पीने से यह रोग दूर हो जाता है। जब सोम प्रदर दूर हो जाय तब दोनों जीरे, काला अगर, केसर, ककोड़ा, मोरशिखा इन औषधियों को बराबर बराबर लेकर बछड़ा व्यायी हुई गाय के दुध में पीस कर तीन दिन तक सेवन करना चाहिए।

यदि बन्ध्या स्त्री रजस्वला ठीक समय से हो, पर गर्भ धारण न करे तो समझना चाहिए कि उसका आर्त्तव दूषित है। यदि ऋतुकाल में जामुन के फल का सा काला रज निकले, कमर में शूल हो, पेट में जलन रहे, हाथ-पैर गरम रहे तथा रुधिर भी गरम निकले तो समझना चाहिए कि आर्त्तव पित्त दूषित है। कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहठी और सफेद चन्दन इनको समान भाग में लेकर कूट डाले। बाद बकरी के दुध में पीस छान कर ऋतुकाल में तीन दिन या जितने दिन आर्त्तव जारी रहे, पान करे। फिर लक्ष्मणा जड़ी को गाय के दूध में पीस छानकर बारह दिन तक पान करे और सूँघे।

यदि ऋतुकाल में खून बहुत सूक्ष्म गिरे और उसका रंग कुसुम के रंग का हो, कटि तथा योनि में दर्द हो, ज्वर हो, तो वायु दूषित आर्त्तव समझना चाहिए। आम की जड़ का छिलका, दोनों कटेरियों की जड़, जामुन की जड़ का छिलका। इनको बराबर बराबर लेकर गऊ के दूध में पीसकर ऋतुकाल में पीना चाहिए। बाद लक्ष्मणा

जड़ी का सेवन ऊपर लिखे अनुसार करे। इससे वायु दूषित वन्ध्यात्व मिट जाता है।

यदि रक्त चिकना और अधिक गिरे और उसका रंग बहुत लाल न होकर प्याज के रंग का सा हो तथा नाभि के पास पीड़ा हो तो कफ दूषित आर्त्तव समझना चाहिए। आक की जड़, मेंहदी, लौंग, नागकेसर, खरेटी की जड़ और गंगेरन की छाल सम भाग में लेकर बकरी के दुध में घोंटकर पीने से कफ दुषित वन्ध्यात्व दूर होता है। अथवा आँवला, हड़, बहेड़ा, सोंठ, मिर्च, चीता इनको सम मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीस छानकर ऋतुकाल में पीने से भी उक्त दोष समूल नष्ट हो जाता है।

यदि ऋतुकाल में जोरों से बुखार हो, रक्त काला गिरे, वह रक्त बहुत गर्म और चिकना हो, काँख, योनि, और कटि में शूल हो, हड़फूटन रहे, नींद अधिक आवे तो समझो कि सन्निपात दुषित वन्ध्यात्व है। अरंड (रेंडी) की छाल, आम की छाल, निसोथ, कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहठी, सफेद चन्दन, इनको सम मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीस-छान कर सात दिन तक सेवन करे या रजस्राव होने पर्यन्त सेवन करे। बाद योनि-विकार शुद्ध हो जाने पर आम की जड़, छोटी खटाई की जड़, लक्ष्मणा, बाँझ ककोड़ी, सफेद फूलवाली विष्णुकान्ता, इनको सम मात्रा में ले गाय के दूध में पीस छानकर नासिका के दाहिने छिद्र से पीने पर पुत्र और बाम छिद्र से पीने पर कन्या उत्पन्न हो, वन्ध्यात्व

छूट जाय। यहाँ पर यह बात ध्यान में रहे कि ऊपर जो औषधियाँ लिखी गयी हैं, उनका सेवन किसी अनुभवी वैद्य से राय लेकर करना चाहिए। क्योंकि लक्षण पहचानना बड़ा कठिन काम है।

—०—

# गर्भ स्थिति के लिए आवश्यक बातें

१—स्त्री पुरुष को स्नानादि से स्वच्छ होकर पवित्र और साफ वस्त्र पहनना चाहिए। स्त्री यदि सफेद वस्त्र न पहन कर रंगीन पहने तो कोई हर्ज नहीं, पर इतना जरूर हो कि वस्त्र का रंग हलका और सफेदी लिए हुए हो, जैसे मोतिया रंग। काला वस्त्र कभी न पहने।

२—शयन-गृह साफ-सुथरा और सफेदी किया हुआ होना चाहिये। उस घर में आवश्यक चीजों के सिवा अधिक चीजों का रहना ठीक नहीं है। बहुधा लोग अपने सोने के कमरे में अश्लील चित्र टाँगा करते हैं; किन्तु यह बहुत बुरी बात है। ऐसे चित्रों का बहुत ही बुरा असर सन्तान पर पड़ता है। कमरे में ऐसे ही चित्र हों, जिनके देखने से मानस में विकार उत्पन्न न हो बल्कि उत्पन्न हुए विकार नष्ट हो जायँ और स्वाभाविक ही हृदय में उच्च भाव पैदा हों।

३—कमरा उत्तम गन्ध से परिपूर्ण होना चाहिए। यदि कोई

फूल हो तो वह भी सफेद रंग का ही हो जैसे—बेला, चमेली आदि।

४—कमरे में न तो बहुत अन्धेरा रहे और न तीक्ष्ण प्रकाश ही हो; मन्द प्रकाश उत्तम है।

५—स्थान एकान्त और भय-रहित होना जरूरी है। गर्भाधान करने के समय चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ रहे।

६—इस आनन्द के समय में स्त्री-पुरुष को निर्लज्ज और निरंकुश नहीं हो जाना चाहिए, किन्तु अधिक लज्जा करनी भी ठीक नहीं। देखिये न. राजा विचित्रवीर्य की स्त्री ने लज्जा के कारण गर्भाधान के समय आँखों पर पट्टी बाँध ली थी, जिसका फल यह हुआ कि अन्ध-पुत्र धृतराष्ट्र पैदा हुआ। इस लिए इसका भी पूरा ध्यान रखना उचित है।

७—मादक वस्तु का सेवन इस दिन कभी न करे। प्यास लगी रहने या पानी पीकर तुरन्त गर्भाधान करने में प्रवृत्त न होना चाहिए। भूखे पेट या भरे पेट रहना भी इस समय के लिए ठीक नहीं है। शरीर शिथिल, किसी प्रकार के रोग से पीड़ित या निद्रा-युक्त होने पर गर्भ स्थित करने की चेष्टा एकदम त्याग देनी चाहिए।

८—सन्तान को जिस विषय में योग्य बनाना हो उसी विषय का दोनों को चिन्तन करना चाहिए और जिस रूप की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हो उसी रूप को हृदय में स्थिर करना उत्तम है।

—०—

फूल हो तो वह भी सफेद रंग का ही हो जैसे—बेला, चमेली आदि।

४—कमरे में न तो बहुत अन्धेरा रहे और न तीक्ष्ण प्रकाश ही हो; मन्द प्रकाश उत्तम है।

५—स्थान एकान्त और भय-रहित होना जरूरी है। गर्भाधान करने के समय चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ रहे।

६—इस आनन्द के समय में स्त्री-पुरुष को निर्लज्ज और निरंकुश नहीं हो जाना चाहिए, किन्तु अधिक लज्जा करनी भी ठीक नहीं। देखिये न, राजा विचित्रवीर्य की स्त्री ने लज्जा के कारण गर्भाधान के समय आँखों पर पट्टी बाँध ली थी, जिसका फल यह हुआ कि अन्ध-पुत्र धृतराष्ट्र पैदा हुआ। इस लिए इसका भी पूरा ध्यान रखना उचित है।

७—मादक वस्तु का सेवन इस दिन कभी न करे। प्यास लगी रहने या पानी पीकर तुरन्त गर्भाधान करने में प्रवृत्त न होना चाहिए। भूखे रह या भरपेट रहना भी इस समय के लिए ठीक नहीं है। शरीर शिथिल, किसी प्रकार के रोग से पीड़ित या निद्रा-युक्त होने पर गर्भ स्थित करने की चेष्टा एकदम त्याग देनी चाहिए।

८—सन्तान को जिस विषय में योग्य बनाना हो उसी विषय का दोनों को चिन्तन करना चाहिए और जिस रूप की सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हो उसी रूप को हृदय में स्थिर करना उत्तम है।

—o—

# प्रदर और प्रमेह

उत्तम और निरोग सन्तान पैदा करने के लिए माता-पिता का रोग-रहित होना अत्यावश्यक है। इस लिए स्त्री-पुरुष को रोग से दूर रहने के लिए पूरी चेष्टा करनी चाहिए। संयम से रहने वाले मनुष्य को रोग नहीं घेरते। जो मनुष्य संयमी नहीं होता, उसीका रोग पीछा करता है। यदि कभी कोई भूल हो जाय और रोग आ घेरे तो तुरन्त ही उसके शमन का उपाय करना चाहिए और आगे के लिए पूर्ण रीति से सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रकरण में दो ऐसे रोगों की चर्चा की जायगी, जिन्हें बहुधा लोग छिपाते हैं और जिसका फल यह होता है कि किसी न किसी दिन जीवन पर ही आ बनती है। ये दोनों ही महा भयानक और नाशकारी रोग हैं। उत्तम सन्तानोत्पत्ति के तो ये जानी दुश्मन ही हैं। एक का नाम प्रदर और दूसरे का नाम प्रमेह है। दो रोग एक से ही हैं। भेद केवल इतना ही है कि प्रदर रोग स्त्री को होता है और प्रमेह पुरुष को। पहले प्रदर रोग का वर्णन किया जाता है।

प्रदर रोग निर्बलता से हुआ करता है। यह रोग केवल स्त्रियों को ही होता है, पुरुषों को नहीं। अति मैथुन से, खट्टा, तीक्ष्ण चीजों के अधिक सेवन से, दिन में सोने से, अजीर्ण से, चिन्ता से, शोक से, चोट लगने से, मादक वस्तुओं के सेवन से, गर्भपात से, गर्भस्राव से तथा अप्राकृतिक भोजन करने से यह रोग उत्पन्न

Reckoned (रेकन्ड) हिसाब, गिनना, आदर करना.
Existing- (एग्जिस्टिंग) जान रखना, जीना, होना, रहना.
Regional (री-जन) देश, धरातल, लोक, जिला, खण्ड, मुल्क.
Basic
Liberal- (लिबरेल) साफ़ उदार, दाता, सीधा,
Atmospheric (एटमोस फेरिक) पवन, वतास, वायुमंडल.
Specified (स्पेसिफाईड) विशेष वर्णन किया
either- (आइ-दर) कोई, एक न एक, प्रत्येक.
Effort (एफ-र्ट) दौड़धूप, उपाय, परिश्रम.
Trace (ट्रेस) रेखा (खींचना), पैर का चिन्ह, पता लगाना.
Substitute (सब-स्टि-च्यूट) एक वस्तु जो दूसरे के तौर रखी जाय
Failing (फेलिंग) भूलत हुए,
Type (टाईप) छापे के अक्षर, चिन्ह, नमूना.
Endeavour (एन-डेवर) उद्योग करना, दौड़ धूप करना, हाथ पाँव मारना.
Abandoned
Acceptable (एक्सेप्टेबिल) स्वीकार योग्य, भला, मन भावना, अच्छा
Mature (मै-च्यूर) पक्का, तैय्यार.
attached table (अ-टैचड) जोड़ा, मिलाया, कुर्क किया, नत्थी की या, लिया (अपनाया)
Associated (एस-सो-शि-एटेड) मिलाया, दोस्त, संगत, साथी,
He may also state :- साथ बैठा
Alternative (ऑल टर नेटिव) दो में से एक, पसन्द करना, चाहे जौन सा, विकल्प
(indicating) (इन्डी केटिंग) बताना.
Regards (री-गार्ड) आदर करना, मुलाहिजा करना, ख्याल करना, सम्बन्ध (कृपा करना, निगाह रखना)
guarantee (गारंटी) जिम्मेवार.

specifically. (स्पे-सि-फि-के-ली) द्वारा, विशेष वर्णन.

Desires — (डिज़ायर) चाहता है, इच्छा

Extension (एक्सटेन्शन) फैलाव.

Applicable (एप्लीकेबिल) वशर्ते कि, इस प्रतिज्ञा

Provided — (प्रोवाइडेड) तजवीज़ किया, यदि

Limited — (लिमिटेड) सीमा, रोकना, किनारा, घेरना,

Terminate — (टरमीनेट) समाप्त करना,

Definitely. (डेफीनेटिली) निश्चय.

Enables. (एन-ऐ-बिल) शक्ति मानना, समर्थ करना.

unless.

confident. (कोनफीडेन्ट) निःसन्देह, विश्वासपात्र.

interruption

additional (ऐडिशन-अल) अधिक, फालतू,

Facility. (फैसिलीटी) सुगमता, तेजी, होशियारी.

urgent.

Present hours of service are 14—30 to 18—30 (I.S.T)

Precisely. — (प्रीसाइस-ली) हूबहू, ठीक रीत से.

# प्रदर और प्रमेह

उत्तम और निरोग सन्तान पैदा करने के लिए माता-पिता का रोग-रहित होना अत्यावश्यक है। इस लिए स्त्री-पुरुष को रोग से दूर रहने के लिए पूरी चेष्टा करनी चाहिए। संयम से रहने वाले मनुष्य को रोग नहीं घेरते। जो मनुष्य संयमी नहीं होता, उसीको रोग पीछा करता है। यदि कभी कोई भूल हो जाय और रोग आ घेरे तो तुरन्त ही उसके शमन का उपाय करना चाहिए और आगे के लिए पूर्णरीति से सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रकरण में दो ऐसे रोगों की चर्चा की जायगी, जिन्हें बहुधा लोग छिपाते हैं और जिसका फल यह होता है कि किसी न किसी दिन जीवन पर ही आ बनती है। ये दोनों ही महा भयानक और नाशकारी रोग हैं। उत्तम सन्तानोत्पत्ति के तो ये जानी दुश्मन ही हैं। एक का नाम प्रदर और दूसरे का नाम प्रमेह है। दो रोग एक से ही हैं। भेद केवल इतना ही है कि प्रदर रोग स्त्री को होता है और प्रमेह पुरुष को। पहले प्रदर रोग का वर्णन किया जाता है।

प्रदर रोग निर्बलता से हुआ करता है। यह रोग केवल स्त्रियों को ही होता है, पुरुषों को नहीं। अति मैथुन से, खट्टा, तीक्ष्ण चीजों के अधिक सेवन से, दिन में सोने से, अजीर्ण से, चिन्ता से, शोक से, चोट लगने से, मादक वस्तुओं के सेवन से, गर्भपात से, गर्भस्राव से तथा अप्राकृतिक भोजन करने से यह रोग उत्पन्न

होता है। इस रोग के ये लक्षण हैं,—प्रसवद्वार से पानी निकले, (यह पानी कई तरह का होता है) स्त्री के शरीर में पीड़ा रहे, हड़फूटन हो और हर वक्त सुस्ती बनी रहे तो समझना चाहिए कि प्रदर रोग है। प्रसव द्वार से निकलने वाला यह पानी झागदार लसोड़ और चिकना होता है। यदि इसका रंग सफेद, पीला अथवा नीला हो तो जानना चाहिए कि रोग साध्य है, किन्तु यदि रुधिर बराबर निकले, किसी तरह भी न रुके, प्यास अधिक लगे, हमेशा दाह बनी रहे, ज्वर हो, शरीर भी क्रमशः क्षीण होता जाय तो असाध्य समझना चाहिए। इसका नाम भी असाध्य प्रदर है।

यह रोग कई तरह का होता है—जैसे वात प्रदर, पित्त प्रदर, कफ प्रदर, सन्निपात प्रदर, रक्त प्रदर और असाध्य प्रदर। यदि शुष्क कर निकले और वह फेनयुक्त हो, उसके निकलने में हलकी सी वेदना हो तथा मांस के पानी के समान हो तो वात प्रदर समझना चाहिए। रक्त पीले रंग का, नीला, सफेद या लाली लिए हुए गर्म तथा अधिक मात्रा में निकले, शरीर में दाह भी हो तो पित्त प्रदर समझो। गोंद की तरह लसदार रुधिर निकले और उसका रंग पीला अथवा गुलाबी रंग का हो तो कफप्रदर जानो। शहद के समान, घी के समान, मुर्दे की सी गन्धयुक्त रुधिर निकलना सन्निपात प्रदर यानी त्रिदोषयुक्त प्रदर का लक्षण है। रक्त और पित्त के विकार से उत्पन्न होने वाले को रक्त प्रदर कहते हैं। शरीर का कृष होना, मूर्छा आना, भ्रम होना, आँखों के सामने अँधेरा छा

जाना, देह का टूटना, शरीर में जलन होना, प्यास अधिक लगना, मन्दाग्नि होना, अजीर्ण होना इसके चिह्न हैं।

इसके लिए बहुत सी औषधियाँ वैद्यक ग्रन्थों में लिखी गई हैं, फिर भी प्रसंगानुसार यहाँ कुछ औषधियों का लिख देना आवश्यक जान पड़ता है।

वात प्रदर के लिए यत्न—मुलहठी, जीरा, कमलट्टा, काला नमक, छः छः माशे लेकर काढ़ा बना ले, बाद ऊपर से शहद मिला कर पी ले। इसके सेवन से वात प्रदर दूर हो जाता है।

पित्त प्रदर के लिए यत्न—छ छः माशे मुलहठी और मिश्री को चावल के पानी में पीसकर सबेरे ही पी लिया करे।

सब तरह के प्रदर रोग की औषधि—सुपाड़ी के फूल, पिस्ते के फूल, मँजीठ, सिरयाली के बीज, ढाक वृक्ष की गोंद, इन सबको चार चार माशे लेकर बूक डाले और उसे फाँक कर ऊपर से थोड़ा सा पानी पी ले। इसके सेवन से सफेद, पीला, स्याह, दुर्गन्धयुक्त सब तरह के प्रदर रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं। अथवा, १ तोला फालसा वृक्ष की छाल, रात को पानी में भिगो दे। बर्तन मिट्टी का और कोरा होना जरूरी है। सबेरे उस पानी में मिलाकर उपरोक्त दवा को पी जाय। इस दवा को पन्द्रह दिन तक करे। या कसेला, माजूफल, पुरानी सुपाड़ी, धाय के फूल, गोंद और लोध, इन सबको पाव पाव भर तथा मँजीठ ३ तोला मोचरस ३ तोला, मेदा लकड़ी ३ तोला, सोंठ ३ तोला, सबको कूट-छानकर सेर भर घी में भिगो

दे। बाद दो सेर मिश्री की चासनी में इनके छटाँक छटाँक के लड्डू बना डाले। प्रतिदिन सबेरे एक लड्डू खाने से सब तरह के प्रदर रोग दूर होते हैं।

रक्त प्रदर के लिए यत्न—आम की गुठली का चूर्ण करके घी, चीनी और मैदा के साथ इसे पका कर हलुआ बनाकर खिलाना हितकर है। या कुकरौंधा नामक बूटी को जड़-सहित कुचल कर एक तोला स्वरस निकाल लो, बाद उसमें शहद मिलाकर सुबह शाम सेवन करो। इससे भी रक्तप्रदर जल्द शान्त हो जाता है।

यह तो हुआ प्रदर रोग का परिचय। अब प्रमेह की व्याख्या देखिये। हम पहले ही कह आये हैं कि यह रोग पुरुषों को हुआ करता है। यह भी प्रदर रोग की तरह निर्बलता के कारण ही उत्पन्न होता है। यह रोग बड़ा ही भयंकर है। इसके उत्पन्न होते ही यदि चिकित्सा नहीं की जाय तो यह जड़ पकड़ लेता है और कुछ ही दिनों में मधुमेह के रूप में परिवर्त्तित होकर असाध्य हो जाता है। फिर तो यह जीवन का अन्त किये बिना विश्राम ही नहीं लेता। इस लिए प्रमेह की दवा करने में आलस्य करना जीवन से हाथ धोना है।

मिहनत न करने से, हस्त-मैथुन करने से, गुदा मैथुन करने से, अप्राकृतिक मैथुन करने से, अधिक स्त्री-प्रसंग करने से, दिन-रात खूब सोने से, मादक वस्तुओं के सेवन करने से तथा मांस खाने से यह संहारकारी भयंकर रोग पैदा होता है।

# प्रमेह के लक्षण

यह रोग जब होने वाला होता है, तब पहले दाँतों में मैल अधिक जमने लगती है। कण्ठ जीभ और तालू में भारीपन मालूम होने लगता है, हाथ पैर में जलन शुरू हो जाती है, मुँह में मिठास होती है, प्यास अधिक लगती है, बाल आपस में चिपक जाते हैं, तथा समूचे शरीर में चिकनाहट आ जाती है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में यह रोग २० तरह का बतलाया गया है। कफज १० पित्तज ६ और वातज ४ प्रकार का होता है।

# कफज प्रमेह

इक्षु प्रमेह—पेशाब गन्ने के रस की तरह मीठा होता है। यह याद रहे कि हर प्रमेह में पेशाब के आगे पीछे या पेशाब में मिल-कर वीर्य गिरता है। किसी किसी प्रमेह में तो उसका गिरना प्रतीत होता है और किसी किसी में बिलकुल दिखलायी नहीं पड़ता।

सान्द्र प्रमेह—यदि रात को पेशाब किसी बर्तन में रख दिया जाय और सबेरे वह बिलकुल गाढ़ा हो जाय तो समझना चाहिए कि सान्द्र प्रमेह है।

उदक प्रमेह—पेशाब एकदम सफेद, शीतल, गन्धहीन, थोड़ा और चिकना होता है।

शुक्र प्रमेह—पेशाब वीर्य के समान होता है।

सुरा प्रमेह—पेशाब ऊपर से शराब की तरह साफ और नीचे गाढ़ा होता है।

पिष्ट प्रमेह—पिसे हुए चावल के पानी के समान और अधिक पेशाब होता है। मूत्र-त्याग करते समय रोमाञ्च हो आता है।

शीत प्रमेह—पेशाब मीठा और अधिक होता है तथा ठण्ढक बहुत रहती है।

सिकता प्रमेह—पेशाब में बालू के समान कड़े कण गिरते हैं। शीशी में रखने से ये कण मालूम होते हैं।

शनैर्मेह—पेशाब थोड़ा और रुक रुक कर उतरता है।

लार प्रमेह- मुख की लार के समान चिकना पेशाब उतरता है।

## पित्तज प्रमेह

मांजिष्ट प्रमेह—पेशाब का रंग मजीठ के काढ़े के समान और दुर्गन्धयुक्त होता है।

रक्त प्रमेह—पेशाब खून के समान लाल, खारा और दुर्गन्ध-युक्त होता है।

हरिद्र प्रमेह—पेशाब करते समय जलन होती है और उसका रंग हल्दी की तरह पीला होता है।

नील प्रमेह—नीले रंग का पेशाब होता है।

क्षार प्रमेह—खारे जल के समान वर्ण, रस, स्पर्श और गन्ध का पेशाब होता है।

काल प्रमेह—काले रंग का पेशाब होता है।

असली कोकशास्त्र

चित्र नं० ७

शंखिनी स्त्री
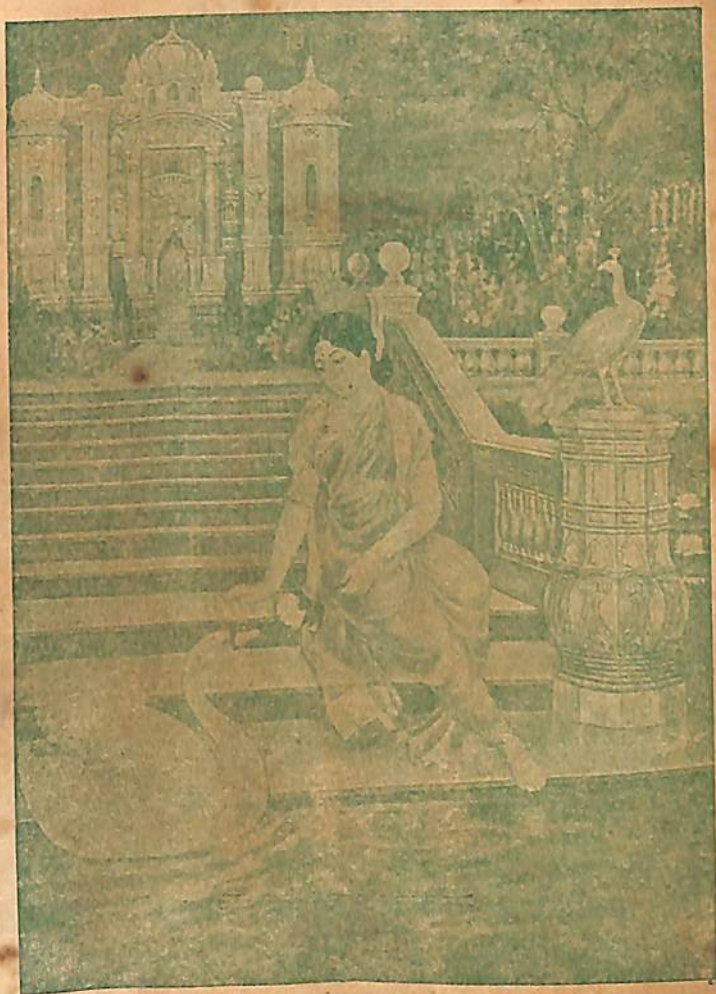
# वातज प्रमेह

वसा प्रमेह—चर्बी के समान पेशाब होता है।

मज्जा प्रमेह—मज्जा मिला हुआ पेशाब होता है।

चौद्र प्रमेह—शहद के रंग का, मीठा, रूखा और कषैला पेशाब होता है। यह पेशाब जहाँ गिरता है, वहाँ चींटियाँ और मक्खियाँ आ जाती हैं।

हस्ति प्रमेह—रुक रुक कर तारदार और हाथी के मद जैसा पेशाब होता है। कभी कभी पेशाब रुक भी जाता है।

—:०:—

# प्रमेह नष्ट के उपाय

१—छः माशे महुआ वृक्ष की छाल को ४ दाने काली मिर्च के साथ पानी में पीस छानकर पीने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

२—आँवला, हड़, और बहेड़े का चूर्ण १ तोला, शहद मिला-कर चाटने से पुराना प्रमेह नष्ट हो जाता है।

३—शुद्ध लौह-भस्म, शहद के साथ चाटने से प्रमेह जाता रहता है। मात्रा बलाबल देखकर निर्धारित करनी चाहिए।

४—शुद्ध वङ्ग-भस्म दो रत्ती जाड़े के दिनों में तो किसी साधारण गर्म चीज के साथ या केले के साथ और गर्मी के दिनों में

कुम्हड़े के मुरब्बे के साथ सेवन करने से सब तरह के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

प्रदर या प्रमेह के रोगी को लाल मिर्च, खट्टी मीठी तथा कड़वी चीजें बादी और गरिष्ट वस्तुएँ भूलकर भी न खानी चाहिएँ। मैथुन करना भी एकदम छोड़ देना उचित है। दवा का सेवन करते समय पूर्णरीति से ब्रह्मचारी बन जाना उचित है। तभी यह रोग दूर हो सकते हैं, अन्यथा दवा का सेवन करना व्यर्थ हो जाता है। सौ दवाओं से बढ़कर एक परहेज से रहना है।

—:o:—

# बल वीर्य बर्धकमहौषधि

इस प्रकरण में कुछ ऐसी औषधियाँ लिखी जायँगी, जिनसे शरीर में काफी बल-वीर्य की वृद्धि हो सकती है। किन्तु ये दवायें सिर्फ उन्हीं लोगों के लिए हैं, जो दुराचार करके अधिक वीर्य क्षीण कर चुके हैं। यों तो ये औषधियाँ सबके लिए लाभदायक हैं, पर संयमी और हृष्ट पुरुष को इनके करने की आवश्यकता ही क्या है? संयमी पुरुष को तो जी-जान से बस एक ही दवा का सेवन करना चाहिए, बस वही संयम। संयम से बढ़कर दूसरी दवा संसार में कोई भी नहीं है।

१—जिस मनुष्य का धातु कम हो गया हो। उसे इस दवा का सेवन करना चाहिए—धाय के फूल, बड़ी हड़, बहेड़ा और

आँवला। इन चारों चीजों को बराबर बराबर लेकर ईख के रस में भावना दे। बाद धूप में सुखा कर उसी के बराबर मिश्री मिला शहद में रात को चाटे और ऊपर से शुद्ध शुद्ध दूध पी ले। इससे बल-वीर्य की वृद्धि होती है।

२—कौंच वृक्ष की जड़ दूध में पीसकर प्रति दिन सवेरे पीने से भी पुरुष का शरीर बलवान हो जाता है और खूब वीर्य पैदा हो जाता है।

३—कौंच वृक्ष की जड़, सफेद तिल, असगन्ध, विदारी कन्द, सांठी चावल, इनको बराबर बराबर लेकर कूट डाले। बाद कपड़े से छानकर प्रति दिन ६ माशे चूर्ण खाकर ऊपर से गरम दूध में घी डालकर पी ले। इसका एक महीने तक सेवन करने से शरीर में विचित्र परिवर्त्तन हो जाता है। हमेशा सेवन करे तो और भी अच्छा हो।

४—सूखे आँवले का चूर्ण ईख के रस में भिगोकर छाया में सुखा ले। इस प्रकार सात बार रस में भिगोकर सुखा ले। बाद उसके बराबर शहद और मिश्री मिलाकर पका डाले और उसका प्रति दिन सेवन करे। यह दवा स्त्री और पुरुष दोनो के लिए एक समान गुणकारी है।

५—शतावरी तेल बनाने की रीति—हरी शतावर को कूट कर २ सेर रस निकाल लेना चाहिए। बाद उसमें एक सेर तिल का तेल और ४ सेर गो दुग्ध डालकर मन्दाग्नि से धीरे धीरे पकावे

इन दवाइयों को एक एक तोला लेकर कल्क बनाकर उसमें पकते समय ही डाल देना चाहिए। सौंफ, देवदारु, बालछड़, छालछरीला, बच, लाल चन्दन, तगर, कूट, इलायची, अंशुमती, खरेटी, रासना, असगन्ध, वायविडंग, स्याह मिच, पीलपर्णी, दालचीनी, पत्रज, रेंडी की जड़ का छिलका, सेंधा नमक और सोंठ। थोड़ी देर के बाद अदरख का अर्क डाल देना चाहिए। जब पक जावे, तब उसे उतार ले और स्वच्छ पात्र में छानकर रख दे। फिर इस तेल का मर्दन करे। यह तेल इतने रोगों पर जादूकी तरह असर करता है—

जो कुबड़े हों, बौने हों, पंगुल हों, महावात रोग से भग्न हों या विसर्प रोग से पिडित हों, उनके लिए यह तेल बड़ा लाभदायक है। शरीर के संकुचित हो जाने में, सन्निपात में गठिया में, हृदय शूल में, यह तेल तत्त्वण गुण दिखलाता है। गले के भीतर होने वाले सब रोगों का यह तेल नाश करता है। वीर्य-हीनता, नपुंसकता, चित्तभ्रम, इन्दिय निर्बलता, बुद्धिहीनता, मन्दाग्नि को यह फौरन दूर कर देता है। वन्ध्यात्व को भी यह दूर करने में समर्थ है। प्रमेह रोग, अंडवृद्धि रोग, पिह्री रोग, समलवाय, मृगी, कुष्ठ, दाह, ज्वर आदि रोगों को भी यह तेल नष्ट कर देता है। इस तेल को एक महीने तक पीने से वृद्ध मनुष्य भी यौवनत्व प्राप्त कर सकता है। इस तेल को सूँघने, पीने और मालिश करने में नित्य बर्त्तना चाहिये। यह शतावरी तेल स्त्री और पुरुष दोनों के लिए लाभदायक है।

६—सफेद घुँघची का कपड़छान किया हुआ चूर्ण दूध के साथ सेवन करना भी वीर्य के लिए बड़ा गुणकारी है।

७—मुलहठी का चूर्ण एक तोला घी मिलाकर शहद में चाटे और ऊपर से दूध पी लिया करे तो बड़ा ही लाभ हो।

८—गोखरू, तालमखाना, सफेद मुसरी, कौंच के बीज, गंगेरण की छाल और सहदेई जड़ी की जड़, इन सब चीजों को कूट-कपड़छान कर चूर्ण के बराबर की मिश्री मिला प्रतिदिन दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

९—गरम दूध में घी डालकर प्रतिदिन सेवन करना भी बड़ा ही बलबर्द्धक है।

१०—सिम्भल की मुसली का रस ४ तोला लेकर उसमें एक तोला मिश्री मिलाकर पी जाया करे। यह दवा सात दिन में ही प्रभाव दिखलाती है।

११—शतावर, गोखरू, डाभ की जड़, सिंघाड़ा, गंगेरण की छाल, कौंच के बीज, इनको सम मात्रा में कूट-कपड़छान कर बराबर की मिश्री मिला एक तोला चूर्ण रोज रात को फाँक कर ऊपर से दूध पी लिया करे तो वीर्य पुष्ट हो और शरीर में ताकत आवे।

—:o:—

# गर्भ ज्ञान

गर्भ स्थिति हो गयी या नहीं, यह जानने के लिए पहला चिह्न तो यह है कि जब गर्भ रह जाता है तब किसी किसी स्त्री का जी दूसरे ही दिन मिचलाने लगता है. मुख का रंग बदल जाता है, शरीर में भारीपन आ जाता है। सबसे अच्छी पहचान महीनेभर में होती है। वह इस तरह कि यदि मासिकधर्म टल जाय, तब समझ लेना चाहिए कि गर्भ रह गया। क्योंकि गर्भ स्थित हो जाने पर मासिकधर्म बन्द हो जाता है। किन्तु जिन स्त्रियों का मासिक-धर्म अनियमित रूप से होता है उनके लिए यह लक्षण ठीक नहीं है। गर्भ रहने पर स्वाभाविक ही भोजन में अरुचि हो जाती है, शरीर में आलस्य आता है और काम करने को जी नहीं चाहता, पुरुष की ओर से भी रुचि हट जाती है, उल्टी होने लगती है, झूठी ओक भी आता है, लेटने के लिए इच्छा करती है, कमर के नीचे सुस्ती अधिक आ जाती है, कभी-कभी सिर भी दुखने लगता है. गर्भिणी स्त्री खट्टी तथा नमकीन चीजें खाने के लिए बहुत उत्सुक रहती है। दस्त खुलासा नहीं होता, नींद अच्छी तरह नहीं आती, स्तनों के मुख छोटे हो जाते हैं और उन पर श्यामलता छाती जाती है। गर्भ के पहचानने की रीति एक यह भी है कि थोड़ी सी शहद पानी में मिलाकर पी लेने पर यदि थोड़ी देर के बाद टूँड़ी में कुछ दर्द होने लगे तो समझना चाहिए कि गर्भ अवश्य है

और यदि दर्द न हो तो जान ले गर्भ कदापि नहीं है। इस पहचान से बढ़कर कोई भी पहचान नहीं है।

संयोग के बाद ही पुरुष से तृप्ति, गर्भाशय में भारीपन, थकावट, छाती का फड़कना, रोम खड़े हो जाना आदि मालूम होता है।

कितनी ही स्त्रियों को तो गर्भ रहने के २-४ दिन बाद ही कै होने लगती है और कितनी को मासिक-धर्म टलने के बाद यह चिह्न दिखलायी पड़ता है। किन्तु बहुत सी स्त्रियाँ गर्भ धारण करते हुए भी इन दोनों बातों से बरी रहती हैं; उनके सिर्फ मुख में थूक अधिक आता है। ढाई-तीन महीने का गर्भ हो जाने पर स्तनों का आकार भी बढ़ने लगता है; किन्तु बहुत-सी स्त्रियों के स्तन में चार-पाँच महीने तक कोई परिवर्त्तन ही नहीं होता। तीसरे महीने से गर्भिणी का पेट भी बढ़ने लगता है और नाभि का गढ़ा धीरे-धीरे भरने लगता है। छः महीने तक गर्भ नाभि के नीचे रहता है, बाद सातवें महीने से वह ऊपर चढ़ने लगता है। कभी-कभी रोग से भी पेट बढ़ जाता है। इसकी खास पहचान यह है कि गर्भ से बढ़ने वाला पेट बीच में ऊपर को कुछ उठा हुआ रहता है और रोग से बढ़ा हुआ पेट सर्वत्र समान रूप से बढ़ता है। चार-पाँच महीना बीत जाने पर तो गर्भ की पहचान और भी अधिक स्पष्टता से की जा सकती है। क्योंकि फिर तो पेट में बालक का फड़कना मालूम होने लगता है। किन्तु कई स्त्रियों के पेट में छः सात

महीने तक किसी प्रकार की फड़कन नहीं प्रतीत होती । भूख-प्यास की अवस्था में गर्भ अधिक डोलता है ।

—o—

## गर्भस्थ पुत्र पुत्री का ज्ञान

पेट में बालक पहले ही महीने में गोल जान पड़ता है। दाहिनी आँख कुछ बड़ी सी दीखती है। गर्भ में लड़का रहने पर दाहिनी जंघा भी मोटी और भारी मालूम होती है। उसमें कुछ दर्द भी हुआ करती है। दाहिने स्तन में दूध पहले उतरता है, मुख का रंग अच्छा रहता है। स्वप्न में पुलिंग वस्तुएँ ही दिखलायी पड़ती हैं, यदि मनुष्य का स्वप्न भी होता है तो पुरुष का ही। यदि गर्भवती के दूध में जूँ अथवा चींटी डालने पर वे जाती रहें और चलती फिरती नजर आवें तो समझना चाहिए कि पुत्र उत्पन्न होगा और यदि मर जाय तो कन्या की उत्पत्ति होगी। लड़का दाहिनी कोख में रहता है। गर्भ में लड़का रहने पर स्त्री जो-कुछ भी कार्य करेगी, वह दाहिने अंग से ही प्रारम्भ करके। यदि चलेगी तो पहले दाहिना पैर उठेगा, उठेगी तो दाहिना हाथ टेक कर इत्यादि ।

यदि पेट में कन्या होती है तो स्त्री का मस्तक भारी रहता है, तथा स्तनों का दूध पतला होता है। गर्भिणी के मुख का रङ्ग पीला रहता है। इसके सिवा पुत्र के लक्षणों के ठीक विपरीत सब लक्षण दिखलायी पड़ते हैं ।

यदि गर्भवती स्त्री को राजा का दर्शन करने की इच्छा निरन्तर हुआ करे तो समझना चाहिए कि महा भाग्यशाली और धनी सन्तान पैदा होगी। भूषण तथा रेशमी वस्त्र धारण करने की इच्छा होने पर सुन्दर और शौकीन तबीयत की सन्तान पैदा होती है। देव-मन्दिरों में जाने, महात्माओं के दर्शन करने तथा धार्मिक कथायें सुनने की इच्छा होने पर शान्त स्वभाव की और धर्मपरायण सन्तान पैदा होती है। साँप, सिंह आदि हिंसक जानवरों के देखने की इच्छा होने पर हिंसक सन्तान उत्पन्न होती है। किन्तु इसमें कभी-कभी सन्देह भी रह जाता है, पर पाँचवें महीने में गर्भवती की जो इच्छा होती है, उससे अच्छी-बुरी सन्तान भलीभाँति जानी जाती है और वह जानकारी कभी भी झूठी नहीं होती—सदा सत्य उतरती है। इसका कारण यह है कि इसी पाँचवें महीने में गर्भस्थ सन्तान में जीव का प्रवेश होता है।

पुत्र-कन्या पहचानने की एक और रीति है, इसकी सैकड़ों बार परीक्षा ली गयी है, एक बार भी झूठी नहीं हुई। वह यह है कि यदि किसी स्त्री के गर्भ का बालक जानना हो तो भँड़भाँड़ नाम की बूटी को सन्ध्या समय स्नान करा रक्षा लपेट शान्त-चित्त हो कह आवे कि "हे प्रभो, मैं इसे कल यह जानने के लिए उखाड़ूंगा कि अमुक स्त्री के गर्भ में पुत्र है या कन्या।" यह कहकर चला आवे। दूसरे दिन स्नानादि से निवृत्त होकर जाय और उसे उखाड़ ले। ( उसके काँटे अधिक कड़े हों तो कई तह करके कपड़े

लगाकर उखाड़ ले ) यदि सीधी एक जड़ निकले तो पुत्र और दो जड़ निकलने पर कन्या जाने। किन्तु यदि वह जड़ ऊपर से ही टूट जाय तो समझना चाहिए कि सन्तान पैदा होकर मर जायगी या जियेगी भी तो बहुत ही कम दिनों तक। प्रसव वेदना के समय इसकी जड़ कपड़े में लपेट कर स्त्री की कमर में बाँध देने से तत्क्षण प्रसव हो जाता है, जरा भी देर नहीं लगती। किन्तु यह जड़ी तभी बाँधनी चाहिए जब यह अच्छी तरह से मालूम हो जाय कि अब प्रसव होने में कुछ ही समय की देर है।

—:o:—

# गर्भरक्षा के उपाय

गर्भ रक्षा के उपाय बतलाने के पहले यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि बालक गर्भ में किस प्रकार रहता और क्रमशः बढ़ता है। गर्भाधान से चार महीने तक गर्भाशय का मुख बन्द रहता है। ज्यों ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, त्यों त्यों गर्भाशय भी बढ़ता जाता है और अंडाकार होकर नीचे को खिसकता आता है। छठे महीने गर्भाशय की नार बहुत छोटी और चिपटी होकर फैल जाती है। आठवें महीने में बिलकुल चिपटी हो जाती है। कभी तो सातवें महीने से ही और कभी नव महीने से गर्भाशय का मुख खुलने लगता है और बालक उत्पन्न होने के समय एकदम खुल जाता है।

गर्भाधान हो जाने पर पहले महीने में वीर्य जमता है। दूसरे महीने में उस पर पतली झिल्ली चढ़ती है। तीसरे महीने में शरीर का आकार बनने लगता है। चौथे में पूरा शरीर बन जाता है। पाँचवें महीने में हृदय और जीव पड़ता है। छठे और सातवें महीने में बालक का शरीर पुष्ट होता है। गर्भस्थ बालक पेट में उकरू बैठा हुआ दोनों हाथों को पैरों से मिलाये रहता है। उसके दोनों घुटने छाती और पेट से लगे होते हैं और उसका माथा उन्हीं घुटनों के बीच में रहता है। यदि पुत्री रहती है, तब तो उसका मुख माँ की पीठ की ओर होता है और यदि पुत्र होता है तो उसका मुख माँ के पेट की ओर रहता है। गर्भस्थ बालक अपने हाथों की अँगुलियों से आँख, कान, नाक और मुख मूँदे रहता है। इसका कारण यह है कि जिन सात झिल्लियों के भीतर गर्भाशय में बालक रहता है, उसमें एक प्रकार का ऐसा पानी होता है कि यदि वह बालक की आँख से छू जाय तो सूर, कान में चला जाय तो बहिरा, मुख में जाय तो गूँगा, पेट में जाय तो मुर्दा और मस्तक में जाय तो वह पागल हो जाता है। इसलिए दयालु परमात्मा ने अपने सब छिद्र मूँद रखने की शक्ति बालक को प्रदान की है।

बच्चे का कौन-सा अङ्ग पहले बनता है इस विषय में विद्वानों का कथन भिन्न-भिन्न प्रकार का है। कोई तो कहता है कि शारीरिक इन्द्रियों का मूल स्थान मस्तक है और इसकी रचना पहले होती है; कोई कहता है, हृदय, बुद्धि और मन है, इसलिए सबसे

पहले हृदय की रचना होती है। कोई कहता है कि बच्चे का पोषण नाभि द्वारा होता है, इस लिए पहले नाभि बनती है। भारतीय चिकित्सकों के आचार्य धन्वन्तरिजी का कहना है कि बालक के अंग-प्रत्यंग एक साथ ही उत्पन्न होते हैं; किन्तु अधिक सूक्ष्म होने के कारण लक्ष्य में आना कठिन है। समय पाकर वे यथाक्रम प्रकट होते हैं। यदि विचार कर देखा जाय तो यही सिद्धान्त युक्ति-संगत भी मालूम होता है। बड़ी खोज के बाद अर्वाचीन विद्वानों ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की है। गर्भ स्थित होने के समय से प्रायः नौ महीने में गर्भस्थ बालक की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों तथा अवयवों की रचना हो चुकती है। इन नौ महीनों को इस विषय के विद्वानों ने प्राकृतिक नियमानुसार दो भागों में विभक्त किया है। पहले भाग में छः मास रक्खा है और दूसरे में तीन मास। पहले भाग में बच्चे के प्रायः सारे शारीरिक अवयव बनते हैं और दूसरे भाग में मानसिक शक्तियों का विकास होता है। इस लिए पहले छः महीने में बच्चे की शारीरिक रचना में और पिछले तीन महीने में उसकी मानसिक शक्तियों में माता अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्त्तन कर सकती है।

तीसरे सप्ताह में गर्भ का आकार बाजरे के दाने के बराबर हो जाता है। महीना समाप्त होते-होते सिर तथा पैर का आकार मालूम होने लगता है। लम्बाई भी उस समय चौथाई इञ्च तक हो जाती है। डेढ़ महीना बीत जाने पर उसका आकार ऐसा हो

जाता है कि जिसे देखने पर यह मालूम किया जा सकता है कि यह मनुष्य जाति का बच्चा है । इस समय शरीर की अपेक्षा मस्तक बड़ा होता है। हाथ-पैर टूठे से रहते हैं, यानी उनमें हथेली और तलवे नहीं रहते। आँख, कान, नाक और मुख की जगह सिर्फ काले दाग मालूम होते हैं। दूसरे महीने के अन्त में प्रायः सारे अवयव ( अंग ) साफ दिखायी पड़ने लगते हैं। लम्बाई एक इंच तक हो जाती है ।

तीसरे महीने में आँख की पलकों का आकार बन जाता है। बल्कि यों कहना चाहिए कि एक प्रकार से वे तैयार ही हो जाती हैं। इस समय मुख बन्द रहता है। इसी महीने में स्त्री पुरुष में भेद बतलाने वाले अंगों की रचना होती है। इस समय तक लंबाई प्रायः ३॥ इञ्च तक हो गयी रहती है । चौथे महीने में मस्तक और कलेजे की अपेक्षा दूसरे अवयव अधिक बढ़ते हैं। इस महीने में बच्चा कुछ कुछ हिलना भी शुरू कर देता है। साढ़े चार महीना होते होते लम्बाई भी ५-६ इञ्च तक हो जाती है। पाँचवें महीने से अन्त तक पुट्ठे वगैरह ठीक ठीक बन जाते हैं। इस समय तक शरीर की अपेक्षा सिर ही बड़ा रहता है और उस पर कोमल सफेद ( चाँदी के रंग के ) बाल निकल आते हैं। लम्बाई ७-८ इञ्च तक और वजन ६ से ८ औंस तक हो जाता है । छठे महीने में चमड़े की दोनों परतें दिखायी पड़ने लगती हैं, किन्तु वे बहुत ही नाजुक और रक्तवर्ण होती हैं। लम्बाई १० इञ्च और वजन लगभग ३॥

पाव हो जाता है। नाखून निकल आते हैं। यदि इस समय बच्चा पैदा हो जाय तो वह कुछ देर तक अवश्य साँस ले सकता है।

सातवें महीने में बच्चे के सब अंग बन चुकते हैं। इस समय बच्चे का सिर नीचे और पैर ऊपर हो जाता है। आँख की पलकें खुलने योग्य होती हैं। लम्बाई लगभग १३-१४ इंच और वजन सवा पाँच पाव तक हो जाता है। आठवें महीने में बच्चे के प्रत्येक अंग की समान रूप से वृद्धि होती है। लम्बाई १६ इञ्च तक और वजन पौने दो सेर तक हो गया रहता है। इस महीने में ही यदि बच्चा पैदा हो जाय तो वह जीवित रह सकता है। हाँ थोड़े दिनों तक कमजोर अवश्य रहेगा। नवें महीने में लम्बाई १८-२० इञ्च और वजन तीन साढ़े तीन सेर तक हो जाता है।

कभी-कभी बारह महीने तक भी बच्चे गर्भ में रह जाते हैं, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। वैद्यक ग्रन्थों में बारह मास तक गर्भ रह जाने का उल्लेख पाया जाता है। ग्यारह महीने के बाद बच्चा पैदा होते देखा भी गया है। इस लिए इसकी सत्यता में सन्देह नहीं है। अस्तु; उत्तम सन्तानोत्पत्ति विषयक नियमों के साथ गर्भ की वृद्धि का क्रम जानना विशेष प्रयोजनीय है, इसीलिए उसका संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया। अब आगे यह दिखलाया जायगा कि गर्भ की रक्षा किन किन उपायों से हो सकती है, तथा कोई उपद्रव खड़ा होने पर किस महीने में कौन-सा यत्न करना श्रेयस्कर है।

गर्भिणी स्त्री को कभी दौड़ना, कूदना, या उछलना नहीं चाहिए। धमक कर सीढ़ी उतरना या असावधानी से सीढ़ी पर चढ़ना भी गर्भ के लिए हानिकारक है। इन कामों से गर्भ के गिर जाने या टेढ़ा हो जाने की सम्भावना रहती है। जिससे गर्भ तो नष्ट हो ही जाता है, साथ ही स्त्री को भी महान पीड़ा भोगनी पड़ती है। कभी कभी तो इस पीड़ा से स्त्री मर भी जाती है। भयावह चीजों से गर्भिणी स्त्री को बचाना चाहिए। उसे दूसरी स्त्री का प्रसव नहीं देखना चाहिए। गर्भिणी के लिए जल में तैरना, अधिक परिश्रम और झटके का काम करना, वृक्ष के नीचे अधिक ठहरना, अधिक सोना, अधिक जागना, दूर की वस्तु को नजर पर जोर देकर देखना, गर्म चीजें ( जैसे लाल मिर्च आदि ) खाना, उपवास-व्रत करना, अधिक भोजन करना, जबर्दस्ती भूख को रोक रखना, सूखी चीजें ( जैसे भूना हुआ चना आदि ) खाना पुरुष के साथ सोना, मल-मूत्र के वेग को रोकना, कुचिष्टता ( मैले-पन ) से रहना, अधिक जोर से बोलना, सिर में अधिक तेल लगाना, क्रोध-शोक करना आदि बड़ा ही हानिकारक है। इसलिए इन कामों से गर्भिणी स्त्री को सदा बचना चाहिए। गर्भिणी स्त्री को अधिक पौष्टिक भोजन भी नहीं करना चाहिए; क्योंकि पौष्टिक भोजन करने से बच्चा पैदा होते समय बड़ा कष्ट होता है।

दाल, भात, रोटी, तरकारी, दूध थोड़ा घी आदि खाना गर्भ-वती के लिए विशेष लाभदायक है। मक्खन का सेवन करना भी

बड़ा ही उपयोगी है। खासकर दूध का सेवन तो गर्भिणी को अवश्य करना चाहिए। हाँ दूध की शुद्धता पर ध्यान रखना जरूरी है। क्योंकि दूध खराब होने से लाभ के बदले हानि करेगा। बीमार पशु का दूध भूलकर भी न पीना चाहिए। थोड़ा बहुत फलों का प्रतिदिन सेवन करना इस समय के लिए अमृत-तुल्य है। हमेशा मुख साफ रखना चाहिए। स्नान करते समय अंग-प्रत्यंग को खूब अच्छी तरह से धोकर स्वच्छ कर देना उचित है। आजकल बहुधा स्त्रियाँ एक-दो लोटे पानी से ही नहा-धो लेती हैं। यह बात बहुत बुरी है। केवल शरीर भिगो देने का नाम स्नान नहीं है; बल्कि स्नान का मतलब है, समूचे शरीर को मल-रहित करके शुद्ध कर डालना। प्रचुर जल से मल-मल कर स्नान करना प्रत्येक मनुष्य के लिए बड़ा ही लाभदायक है। इससे तन्दुरुस्ती में जल्द कोई खराबी पैदा नहीं होती। गर्भवती के लिए प्रतिदिन थोड़ा परिश्रम अवश्य करना चाहिए। गृहस्थी का काम-काज अपने अनुकूल देखकर करने से परिश्रम हो जाता है। मिहनत करने से स्त्री का शरीर फुर्तीला रहता है, भोजन ठीक से पच जाता है, नींद अच्छी तरह आती है तथा प्रसव यानी बच्चा पैदा होते समय कम कष्ट होता है।

सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण लगने पर गर्भिणी को चाहिए कि ग्रहण शुरू होने से घण्टा दो घण्टा पहले ही किसी कोठरी में जा बैठे और जब तक मोक्ष न हो जाय, एकान्त में बैठी उपदेशप्रद पुस्तक या महात्मा पुरुषों की जीवनी अथवा इन्हीं विषयों का

चिन्तन करती रहे—ग्रहण को न देखे और न उसकी छाया ही अपने ऊपर पड़ने दे। गर्मी-सर्दी से हमेशा बचकर रहना जरूरी है। लाल रंग का वस्त्र नहीं पहनना चाहिए। उच्च विचार रखना, प्रसन्नचित्त रहना, पवित्रता रखना, हृदय में सब पर दया और प्रेम रखना, गर्भ के बच्चे पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव डालता है। इस लिए इनको गर्भिणी स्त्री कभी न त्यागे।

यहाँ पर दो तीन बातों का उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। यद्यपि वे कोई विशेष आवश्यक तो नहीं हैं, तथापि उनकी जानकारी रखने से सम्भव है मनुष्य को समय समय पर कुछ सहायता ही मिले। पहली बात तो यह है सातवें महीने में बच्चे का पैर ऊपर और सिर नीचे क्यों हो जाता है। बात यह है कि छः महीने तक तो उसके अंगों की रचना होती है। बाद मानसिक शक्तियों का विकाश होता है। यह मानी हुई बात है कि भारी चीज हमेशा नीचे की ओर रहती है। इस लिए बच्चे के सिर का नीचे की ओर रहना स्वाभाविक है। ईश्वरीय लीला बड़ी विचित्र और रहस्यमय है, इस लिए यह कहना कठिन है कि उक्त कार्य का केवल यही कारण है। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि और और कारणों में सम्भव है कि एक कारण यह भी हो। दूसरी बात यह है कि गर्भ में बच्चे रोते क्यों नहीं ? विद्वानों का कथन है कि गर्भ में बच्चे का मुख झिल्ली ( जरायु ) से ढका हुआ रहता है और कण्ठ-द्वार भी कफ से घिरा रहता है, इसी से वह नहीं रोता। तीसरी बात

यह है कि माता के पेट में बच्चा मल-मूत्र क्यों नहीं करता ? इसका कारण यह है कि बच्चे का पोषण नाला द्वारा होता है। इसी के द्वारा माता के शरीर का रक्त बच्चे के शरीर में पहुँचता है और उसी से उसकी वृद्धि होती है। यह नाला बच्चे की नाभि में लगा रहता है। अब यह बात सहज ही में समझी जा सकती है कि मल-रहित होकर बना हुआ रक्त ही जब बच्चे के शरीर में जाता है, तब मल-मूत्र तैयार ही कहाँ से हो सकता है।

गर्भवती स्त्री जो काम करती है, बच्चे का भी वही काम अपने आप होता जाता है। गर्भिणी के सोने पर पेट का बच्चा भी निद्रित हो जाता है; उसके जागते ही बच्चा भी जाग पड़ता है। इसी प्रकार माता के साँस में खींची हुई वायु से बच्चा साँस लेता और माता के साँस छोड़ने पर वह भी साँस छोड़ देता है। कहने का तात्पर्य यह कि जो-कुछ माता करती है, उसका प्रभाव बच्चे पर किस प्रकार पड़ता है, इसका ज्ञान प्राप्त करके गर्भिणी को सदा-सर्वदा सावधान रहना चाहिए।

यदि गर्भिणी स्त्री प्रत्येक वस्तु की जानकारी रक्खे और हर काम में सावधानी रक्खे तो किसी प्रकार का उपद्रव नहीं हो सकता। सन्तान भी उत्तम, दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट हो सकती है तथा उसका जीवन भी सुखमय बीत सकता है। मूर्खतापूर्ण कार्य करने से ही गर्भस्राव और गर्भपात हो जाता है, मरी सन्तान पैदा होती है तथा बच्चे निर्बल, रोगग्रस्त और अल्पायु होते हैं।

चार महीने के भीतर जो गर्भ नष्ट हो जाता है, उसे तो गर्भ-स्राव कहते हैं और उसके बाद नष्ट होने वाले को गर्भपात। इसके लक्षण ये हैं—

१—यदि गर्भ नष्ट होने को होता है तो अचानक शक्ति क्षीण हो जाती है, चित्त में व्याकुलता छा जाती है और बेहद ओक आती है।

२—जी डूबा-सा जाता है। यह होता है कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। पता नहीं चलता कि ऐसा क्यों हो रहा है।

३—खड़ी होने से सिर घूमने लगता है, चक्कर आ जाता है।

४—पेट के ऊपर और दोनों जंघों में रह रह कर वेदना होती है। मूत्रस्थान से तरबूज का सा पानी झरने लगता है।

५—यदि कमर, जंघा और गुदा में अधिक पीड़ा हो, शूल हो और रुधिर या रुधिर की डली बाहर आने लगे तो समझना चाहिए कि गर्भ, गर्भाशय से अलग हो गया है।

यदि गर्भस्राव के लक्षण दिखलायी पड़ने लगें और पूरा निश्चय हो जाय कि गर्भस्राव होनेवाला है, तब उसके आरम्भ में ही यानी पीड़ा ही हो, रुधिर निकलना शुरू न हुआ हो—यह उपचार करना हितकर है—

१—मुलहठी, देवदारू और दुद्धी इन चीजों के साथ दूध का सेवन करे।

२—शतावर और दुद्धी का काढ़ा पीवे।

इस प्रकार रुकावट हो जाने पर गो-दुग्ध में गूलर के पके फल का सेवन शुरू कर दे गर्भवती को ठण्ढे स्थान में सुला दे और ठंढा पानी पिलावे। ठण्ढे पानी से प्रसव-द्वार को धो डाले। यदि रुधिर का निकलना शुरू हो गया हो तो दूध के साथ कसेरू या सिंघाड़ा अथवा कमल औटाकर ठण्ढा हो जाने पर पिलावे। अथवा दो तीन चावल भर अफीम का सत किसी सूखी वस्तु के साथ खिला देना चाहिए।

यदि पहले ही पहल गर्भाधान हुआ रहता है तो गर्भस्राव या गर्भपात छः सात घण्टों में ही हो जाता है, देर नहीं लगती। किन्तु यदि स्त्री दूसरी या तीसरी बार गर्भ धारण किये रहती है तो दो तीन दिन लग जाते हैं। जिस स्त्री का गर्भ नष्ट हो जाय, उसे कम से कम पाँच छः महीने तक पति के पास नहीं जाना चाहिए। क्योंकि इसके भीतर गर्भ रह जाने से उसके भी नष्ट हो जाने की आशंका रहती है। जिस स्त्री का गर्भ बराबर नष्ट होता ही जाय, उसे गर्भ को रक्षा के लिए गर्भिणी होने पर खूब सावधानी से रहकर इस प्रकार दवा का सेवन करना चाहिए।

पहले महीने में मुलहठी, दुद्धी और देवदारु की पोटली बाँधकर दूध में डाल दे। जब दूध पीने के लायक पक जाय, तब उसे आग के ऊपर से उतार ले और पोटली को निकाल कर फेंक दे। बाद उस दूध में मीठा डालकर पिया करे।

दूसरे महीने में करंजवा, काला तिल, मँजीठ और शतावर की

पोटली डालकर ऊपर की रीति से दुध में पकाकर पिये।

तीसरे महाने में दुद्धी, कमलगट्टा, सखिन और साँठी के चावल की खीर खाया करे।

चौथे महीने में कटेरी, कम्भारी, दूधवाले वृक्ष की कोंपल दूध में औटाकर पिये तथा घी या दही से भात खावे।

पाँचवें महीने में दुध भात खाना बड़ा ही उपयोगी है।

छठे महीने में पृष्ठपर्णी, सहिजन, गोखरू और गिलोय को दुध में औटाकर उसे पिये। घी मिलाकर भात खाय दुध की लस्सी का सेवन करे। गोखरू को घी में पकाकर खाय।

सातवें महीने में सिंघाड़ा, मुनक्का, केसर, मुलहठी और चीनी को दुध में औटाकर पिये।

आठवें महीने में कैथ, कटेरी, बेल, परवल और ईख, इन सबकी जड़ को दुध में पकाकर पीना चाहिए। या दूध में रेंडी का तेल और मीठा मिलाकर कभी कभी पी लेना उचित है।

नवें महीने में मुलहठी और देवदारु दुध में पकाकर सेवन करना हितकर है।

दसवें महीने में सोंठ और दुद्धी को दुध में पकाकर पीना चाहिए।

मुलहठी, साल वृक्ष के बीज, देवदारु, नोनिया साग, काले तिल, राल, शतावर, पीपल, कमल की जड़, जवासा, गोरीसर बायसुरई, दोनों कटेरी, सिंघाड़ा, कसेरू, दाख और मिश्री तीन तीन माशे ले और सात महीने तक प्रति मास में सात सात दिन

सेवन करे तो कभी भी गर्भ नष्ट न हो। यदि गर्भिणी की कोष्ठ शुद्धि न रहती हो तो थोड़ा-सा शुद्ध किया हुआ रेंडी का तेल ( डाक्टरी दवाखानों में मिलता है ) चीनी मिले हुए दूध में मिला कर कभी कभी पी लेना चाहिए। यह विरेचन बड़ा ही लाभदायक है, इसी से गर्भिणी स्त्री के लिए भी लिखा जा रहा है। इसके सिवा दूसरी विरेचन की दवा कभी नहीं खाना चाहिए। क्योंकि गर्भिणी स्त्री के लिए वमन और विरेचन निषेध है किन्तु ऊपर की दवा लेने में कोई हानि नहीं है। इस लिए इसका सेवन करके कोष्ठ-शुद्धि करने में गर्भिणी स्त्री को किसी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

अब इसके बाद हम यह बतलाना चाहते हैं कि यदि गर्भावस्था में अन्यान्य उपद्रव खड़े हों तो उनके लिए क्या करना उचित है।

## पहला महीना

यदि पहले महीने में किसी प्रकार का कष्ट प्रतीत हो तो नीलोफर, कमल ककड़ी, सिंघाड़ा और कसेरू को ठण्ढे पानी में पीसकर गाय के दूध में पीना चाहिए। अथवा मँजीठ, लालचन्दन, कूट और तगर को बराबर बराबर लेकर दूध में पीसकर दूध ही में पीना चाहिए।

## दूसरा महीना

तगर, केसर, बेलगिरि और कपूर को समान मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीसे और उसी के दूध में छानकर पीये। या

सालम मिश्री, नीलोफर, कसेरू, अदरख, सम मात्रा में लेकर जल में पोस गाय के दुध में छानकर पीना चाहिए । अथवा सिंघाड़ा, कसेरू, सफेद जीरा, बेलपत्र और छुहाड़ा सम मात्रा में ले, पानी में पीसकर दुध में पिये ।

## तीसरा महीना

पदमाख, सफेद चन्दन, खस और तगर को सम मात्रा में पानी से पीसे और बकरी के दुध में छानकर पी ले । अथवा खस, सफेद चन्दन, नागरमोथा, पदमाख, कमल ककड़ी को पानी में पीसकर गाय के दुध के साथ पीना चाहिए ।

## चौथा महीना

सिंघाड़ा, केले का पत्ता, दाख, अनार की कली और केले के कन्द को पानी में पीसकर बकरी के दुध में पिये । या खस, कमल-ककड़ी और केले की जड़ को पानी में पीस बकरी के दूध में पीने से कष्ट दूर हो जाता है ।

## पाँचवाँ महीना

नीलोफर, कमलककड़ी, कमलगट्टा, और नागकेशर को बकरी के दूध में पीस छानकर पीना चाहिए । या नीलकमल की जड़, काकमाची, कमलककड़ी को पानी में पीसकर दुध में पिये ।

## छठा महीना

बच, इलायची, मुनक्का, नीलोफर और नागकेसर को दूध में पीस छानकर पीना चाहिए । या पीपल, पीपरामूल, कमल का

फूल और कमल की केशर को पानी में पीस, बकरी के दूध में पीना उचित और लाभदायक है ।

## सातवाँ महीना

सातवें महीने में यदि किसी तरह की पीड़ा हो तो कैथ की गिरि, मूँगा की शाख, धान की खील और इन्द्र जौ को सम मात्रा में लेकर दूध में पीस छानकर पीना चाहिए। अथवा कैथ वृक्ष के फल की गिरी, सालम मिश्री, धान की खील और इन्द्र जौ को बराबर बराबर लेकर जल में पीस, गाय के दूध में छानकर पीना चाहिए। या पीपल की जड़, बड़ की जड़, जल भंगरा, सूर्यमुखी की जड़ और साँठी की जड़ तथा लाल चन्दन को सम मात्रा में लेकर बकरी के दूध में पीसकर उसी के दूध में पीना भी विशेष लाभ पहुँचाता है ।

## आठवाँ महीना

पद्माख, गजपीपल, कमल का फूल, कमलगट्टे की गिरी और धनियाँ इन चीजों को सम मात्रा में लेकर पानी में पीस डालना चाहिए। बाद उसे गाय के दूध में छानकर पीने से सब तरह के उपद्रव शान्त हो जाते हैं ।

## नवाँ महीना

रेंड़ की जड़, काकोली, पलासपापड़ा, इनको सम मात्रा में ले कूट-छानकर जल के साथ पीने से तत्क्षण आराम हो जाता है। या सोंठ, ढाक के पत्ते, इलायची, वायविडंग, सफेद जीरा और

गजपीपल, इनको बराबर बराबर लेकर बकरी के दूध में पीस छान कर पीने से भी कष्ट दूर हो जाता है और गर्भ नष्ट नहीं होता ।

—:०:—

# गर्भिणी की इच्छा पूर्ति

गर्भिणी स्त्री को कभी-कभी कुछ ऐसी चीज खाने की इच्छा होती है, जिसे वह सुगमता से नहीं पाती । ऐसी दशा में उसकी जिस चीज पर इच्छा हो, वह चीज उसे अवश्य खिला देनी चाहिए। कितनी ही स्त्रियाँ मूर्खता के कारण अपनी इच्छा को प्रकट नहीं करतीं और लज्जा के कारण उसे दबा बैठती हैं, किन्तु यह बहुत बुरी बात है। इच्छा को रोकने से गर्भस्थ बालक पर बड़ा ही बुरा असर पड़ता है । ऐसी स्त्रियों की सन्तान बहुत असन्तोषी होती है । इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि गर्भिणी स्त्री को दो हृदय होता है और जो इच्छा उत्पन्न होती है, वह एक प्रकार से उसके भीतर की माँग होती है। इसी से गर्भिणी स्त्री को दौहृदिनी कहा गया है ।

—०—

# प्रसवकाल

बच्चा पैदा होने के समय को प्रसवकाल कहते हैं। जिस घर में बच्चा पैदा होता है, उसे 'प्रसुति गृह' या ग्रामीण भाषा में सौर कहते हैं और जब बच्चा पैदा हो जाता है, तब उस गर्भिणी स्त्री का नाम प्रसूता हो जाता है। इस प्रकरण में प्रसवकाल के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक है। क्योंकि इस समय स्त्रियों का नया जन्म होता है। जरा भी गलती करने से इस समय अनेक तरह के रोग, जैसे प्रसूत का दुःख, योनि का बाहर निकल कर बढ़ आना आदि—हो जाते हैं। इस लिए जब देखे कि गर्भ के दिन पूरे हो गये, तब किसी चतुर दाई को पहले ही से बुलाकर घर में रख ले। यदि कोई दाई न मिले तो घर की स्त्रियों को ही खूब सावधानी से इस काम को करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

पहले कहा जा चुका है कि गर्भ में बालक प्रायः नौ महीने के लगभग रहता है। कभी नौ महीने में कुछ दिन पहले ही वह पैदा हो जाता है, और कभी दस-पाँच दिन बाद। जब प्रसवकाल निकट आ जाय, तब गर्भिणी का प्रसुतिका-गृह निश्चय कर लेना चाहिए। वह घर पवनीक यानी हवादार हो तथा दुर्गन्ध-रहित हो। प्रकाश भी उस घर में अच्छी तरह होना जरूरी है। उस कमरे में सील भी न होनी चाहिए। आजकल सूतिका-गृह बहुधा

ऐसा चुना जाता है, जो घर मकान भर में सब कमरों से रद्दी और खराब होता है। किन्तु ऐसा करना बहुत ही बुरा है। वाग्भट्टजी ने लिखा है:—

**प्राक्चैव नवमात्मास्तात् सूतिका गृहश्रामयेत्।**
**दशे प्रशस्ते सम्भारै सम्पन्नं साधकेऽहति ॥**

अर्थात—नवाँ महीना शुरु होते ही शुभ दिन देखकर अच्छे स्थान में बने हुए स्थान को सूतिका-गृह चुनना चाहिये। उसमें सारी आवश्यकीय वस्तुएँ मोजूद रहना जरूरी है। ऐसे ही मकान में गर्भिणी स्त्री को प्रसव करना चाहिए।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि सूतिका-गृह कैसा होना चाहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि इस घर को साफ-सुथरा और हवादार रहना बहुत जरूरी है। इसके सिवा यह घर कम से कम ८—९ हाथ लम्बा और ५—७ हाथ चौड़ा होना चाहिए। इस घर में बहुत तेज हवा आने की आवश्यकता तो नहीं है पर मन्द मन्द हवा अवश्य आनी चाहिए। घर में ठण्ड बिलकुल न होनी चाहिए यदि जाड़े का दिन हो तो इस घर में बिना धुएँ की आग हरवक्त दहकती रहनी चाहिए। सुबह-शाम कमरे के दरवाजों को बन्द कर देना उचित है; इससे कमरे में शीत का प्रवेश नहीं हो पाता। बाकी समय में जाड़े का दिन होते हुए भी दरवाजों को खुला रक्खे। गर्मी के दिनों में दरवाजों को बराबर खुला रखना उचित है। वर्षा में यदि घटा घिरी हुई हो तो इन्हें बन्द करके थोड़ा-सा खुला रहने

दे। सौर में सर्दी लगने से मसान आदि रोग हो जाते हैं। घर में दीपक ऐसे स्थान पर रखना चाहिए जो जच्चा के सम्मुख न हो। सिरहाने की ओर रखना सबसे उत्तम है। अच्छा हो यदि उस घर में मिट्टी के तेल का दीपक न जलाया जाय। कारण यह कि इस तेल में धुआँ होता है और वह धुआँ जीवन के लिए हानिकारक है।

सौर के घर में बहुत-सी स्त्रियाँ न रहने पावें। स्त्री के पति को तो उस समय वहाँ रहना ही नहीं चाहिए। घर में ऐसी स्त्रियाँ उस समय रहें जो प्रसूता की प्रेमपात्री हों और प्रिय वचन बोलने वाली हों—साथ ही इस विषय की जानकार हों। उस समय भय-युक्त बात भूलकर भी मुख से नहीं निकालना चाहिए। अधिक से अधिक चार स्त्रियाँ तक प्रसव के समय सूतिका-गृह में रह सकती हैं। क्यों कि इससे अधिक स्त्रियों के रहने से एक शोर-गुल होता है दूसरे घर की वायु भी खराब हो जाती है।

इस समय वेदना दो तरह की होती है ; एक तो प्रसव की वेदना और दूसरी किसी अन्य कारण से। प्रसव वेदना के चिन्ह ये हैं: —कोख में शिथिलता आ जाती हैं, हृदय बन्धन-रहित जान पड़ने लगता है, दोनों जाँघों में पीड़ा होने लगती है, कमर या पीठ के चारों ओर दर्द होती है, प्रसव द्वार से कफ के समान पानी निकलने लगता है तथा बार बार मूत्र त्याग करने की इच्छा होती है, पर मूत्र उतरता नहीं। इसके अतिरिक्त प्रसव वेदना रुक रुक कर होती है। प्रसव वेदना पहले धीरे धीरे होती है और फिर कुछ

समय के लिए रुक जाती है। बाद हलकी सी पीड़ा होकर २५-३० मिनट तक रहती है इसके बाद अधिक देर तक ठहरनेवाली तीव्र वेदना आरम्भ हो जाती है।

यदि गर्भिणी स्त्री खाने-पीने में व्यतिक्रम न करे, कोष्ठबुद्धि पर हमेशा ध्यान रक्खे और अपनी शक्ति के अनुसार बराबर परिश्रम करती जाय—आरामतलब न हो, तो उसे अधिक प्रसव वेदना नहीं हो सकती। यही कारण है कि मजदूरी पेशा करनेवाली स्त्रियों को प्रसव की पीड़ा बहुत ही कम होती है। अकसर देखने में आया है कि गर्भिणी मजदूरिन पूरा गर्भ हो जाने पर भी काम किया करती है और जब उसे प्रसव के चिह्न दिखलायी पड़ते हैं तब वह काम छोड़कर चली जाती है और दो तीन घण्टे में ही बच्चा पैदा हो जाता है। प्रसव-वेदना एक रोग है। जिन स्त्रियों में यह रोग नहीं होता, उन्हें प्रसव-वेदना नहीं के बराबर होती है। चंगड़ों की स्त्रियाँ चली जाती हैं और मार्ग में ही प्रसव कर लेती हैं। उन्हें उस काम के लिए दस मिनट से अधिक नहीं ठहरना पड़ता। इसी प्रकार अफ्रिका की जंगली जातियाँ, जो हमेशा नंगी रहा करती हैं और जिन्हें असभ्य कहा जाता है, बिना किसी विशेष कष्ट के बड़ी आसानी से प्रसव कर लेती हैं। इसका कारण विद्वानों ने यही बतलाया है कि वे काम-काज किया करती हैं और गर्भाधान हो जाने के बाद मैथुन एक बार भी नहीं करती।

प्रसव-वेदना के समय मल-मूत्र के वेग को कभी भी न रोकना

चाहिए। यदि इनकी रुकावट हो गयी हो तो फौरन यत्न करना उचित है। यदि इस समय भूख लगे तो गाय का गरम दूध थोड़ा कुनकुना रहने पर पिलाना चाहिए। प्यास लगने पर ठण्ढा पानी देने में कोई हानि नहीं है। कुछ लोगों का कहना है कि प्रसव का समय निकट आ जाने पर गर्भिणी को मल तो त्याग आने दे पर पेशाब लगने पर मूत्रत्याग न करावे—क्योंकि मूत्र को रोकने से प्रसव में बड़ी सहायता मिलती है। किन्तु हमारे खयाल से मूत्र का वेग रोकना भी ठीक नहीं है।

जब लक्षणों से यह निश्चय हो जाय कि वेदना प्रसव की ही है, तब उसको खूब कसी हुई लम्बी-चौड़ी चारपाई पर सुला देना चाहिए। यदि तख्ता हो तो और भी अच्छा। गर्भिणी को भूमि पर कभी न लेटना चाहिए। क्योंकि धूल में हजारों रोगोत्पादक कीटाणु होते हैं। ये कीटाणु शिशु के ऊपर चढ़ जाते हैं और उसे रोगी बना देते हैं। प्रसव के समय प्रायः स्त्रियों के लिए फटे, पुराने और मैले चिथड़े दिये जाते हैं; किन्तु यह ठीक नहीं है। स्वच्छता की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। ऐसे कपड़ों से प्रसविणी और नव-जात शिशु के बीमार होने की पूरी सम्भावना रहती है। क्योंकि यह अवस्था बड़ी ही नाजुक होती है। कभी कभी वस्त्रों की गन्दगी के कारण भी बच्चों का दम घुटने लगता है और वे मर जाते हैं।

यदि सूतिका-गृह में रखने वाली चारपाई या तख्ते को गरम

जल से धो कर सुखा लिया जाय और बाद सूतिका-गृह में बिछावे तो अच्छा हो। जिस प्रकार उत्तम चारपाई की जरूरत है, उसी प्रकार सूतिका-गृह में उत्तम, स्वच्छ, कोमल और सुखद बिछौने की भी जरूरत है। सूतिका गृह में एक भी फालतू चीज न रहने दे। प्रसूता की चारपाई दीवार के पास खिड़की के सामने बिछाना चाहिए। उस घर में हर वक्त गरम पानी तैयार रहना चाहिए। दाई को प्रसव के वक्त इस पानी से हाथ धोकर प्रसूता की सुश्रूषा करनी चाहिए। जो दाई काम करने के लिए नियत की जाय, उसे साफ वस्त्र पहना देना चाहिए और उसकी अँगुलियों के नाखून भी कटवा दे। क्योंकि नाखून से गर्भस्थान में चोट लग जाने का भय रहता है।

जब प्रसवकाल बिलकुल निकट आ जाय, तब खूब सावधानी से यह देखना चाहिए कि बच्चा पेट में किस प्रकार से है। सिर नीचे है या पैर अथवा आड़ा तो नहीं है। पहचानने की रीति यह है कि प्रायः सभी बालकों का सिर नीचे की ओर होता है और सिर के बल ही वे पैदा होते हैं। जब बालक का सिर नीचे की ओर होता है, तब वह बायीं ओर से दाहिनी ओर को घूमता है और स्त्री को बायीं ओर भारी मालूम होता है; किन्तु जिस स्त्री के दाहिनी ओर भारी रहे और बालक दाहिनी ओर से बायीं ओर घूमे तब समझना चाहिए कि बालक के पैर नीचे की ओर है और वह पैर के बल उत्पन्न होगा। यदि दोनों ओर भारी रहे और घूमे न, तो

समझ ले कि बालक आड़े पड़ा हुआ है और हाथ के बल उत्पन्न होगा। इसमें स्त्री को बहुत कष्ट होता है। यहाँ तक कि सौ में पंचानवे स्त्रियाँ मर जाती हैं।

बहुधा दाइयाँ वेदना के समय गर्भिणी से काँखने के लिये कहती हैं। इसमें उनका उद्देश्य यह होता है कि इस प्रकार जोर लगाने से बच्चा जल्द बाहर निकल आवेगा; किन्तु ऐसा करना अत्यन्त घातक है। इस समय यदि गर्भिणी को रुचे तो थोड़ा घी डाला हुआ दूध पिलाना चाहिए। हाँ यदि प्रसव हो रहा हो, तब तो थोड़ा जोर लगाना ठीक होता है; पर उस समय तो अधिकांश स्त्रों को चेत ही नहीं रहता। प्रसव के समय इतनी वेदना होने का कारण यह है कि गर्भाशय का मांस धीरे-धीरे सिकुड़ने लगता है और प्रसव द्वार चौड़ा होने लगता है। गर्भाशय के सिकुड़ने की लहरें उठती हैं, इन्हीं लहरों के कारण स्त्री को इतना कष्ट होता है। गर्भाशय के भीतर बच्चा और कुछ तरल पदार्थ होते हैं।

इस समय बहुत सी स्त्रियाँ अपना दिल एकदम छोटा कर लेती हैं। वे यह समझती हैं कि अब जान नहीं बचेगी। इसी से प्रसव काल में पास में रहनेवाली स्त्रियों का बुद्धिमती होना आवश्यक बतलाया गया है। क्योंकि चतुर स्त्रियाँ गर्भिणी को सान्त्वना दे सकती हैं और अपनी बुद्धि-चातुरी से उसके दिलको बहला सकती हैं। इस समय गर्भिणी में हिम्मत पैदा करना उसकी जीवन-रक्षा के लिए बहुत ही आवश्यक होता है। छोटा दिल कर लेने से कभी-

चित्र नं० ८

हस्तिनी स्त्री

कभी मनुष्य निष्प्राण हो जाता है। विचारों का प्रभाव मनुष्य पर बड़ा ही गहरा पड़ता है। इस लिए पास में रहनेवाली स्त्रियों को खूब बुद्धिमानी से गर्भिणी को उत्साहित रखना उचित है। इस समय बहुत सी दाइयाँ भीतर हाथ डालकर देखती हैं; किन्तु यह बहुत ही बुरा काम है। इससे प्रसूता को बहुत कष्ट होता है। गर्भाशय के भीतर बालक एक झिल्ली से मढ़ा रहता है। बच्चे के बाहर निकलते-निकलते यह झिल्ली फट जाती है। झिल्ली के फटने का शब्द भी होता है। इसके फटते ही गर्भोदक बहने लगता है, इससे बच्चे के निकलने के मार्ग में चिकनाहट पैदा हो जाती है। कभी-कभी यह झिल्ली नहीं भी फटती और बच्चा झिल्ली सहित बाहर निकल आता है। इस समय होशियारी की जरूरत है। चतुर दाई को उचित है कि खूब सावधानी से उस झिल्ली को चाकू से फाड़कर बालक को निकाल ले। इस काम में यदि देर की जाती है तो बच्चा मर जाता है। क्योंकि गर्भ में बच्चे के फेफड़े साँस लेने अथवा छोड़ने का काम नहीं करते; किन्तु ज्योंही वह बाहर निकलता है, त्योंही उसकी श्वास-प्रच्छ्वास क्रिया जारी हो जाती है। झिल्ली, उसके इस काम में रुकावट डालती है, इस लिए उसके हटाने में विलम्ब होने से बच्चा मर जाता है। इस काम में सावधानी रखने के लिए इस वास्ते कहा गया है कि कहीं झिल्ली फाड़ने के समय चाकू बच्चे के शरीर में न लग जाय।

कभी-कभी बच्चे पेट में ही मर जाते हैं। पेट में बच्चे के मर

जाने की पहचान यह है कि मरा हुआ बच्चा पेट में घूमता नहीं है। पेट में मांस का लोथा सा हो जाता है। स्त्री के स्तनों का दूध सूख जाता है और उसमें ढिलाई आ जाती है। यदि बच्चा मर जाय तो फौरन किसी अच्छे डाक्टर से उसे निकलवाने का प्रबन्ध करना चाहिए। देर करने से स्त्री की जान खतरे में पड़ जाती है।

प्रसवकाल की साधारणतया तीन अवस्थायें होती हैं। पहिली अवस्था में तो बालक धीरे-धीरे और रुक-रुक कर प्रसव द्वार की ओर आता है और दूसरी अवस्था में वह पैदा होने लगता है। तीसरी अवस्था वह है, जो बालक उत्पन्न होने के पीछे प्रसूता के पेट में से पानी की तरह कोई पदार्थ निकलता रहता है। पहली दशा में प्रसूता को खड़ी रखे या सँभाल कर टहलाती रहे। परन्तु उतना टहलाना उचित है, जितने से उसे थकावट न मालूम हो। यदि थकावट आने लगे तो बैठा दे और यदि नींद आती हो, तो बेधड़क सो जाने दे। क्योंकि नींद उचटने के बाद जब वेदना शुरू होती है तब बहुत जल्द प्रसव हो जाता है। प्रसूता को चित्त या पट न लिटाकर बायीं करवट से या जिस ओर से लेटने में उसे आराम मिले उसी ओर लिटाना अधिक उत्तम है। दोनों घुटनों के बीच में कोमल तकिया रख देना चाहिए, ताकि दोनों जाँघ अलग-अलग रह सकें। अब इस अवस्था में प्राणवायु को भीतर रोक कर जोर लगाना प्रसूता के लिए लाभदायक है, इस समय भी जोर उतना ही लगाना चाहिए जितना स्वाभाविक रीति से मल त्याग करने में—

अधिक नहीं। किन्तु मूर्ख दाइयाँ पहली अवस्था में जोर लगवा लगवा कर प्रसूता को थका डालती हैं, जिससे बहुत हानि होती है। पहली अवस्था में सिर्फ टहलाने के और कोई काम नहीं लेना चाहिए। टहलाने से वेदना तीव्र हो जाती है, जिससे प्रसव होने में शीघ्रता होती है। यदि वेदना मन्द पड़ जाय तो स्त्री को थोड़ा सा गरम दूध पिलाना चाहिए। इससे जरायु का मुख शीघ्र खुल जाता है। कोई-कोई स्त्री को दो चार दिन तक प्रसव-वेदना सहनी पड़ती है। उस समय घर की स्त्रियाँ उसे भोजन नहीं देतीं; किन्तु ऐसा करना उचित नहीं। गरम दूध या साबूदाना अथवा मखाने की खीर आदि हलकी चीजें अवश्य खाने को देनी चाहिए।

प्रसव होते समय एक चतुर स्त्री को प्रसविणी के पीछे बैठ जाना चाहिए। उसे अपना हाथ प्रसूता की पीठ पर धीरे-धीरे फेरना चाहिए। जिस स्त्री को पहलौठी का बालक होता हो, उसकी तो बड़ी ही सावधानी होनी चाहिए। इससे जननी को शान्ति मिलती है। जबतक बच्चा पैदा न हो जाय, तबतक उस स्त्री के पीछे से नहीं हटना चाहिए और हलका हाथ भी फेरते जाना उचित है। जब बालक का सिर बाहर निकल आवे तब उसकी गर्दन के चारो ओर हाथ फेरकर यह देख लेना जरूरी है कि नाल गर्दन में तो नहीं लिपटा है। पैदा होते ही यदि यह नाल शरीर से न निकाला जाय तो बच्चे के मर जाने का भय रहता है। बालक का मस्तक निकल आने पर बहुत सी मूर्ख दाइयाँ बच्चे का मस्तक पकड़ कर खींचती

हैं। किन्तु ऐसा कभी न करना चाहिए। मस्तक के साथ एक नस होती है, उसके खिंच आने से बालक की मृत्यु हो जाने का भय रहता है। इस लिए दाई को चाहिए कि स्त्री के पेट पर धीरे-धीरे हाथ फेरे। ऐसा करने से फिर प्रसव-वेदना शुरू हो जाती है और बच्चे का शेष अंग भी बाहर निकल आता है, खींचने की जरूरत नहीं पड़ती।

ऊपर जिस नाल की चर्चा की गयी है, यदि वह नाल बच्चे की गर्दन में लिपटा हुआ हो तो धीरे-धीरे हलके हाथों से उसे खोलकर सिर के ऊपर से उतार कर भीतर कर देना चाहिए। यदि नाल में उलझन अधिक हो तो उसमें समय लगाना ठीक नहीं है। यदि सिर निकल आने के बाद प्रसव की वेदना पेट पर हाथ फेरने से भी न पैदा हो, तो समझना चाहिए कि अभी बच्चे का समूचा शरीर निकलने में कुछ देर लगेगी। इस लिए ऐसे समय में चतुर दाई बालक को खींचकर निकाल ले, यही अच्छा है। क्योंकि देर लगने से भी बच्चे की मृत्यु की आशंका रहती है। परन्तु इतने पर भी सिर पकड़ कर दाई कभी न खींचने पावे। उसे चाहिए कि वह अपने दोनों हाथों की अँगुलियाँ भीतर डालकर बालक के बगलों में अंकुश की तरह अड़ाकर खींचे। खींचते समय पीछे बैठी हुई स्त्री को चाहिए कि वह प्रसूता का पेट दबाये रहे। पेट के दबाये रहने से रक्त नहीं निकलने पाता। रक्त निकलने से बालक को हानि पहुँचाती है। क्योंकि वह रक्त बालक के कान नाक और मुख में भर जाता है।

किसी-किसी स्त्री को बालक पैदा होते समय बड़ा कष्ट होता है, जल्द प्रसव होता ही नहीं। कई दिनों तक असह्य वेदना होती रहती है। ऐसी दशा में नीचे लिखे यत्नों से काम लेना चाहिए। किन्तु यत्न करने के पहले इस बात को अच्छी तरह से जान लेना चाहिए कि प्रसव-वेदना ही है या और कुछ। जब यह निश्चय हो जाय कि प्रसव-वेदना ही है, तब नीचे लिखे उपायों को काम में लाकर गर्भिणी के कष्टों को दूर करना चाहिए:—

# प्रासविक उपचार

१—करंजुवा के पत्तों और बीजों का कल्क बनाकर या बकरी के दूध में तिल के तेल को पकाकर प्रसव-स्थान में मलने से बच्चा पैदा हो जाता है, विशेष कष्ट नही होता।

२—भँड़भाँड़ की जड़ कपड़े में लपेट कर प्रसविणी की कमर में बाँधे, यह दवा परीक्षित है, शर्तिया प्रसव हो जाता है।

३—रेंड़ी का तेल पेडू पर धीरे-धीरे मलने से बहुत जल्द प्रसव हो जाता है।

४—सेहुँड़ का दूध नख और टुँड़ी पर मले।

५—सवा तोला अमलतास का छिलका पानी में औटाकर ऊपर से चीनी मिलाकर पिला देने से भी प्रसव जल्द हो जाता है।

६—यदि चुम्बक पत्थर को प्रसूता अपने हाथ में लिये रहे, तब भी प्रसव जल्द हो जाता है।

७—फालसे की जड़ अथवा शालपर्णी की जड़ को पानी में पीसकर नाभि, वस्ति और योनि पर लेप करने से भी लाभ होता है।

८—अपामार्ग ( इसे ग्रामीण भाषा में चिरचिटा या चिचिड़ी कहते हैं ) की जड़ महीन पीसकर नाभि के नीचे योनि और जंघों पर लेप कर देने से भी प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है।

९—अपामार्ग बड़ी ही तीक्ष्ण वस्तु है। यदि बहुत आवश्यकता आ पड़े और बालक किसी तरह भी बाहर न निकलता हो, तब इसकी जड़ ( ताजी ) जिसकी लम्बाई तीन-चार अँगुल हो, बड़ी सावधानी से प्रसूता की योनि में रख दे। साधारण दशा में इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए, नहीं तो गर्भाशय तक बाहर निकल पड़ेगा।

१०—मनुष्य के बाल जलाकर गुलाबजल में मिला दे, बाद उसे स्त्री के तलवे पर मलने से भी जल्द प्रसव हो जाता है।

११—प्रसूता अपने लट को मुख में डाल ले। इससे भी शीघ्र प्रसव हो जाता है।

१२—'अपीका' नामक अंग्रेजी दवा एक-एक रत्ती तीन बार देने से सहज ही में प्रसव हो जाता है।

१३—बच को उबाल कर पीने से भी बहुत ही लाभ होता है।

१४—गर्भिणी के शरीर में अच्छी तरह से तेल लगाकर गरम जल से स्नान कराना भी हितकर है।

१५—थोड़ी सी मूँग की खिचड़ी गरम-गरम खिलाना या गरम

दूध पिलाना भी फायदेमन्द है।

१६—साँप की केंचुर की धूनी गुह्य-स्थान में देने से भी प्रसव होने में बड़ी सहायता मिलती है।

१७—छींक आने के लिए कोई दवा देने से भी बच्चा शीघ्र बाहर निकल आता है।

१८—पाँच तोले गुड़ में एक तोला अजवाइन का काढ़ा बनाकर कुनकुना पिलाने से भी प्रसव हो जाता है।

१९—रेंडी की गिरी, पीपल और बच को तिल्ली के तेल में पीसकर नाभि के ऊपर लेप करने से कितना ही कष्ट क्यों न हो, फौरन दूर हो जाता है और सुख से सन्तान पैदा होती है।

२०—मोरशिखा की जड़, विजयसार, सहिजन की जड़, पान, कटाली और खरेंटी इन चीजों को बराबर-बराबर लेकर काँजी के जल में पीस, नाभि में लेप करने से शीघ्र प्रसव हो जाता है। या शालपर्णी की जड़ को चावल के पानी में पीसकर नाभि, भग और वस्ति में लेप करने से सुख से बालक उत्पन्न हो जाता है।

२१—चिरमिटी की जड़ को दस टुकड़े कर डाले। बाद सात तार के लाल धागे में उनको अलग-अलग बाँधकर कष्टवाली स्त्री की कमर में बाँध देने से सन्तान तत्क्षण उत्पन्न हो जाती है।

२२—गाजर के बीज, सौंफ, सोया, मेथी के दाने, वटवृक्ष की जड़, बनपशा और मुलहठी प्रत्येक तीन तीन माशे लेकर क्वाथ बनावे। छानकर गर्भिणी को पिलाने से सुख से प्रसव हो जाता है।

साधारणतयः जिस प्रकार प्रसव होता है और प्रसवकाल में जिन बातों का जानना आवश्यक है, उनका वर्णन यहाँ तक किया जा चुका; किन्तु कभी-कभी ऐसी विकट समस्या उपस्थित हो जाती है कि बालक और प्रसूता दोनों की जान जाने का भय रहता है। जैसे, पहले सिर न निकल कर बच्चे का नितम्ब बाहर निकल आता है। यह भयंकरता का चिह्न है। इस समय चतुर दाई ही काम कर सकती है। कभी-कभी बच्चा अधिक मोटा होने अथवा मर जाने के कारण बाहर नहीं निकलता। बच्चे का गर्भ में मर जाना बड़ा ही भयंकर है। ऐसी दशा में फौरन डाक्टर को बुलाना चाहिए। कभी-कभी आँवल पहले ही निकल आती है। यह भी भयंकर बात है। इसको बच्चा पैदा होने के बाद निकलना चाहिए; किन्तु कभी-कभी यह गर्भाशय के मुख के पास लग जाती है। इसी से पहले यही निकल पड़ती है। जब रज पाँचवें अथवा छठे महीने में प्रवाहित हो, तब समझना चाहिए कि आँवल गर्भाशय के पास ही है। आँवल गर्भाशय के मुख के पास है या नहीं, यह जानने के लिए छठे महीने जब रुधिर बहे और इसी तरह बिना किसी कारण के कभी-कभी बहने लगे, तब अँगुली डालकर यह देखना चाहिए कि कोई मुलायम चमड़े की तरह चीज तो नहीं है। यदि ऐसी चीज का अँगुली से स्पर्श हो, तो समझ लेना चाहिए आँवल गर्भाशय के मुख के पास ही है। इसका निश्चय हो जाने पर प्रसव के समय दाई को खूब सावधानी से काम करना चाहिए।

प्रसव-पीड़ा शुरू होने पर चतुर दाई को चाहिए कि वह अपना हाथ गरम पानी से खूब साफ करके भीतर डालकर आँवल को रोक दे और बच्चे को पहले बाहर निकल आने दे ।

कभी-कभी गर्भ में एक से अधिक बच्चे भी रहते हैं । इसमें भी दाई को खूब सावधानी से काम लेना चाहिए । क्योंकि इसमें भी प्रसूता को बहुत कष्ट होता है ।

—०—

# नवजात शिशु

बालक उत्पन्न हो चुकने पर दो बातों की ओर ध्यान देना चाहिए । एक तो उसके रोने पर और दूसरे मल-त्याग पर । बच्चा पैदा होते ही रोने लगता है । यह उसकी स्वास्थ्यता की खास पहचान है । रोने से यह सूचित होता है कि उसके फेफड़े हवा से भर गये और श्वासप्रच्छ्वास क्रिया आरम्भ हो गयी । यदि बालक न रोवे तो समझना चाहिए कि अभी वह हाँफ रहा है ।

बच्चे के पैदा होते ही सबसे पहले उसके गले के नाल को देखना उचित है । बहुधा बच्चों के गले में नाल ( नार ) लिपटा हुआ आता है । इस लिए यदि वह लिपटा हुआ हो तो उसे छुड़ा देना चाहिए । कभी-कभी थैली में ही लिपटा हुआ भी बच्चा पैदा होता है, ऐसी अवस्था में तुरन्त झिल्ली को फाड़कर बच्चा निकाल लेना उचित है । बाद यह देखे कि बालक हाँफता तो नहीं है । यदि

हाँफता हो तो पहले उसके मुख में सावधानी से अँगुली डालकर लार निकाल डाले। बाद ठण्ढे पानी में अपना हाथ डुबाकर बच्चे की छाती पर बहुत धीरे से हथोसना चाहिए। थोड़ा हथोसने पर ही बालक रोने लगेगा। यदि इससे भी बालक न रोवे तो थोड़े से ठण्ढे जल का हलका छींटा उसके मुख पर देना चाहिए अथवा बालक की पीठ पर हल्की थपकियाँ लगाकर रुलाना चाहिए। यदि इतने पर भी बालक न रोवे तो उसे गोद में चित लिटा ले और उसके दोनों हाथ पकड़ कर जरा ऊपर उठावे और उसके मुख में दो चार फूँक लगावे, किन्तु फूँक लगानेवाली स्त्री का मुख बदबूदार न हो, नहीं तो बच्चे के बीमार हो जाने का भय रहेगा। बहुत-सी स्त्रियाँ बच्चे को रुलाने के लिए ठण्ढे पानी में उसका सिर डुबा देती हैं, पर यह काम अच्छा नहीं है।

यदि बालक होकर नीला पड़ जाय; तो उसकी नाभि से तीन अँगुल छोड़कर नाल को काट दे। जब पैसे भर के अन्दाज खून गिर जाय, तब उसे फौरन बाँध दे; बहुत खून न गिरने पावे। ऐसा करने से मुख, आँख का नीलापन दूर हो जाता है। कितनी ही दाइयाँ बच्चे को रुलाने के लिए काली मिर्च चबाकर उसके मुख में फूँकती हैं, किन्तु इससे बच्चे की बहुत हानि होती है।

इस प्रकार पहले बच्चे को रुलाकर तब उसका नाल काटना चाहिए। नाल काटने की रीति यह है:—नाल को नाभि से तीन अँगुल छोड़कर बाँध दे। फिर उस बँधन से आधा अँगुल छोड़कर

एक बन्धन और लगा दे। बाद दोनों बन्धनों के बीच में तेज औजार से काट दे। नाल काटने के पहले बन्धन लगाना इस लिए बहुत जरूरी होता है कि जिसमें बच्चे के शरीर का खून न निकलने पावे। क्योंकि खून निकलने से बच्चा मर जाता है। नाल में दूसरा बन्धन इस लिए लगाया जाता है कि शायद प्रसूता के पेट में दूसरा बालक हो। यदि वह बन्धन न लगाया जाय और पेट में दूसरा बच्चा हो तो रक्त निकल जाने के कारण वह तुरन्त ही मर जायगा। फिर तो प्रसूता का बचना भी कठिन हो जाता है। इसी से दूसरा बन्धन लगा देना भी आवश्यक है। क्योंकि पेट में जितने बच्चे होते हैं, सबका नाल एक ही होता है। यदि पेट में दूसरा बच्चा हो तो प्रसूता स्त्री से इसका हाल कभी न कहे। नहीं तो घबड़ा जाने के कारण प्रसूता की जान खतरे में पड़ जानेकी सम्भावना रहती है।

नाल काटने से पहले एक बात पर ध्यान अवश्य देना उचित है। यह कि, बच्चा निर्जीव तो नहीं है। यदि वह निर्जीव यानी कमजोर अधिक हो तो नाल काटने से पहले नाल को माँ की ओर से दुहकर बालक की नाभि तक ले आवे। ऐसा करने से कुछ खून बच्चे के शरीर में चला जाता है। इतना करने के बाद नाल को काटना उचित है। कमजोर बालक के लिए कुछ दाइयाँ नाल के खून की दस पाँच बूँदें चटा देती हैं; किन्तु यह क्रिया हमें अच्छी नहीं जँचती—यद्यपि इससे भी बालक की कमजोरी दूर हो जाती है, क्योंकि माँ का खून बच्चे के लिए बहुत ही लाभदायक है, चाहे

वह किसी भी रूप में उसके शरीर में प्रवेश कराया जाय । सबसे अच्छा तरीका वही ऊपर वाला नाल को दुहकर बच्चे के शरीर में रक्त पहुँचाना है । नाल काटने से पहले उसे शहद, घी और सेंधा नमक से शुद्ध कर लेना बहुत ही उत्तम है । या सोने अथवा चाँदी के बुझे हुए जल से नाल को शुद्ध करके तब काटे ।

नालोच्छेदन करने के बाद पहले से पीसकर रक्खी हुई एक माशे लकड़ी के कोयले में दो चावल कस्तूरी की बुकनी मिलाकर उस पर लगा देनी चाहिए । ऐसा करने से बच्चे को मसान का रोग नहीं होता । पश्चात् घी, शहद, अनन्तमूल और ब्राह्मी के रस में थोड़ा सा सोने का चूर्ण मिलाकर चटा दे; यह बहुत ही गुणदायक है । इससे एक तो बालक का मल गिर जाता है और दूसरे बच्चे की तन्दुरुस्ती पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है, यदि ये चीजें न मिल सकें, तो बच्चे को शहद और घी चटाना चाहिए ।

यदि बालक सतमासा या गर्भ पूरा होने के कुछ पहले ही पैदा हो जाय और वह निर्बल अधिक हो तो उसके लिए एक यत्न और करना चाहिए । यह कि धुनी हुई रुई कड़वे तेल में भिगोकर उस में दो या चार दिन तक बच्चे को रक्खे । इससे बच्चे का उतना ही पोषण होता है, जितना कि माता के पेट में । ऐसा करने से सतमासे बच्चे भी बहुत से जी जाते हैं ।

जिस छुरी या कैंची से नालोच्छेदन करना हो, उसे पहले खूब खौलते हुए पानी में डालकर गरम कर लेना चाहिए । बाद उसको

ठण्ढा करके काम में लाना उचित है। ऐसा करने से लोहे के औजार में कोई विकार नहीं रह जाता और नाल जल्द सूख जाता है। नाल काटने के बाद बच्चे के शरीर में बेसन लगाकर उसे किंचित गरम जल से नहला देना चाहिए। ऐसा करने से बच्चे के शरीर की मैल छूट जाती है। बालक के उत्पन्न होते ही चतुर दाई को यह देख लेना चाहिए कि उसका अङ्ग-प्रत्यङ्ग सब ठीक है या कोई अङ्ग विकृत अथवा जुड़ा हुआ है। क्योंकि बहुत से बच्चों की हाथ-पैर की अँगुलियाँ एक ही में जुड़ी हुई होती हैं। इसलिए यदि ऐसा हो तो फौरन तेज छुरे से उसे अलग कर देना चाहिए। ऐसा न करने से अँगुलियाँ जुड़ी हुई ही रह जाती हैं। इसी प्रकार यदि आँखों की पलकें बन्द हों यानी जुड़ी हुई हों तो उन्हें भी नश्तर देकर ठीक कर देना चाहिए। यदि गुदा का छिद्र बन्द हो तो उसे भी खोल देना चाहिए। आजकल बहुत सी दाइयाँ काँच की चूड़ी को तोड़कर उसकी नोक से चीर देती हैं; परन्तु यह बहुत ही वाहियात काम है। इससे बहुत भय और हानि है यह काम तेज छुरे से ही होना उचित है। इसी प्रकार यदि कोई अङ्ग बेडौल हो तो उसे तुरन्त ठीक कर देना चाहिए। जैसे,यदि नाक चिपटी हो तो उसे दुहकर ऊपर को उठा देनी चाहिए; यदि मस्तक टेढ़ा हो तो उसे दोनों हाथों से दाब कर सुडौल कर देना चाहिए। इस समय थोड़ी ही सावधानी और उपाय से बेडौल अङ्ग सुडौल हो सकता है; क्योंकि शरीर की हड्डियाँ बहुत ही कोमल रहती हैं।

परन्तु बच्चे के शरीर में ज्यों-ज्यों हवा लगती है, त्यों-त्यों उसकी हड्डियाँ कड़ी होती जाती हैं।

कभी-कभी बच्चा उत्पन्न होने पर चुपचाप पड़ा रहता है, उस का कोई भी अङ्ग नहीं हिलता-डोलता। ऐसी दशा में बच्चे को होशियारी से उल्टा अर्थात् सिर नीचे और पैर ऊपर करके १०-१५ सिकेंड तक रखना चाहिए और उसकी छाती को धीरे-धीरे दबाकर फेफड़ों में चैतन्यता लानी चाहिए। इस समय बच्चे के मुँह में अँगुली डालकर बलगम वगैरह निकाल लेना उचित है। कारण यह कि उल्टा करने से बच्चे के गले का बलगम मुख में आ जाता है।

नाल काटने के बाद बच्चे को करवट के बल लिटा देना चाहिए और उसे स्नान कराने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस समय बालक के समूचे शरीर में यदि शहद पोत दी जाय तो बहुत ही उत्तम हो। शहद लगाने से बच्चा सदा के लिए रोगमुक्त हो जाता है। कुछ देर के बाद शहद को कोमल तथा साफ कपड़े से पोंछ-कर बालक को नहला देना चाहिए। तीन अँगुली बचे हुए नाल को भी पानी में उबाले हुए मलमल के टुकड़े से लपेट देना चाहिए। बच्चे को नहलाते समय उसके नाल पर मैला पानी जरा भी न पड़ने दे। क्योंकि उसके भींजने से पक जाने या सड़ जाने का भय रहता है। नाल काटते समय यदि रुधिर को पीछे हटाकर १२ अनबिंधे मोती उसमें भर दिये जायँ और ऊपर से बाँधकर नाल को काटा

जाय, पश्चात् एक मोती नित्य-प्रति बच्चे को खिलाया जाय तो आमरणपर्यन्त उसे चेचक रोग नहीं हो सकता।

बच्चे को स्नान कराने के लिए जो पानी गरम किया जाय, उसमें यदि पीपल, गूलर या बटवृक्ष की छाल डाल दी जाय तो बड़ा लाभ होता है। यदि उक्त वृक्षों की छाल समय पर न मिल सकें तो तपाई हुई चाँदी या सोने को पानी में बुझाकर उसी जल से बच्चे को नहलाना उचित है। बच्चे को प्रतिदिन कुनकुने पानी में जरा सा नमक मिलाकर स्नान कराने से बड़ा फायदा पहुँचता है।

बालक को पैदा होने के बाद दस्त होता है। इस दस्त का होना बहुत जरूरी है यह दस्त जितना शीघ्र हो जाय उतना ही अच्छा। इसके होने से बच्चे का पेट साफ हो जाता है और भूख खूब ठिकाने से लगती है। यह मल गर्भ में बहुत दिनों का जुटने के कारण बड़ा हानिकारक होता है। यदि दस्त न हो तो शुद्ध किया हुआ दस बूँद रेंडी का तेल शहद में मिलाकर या योंही पिला देना उचित है। इससे अवश्य दस्त उतर आता है और बच्चे को आराम मिलता है। जब तक यह पहला दस्त नहीं हो जाता, तब तक बच्चा बड़ा ही बेचैन रहता है, इसके होते ही उसे फुरसत मिल जाती है। यदि यह मल बच्चे के पेट में दो-चार दिन रह जाता है अर्थात् दो-चार दिन तक बच्चे को दस्त नहीं होता, तो वह बालक रोगी हो जाता है और पेट की बीमारियाँ तो उसे बहुधा हुआ करती हैं। इस लिए इसमें जरा भी ढिलाई नहीं करनी

चाहिए, बालक का पेट साफ करने के लिए उसकी माता का दूध सबसे अधिक गुणकारी है। अतः पहले माता का दूध ही पिलाना चाहिए। यदि माता के स्तनों में दूध न उतरा हो तो रेंडी का तेल और मधु मिलाकर चटाना चाहिए।

यदि नाल से रुधिर निकलता हो तो उसे रेशम से बाँध देना चाहिए। नाल से रुधिर का निकलना बहुत ही हानिकर है। आठ नौ दिन में नाल अपने से सूखकर गिर जाता है। यदि वह आप ही न गिरे तो उसे भूलकर भी खींचना नहीं चाहिए। यदि बालक की खाल कहीं सिकुड़ी हुई हो और उसके पास कुछ मैल या छिला हुआ अथवा कटा हुआ दिखलायी पड़े तो उसको नरम कपड़े या स्पञ्ज से धो दिया करे तथा चिकनी खड़िया और चावल का आटा या मैदा मिलाकर उस पर लगा दिया करे।

कभी-कभी बच्चों का नाल पक भी जाता है। इस लिए चतुर दाई का कर्त्तव्य है कि वह ऐसे ढंग से सब काम करे कि उसके पकने की नौबत ही न आये। यदि किसी कारणवश पक ही जाय तो उस पर सफेदा या कलई लगा देना चाहिए। यदि नाल सूज आया हो तो अफीम को तेल में घिसकर लगाने से अच्छा हो जाता है। नाल काटने के बाद तुरन्त ही यदि कठ का तेल लगा दे तो उसके पकने या सूजने का भय नहीं रहता। कठ तेल इस प्रकार बनता है कि तेल और पानी को बराबर बराबर लेकर उसमें काठ का चूर्ण डाल आग पर पकावे। जब सब पानी जल जाय और सिर्फ

तेल रह जाय, तब उसे उतार कर कपड़े से छान डाले और शीशा में रख दे यही कठ-तेल कहलाता है। यदि कठ तेल न हो तो तिल का तेल ही लगा देना चाहिए। इसके लगाने से भी पकने का भय बहुत कम रहता है।

बालक के लिये गाय के दूध से बढ़कर गुणकारी दुसरा दूध नहीं है। अगर है तो केवल माता का दूध। किन्तु माता का दूध तो अमृत तुल्य है अतः उसे दूध की श्रेणी में रखना ठीक नहीं। गाय का दूध हलका, पुष्ट, निरोग और फुर्तीला होता है, इस लिए बालक को सदा गाय का दूध ही पिलाना चाहिए।

—:o:—

# प्रसूता के लिए उपचार

बालक उत्पन्न होने के बाद स्त्री के पेट से एक मांस की सी थैली निकलती है जिसको विभिन्न प्रान्तों में 'आँवल' 'औनार' 'खेढ़ी' आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। जैसे गाय-भैंस के बच्चा पैदा होने के बाद खेढ़ी गिरती है उसी प्रकार स्त्री के भी। इसका न निकलना बड़ा ही हानिकारक है। जब तक यह न गिरे, तबतक स्त्री के पेट पर से हाथ नहीं हटाना चाहिए। यदि यह अपने से न गिरे तो खींचकर कभी भी निकालने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि खींचकर निकालने से गर्भाशय को बड़ी हानि पहुँचती है। प्रसव होने के आधा घण्टा बाद यह थैली अपने-आप ही

बाहर निकल आती है। यदि प्रसव के बाद एक घण्टा बीत जाय और वह थैली बाहर न निकले, तब उसे बाहर निकालने का यत्न करना आवश्यक है।

दाई को प्रसूता के पेट पर हाथ फेरते रहना चाहिए। ऐसा करने से पेट में पीड़ा होने लगती है और वह थैली बाहर निकल आती है। ऐसा करने पर भी यदि वह न गिरे तो नीचे लिखे आयुर्वेदशास्त्र के यत्नों को करना चाहिए।

१—भोजपत्र और गुग्गल को कूटकर प्रसूता की कमर में उसका धुआँ देना चाहिए।

२—लाँगली की जड़ को पानी में पीसकर प्रसूता के हाथ-पैर में लेप करने से वह थैली शीघ्र गिर पड़ती है।

यदि इस तरह भी वह बाहर न निकले तो खुद दाई को चाहिए कि वह अपने हाथ में नारियल का तेल पोतकर खूब सावधानी से उसे इकट्ठा करके निकाले और एक हाथ से प्रसूता के पेट को दबाये रहे। यदि पेट दबाया नहीं जायगा तो खून बहुत निकलेगा और प्रसूता बिलकुल कमजोर हो जायगी। इस लिए इस बात की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसका थोड़ा अंश भी पेट में रह जाने से प्रसूता का स्वास्थ्य आजन्म के लिए नष्ट हो जाता है, उसे विषैला ज्वर आने लगता है।

जब यह बाहर निकल आवे तब एक दुपट्टा चौपर्त कर पेडू से कलेजे तक कस कर लपेट देना चाहिए। इससे खून का गिरना बन्द

हो जाता है, प्रसूता का पेट नहीं डोलता, गर्भाशय डिगने नहीं पाता तथा स्त्री को आराम मिलता है। इस कपड़े को दूसरे-तीसरे दिन खोलकर बाँधते रहना चाहिए, ऐसा करने से नसें खिंचने नहीं पातीं।

बहुत सी दाइयाँ बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूता को बिठा देती हैं। उनका कहना है कि इससे खून बाहर निकल जाता है। किन्तु ऐसा कभी न करना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार खून निकालने से प्रसूता निर्जीव हो जाती है।

प्रसूता की जठराग्नि कमजोर रहती है। इस लिए उसके लिए दूध सबसे अच्छा भोजन है। दुःख की बात है कि हमारे देश में अनभिज्ञता के कारण प्रसूता को गरिष्ट चीजें अधिक खिलायी जाती हैं; किन्तु उसे ऐसा भोजन देना चाहिए जो हल्का हो और साथ ही पौष्टिक। यदि सोंठ को पीस-छानकर उसकी एक फँकी लगाकर ऊपर से प्रसूता दूध पिये तो उसे बहुत ही लाभ पहुँचे। इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि देर में पचने वाला भोजन प्रसूता के लिए बहुत ही हानिकारक है। उसके खान-पान में विशेष सावधानी रखने की जरूरत होती है। कारण यह कि बच्चा पैदा होने के बाद प्रसूता अत्यन्त निर्बल हो जाती है। उसके शरीर के रक्त में रोगों के कीटाणुओं का सामना करने की शक्ति नहीं रहती; इस लिए वह सहज ही में रोगाक्रान्त हो जाती है। ज्यों-ज्यों प्रसूता की पाचनशक्ति बढ़ती जाय, त्यों त्यों अधिक पुष्टिकारक भोजन देना तो ठीक है; पर शुरू में ही गरिष्ट भोजन देना कदापि ठीक नहीं।

प्रसव होने के दो-तीन घण्टे बाद प्रसूता को कुछ खिलाकर सुला देना उचित है। इस समय किसी प्रकार का हल्ला-गुल्ला करना प्रसूता के लिए दुःखदायी होता है। हमारे यहाँ लड़का पैदा होने पर बन्दूकों की आवाजें की जाती हैं, स्त्रियाँ गाना-बजाना करती हैं; किन्तु उस समय यह सब करना अच्छा नहीं। इन कामों से प्रसूता की बेचैनी बढ़ जाती है। इस समय ऐसी शान्ति रखनी चाहिए, जिससे प्रसूता को फौरन नींद आ जाय। जब वह सोकर उठे, तब उसे पेशाब कराना चाहिए; किन्तु उसे उठाकर पेशाब न करावे, लेटे ही लेटे, क्योंकि हिलने-डोलने से प्रसूता को बड़ा ही कष्ट होता है। उठने-बैठने या हिलने-डोलने से रक्त-स्राव होने लगता है। पारसियों के घरों की स्त्रियाँ प्रसव होने के चालीस दिन बाद बाहर निकलती हैं। इतना नहीं तो कम-से-कम १५-२० दिन तक तो अवश्य ही नियम का पालन करना प्रत्येक प्रसूता का कर्त्तव्य होना चाहिए। इस समय गर्भाशय सिकुड़ कर इतना छोटा नहीं होगया रहता कि वह उदर-गह्वर में जा सके। वह कहीं १५-१६ दिन में उदर-गह्वर में जाने के योग्य होता है। इस लिए इतने दिनों तक विशेष सावधानी की जरूरत रहती है। यही कारण है कि लेटे ही लेटे पेशाब करने का आदेश किया गया है।

यदि मूत्र न उतरे तो गरम पानी में साफ कपड़ा भिगोकर उसे निचोड़ डाले और उसे पेड़ू पर रक्खे। थोड़ी देर तक ऐसा करने से पेशाब हो जायगा। किन्तु यदि इससे भी पेशाब न हो तो किसी

अच्छे वैद्य से उपाय पूछना चाहिए। क्योंकि इस समय मूत्र-त्याग करना प्रसूता के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस समय पेशाब न उतरने से रोग उत्पन्न हो जाता है। प्रसूता को मल-त्याग भी कराना चाहिए। यदि मल न गिरे तो रेंड़ी के तेल में या दूध में सनाय या और कोई हल्के विरेचन की चीज औटाकर देना चाहिए।

सौर के घर में राइ, सफेद सरसों, नीम के पत्ते या इसबन्द की धूनी देनी चाहिए; किन्तु इतना धुआँ न करना चाहिए कि बच्चे या प्रसूता की आँखें दुखने लगें। प्रसूता तथा उसके व्यवहार के कपड़ों में भी यह धुआँ देना आवश्यक है। बहुधा स्त्रियाँ प्रसूता की चारपाई के नीचे धधकती हुई आग रख देती हैं—चाहे गर्मी हो या बरसात। इससे प्रसूता को तो कम, पर नाजुक बच्चे को बड़ा कष्ट होता है। इस लिए ऐसा कभी न करना चाहिए।

कहीं-कहीं बच्चा पैदा होने के पाँच छः दिन बाद ही स्नान करा दिया जाता है। यद्यपि स्वास्थ्य के लिए स्नान बहुत ही लाभदायक काम है; तथापि प्रसूता के लिए दस-बारह दिन से पहले स्नान कराना लाभदायक है, यह नहीं कहा जा सकता। इतने शीघ्र स्नान कराने से प्रसूता को ज्वर होने तथा सर्दी लगने की सम्भावना रहती है—जोकि इस समय के लिए घातक है। यदि स्वच्छता रखना हो तो और ढंग से रक्खे, स्नान न करावे। चालीस दिन तक प्रसूता के शरीर में प्रतिदिन तैल-मर्दन करना चाहिए। यदि लाक्ष्यादि तेल मला जाय तो और भी उत्तम हो। क्योंकि इससे

वायु नहीं बढ़ पाती और शरीर में बल खूब बढ़ता है। दस दिन बीत जाने पर तेल मलकर सबेरे गरम जल से प्रसूता को स्नान करा देना चाहिए। इससे किसी तरह की हानि नहीं होती पर लाभ होता है।

प्रसूता को दस दिन तक बत्तीसा काढ़ा डालकर औटाया हुआ पानी पीना चाहिए। ये बत्तीसों चीजें पंसारियों के यहाँ मिलती हैं—जोकि बहुत ही गुणकारी हैं। उन बत्तीस चीजों में से यदि इन चीजों का ही पानी बनाकर दिया जाय तब भी कोई हर्ज नहीं—१—अजवायन दो तोला, २—सोंठ एक तोला, ३—लौंग तीन माशा, ४-पीपल तीन माशा, ५—पीपलामूल तीन माशा, ६-जावित्री डेढ़ माशा, ७—जायफल डेढ़ माशा, ८—कमरकस छः माशा, ९—लोध छः माशा, १०—हल्दी छः माशा, ११—अम्माहल्दी छः माशा, १२—सुपारी के फूल छः माशा, १३—असगन्ध छः माशा, १४—मेदा लकड़ी छः माशा, १५--कत्था तीन माशा, १६--माजूफल तीन माशा १७--केशर डेढ़ माशा, १८--चिकनी सुपारी एक, १९- सनाय डेढ़ माशा, २०--मँजीठ तीन माशा, २१--झाड़ी बेर की जड़ एक तोला, इन सबको जोकुट करके एक पोटली में बाँध दे। मिट्टी के बड़े बर्तन में १५-२० सेर पानी भरकर आग पर चढ़ा दे और उसमें उक्त पोटली डालकर पकावे, बाद यही पानी प्रसूता को पिलावे। यदि ये चीजें भी न मिलें या मौके पर उपस्थित न हों तो—पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, मोचरस, चीता, सोंठ और गुड़ इन्हीं चीजों

को पानी में औटाकर पीना चाहिए। ये चीजें भी वैसी ही गुण-कारी हैं। अथवा यदि दशमूल का काढ़ा पान करे तो और भी अच्छा हो। यह पूर्व प्रसूत वक के उत्पन्न हुए रोगों को नष्ट कर देता है। दशमूल के काढ़े में ये चीजें हैं:—१-शालपर्णी, २-पृष्ठिपर्णी ३--दोनों कटेरी, ४-गोखरू, ५-बेल की गिरी, ६-अरणी, ७-अरलू ८-पाढ़, ९-खम्भारी ( कुमेर ), १०-पीपल। दशमूल में इन दसों चीजों की समान मात्रा है। यदि पहले से ही इनका अर्क उतारा हुआ हो तो और भी अच्छा है।

बहुत जगह की यह प्रथा है कि प्रसूता को पानी नहीं दिया जाता। पर वास्तव में ऐसा करना ठीक नहीं। प्यास लगना ही पानी की इच्छा सूचित करता है। इस लिए इस स्वाभाविक माँग को पूर्ण न करना हानि के सिवा लाभ नहीं पहुँचा सकता। यदि प्रसूता को प्यास लगे तो दूध देना चाहिए; किन्तु यदि उससे उसकी तृप्ति न हो तो थोड़ा सा पानी दे देने में कोई हानि नहीं। हाँ, बालक पैदा होने के २५-३० घण्टे के भीतर अवश्य ही पानी नहीं देना चाहिए।

दाइयों की असावधानी के कारण प्रसूता के प्रसवद्वार से स्वाभाविकता से अधिक खून गिरने लगता है। ऐसी दशा में नीचे लिखी दवा बनाकर खिलानी चाहिए:—

दोनों सुपारी, भाँविरी गोंद, कटीरा, गोंद बबूल, पठानी लोध, कमरकस और गुलधावा इन चीजों को आठ-आठ तोला, माँजूफल,

समुद्रसोख, कायफल, सालबमिश्री, हंसराज, शकाकुल और सफेद मुसली ये सब चार-चार तोला बंसलोचन एक तोला, छोटी इलाइची एक तोला, बादाम पावभर, गरी आधपाव, छुहाड़ा और दाख आध-आध पाव, घी डेढ़ सेर, आटा डेढ़ सेर और देशी शकर दो सेर। गोंद को घी में तल कर फुला लेना चाहिए। इन सबको पंजीरी बनाकर उसमें सफेद मुसली और स्याह मुसली एक सेर, दक्खिनी सुपारी, सिरयाली के बीज, गाजर के बीज, बीचबन्द, मँजीठ, कौंच के बीज, धाय के फूल, पलास की गोंद, इन्द्र जौ, तेजबल, पीपलामुल, माईं, समुद्रसोख, वायविडंग, देशी आजवायन तालमखाना, सोंठ, गोखरू, माँजूफल, दालचीनी, मोचरस, कमरकस, बबूल की कली, बड़ी इलाइची, असगन्ध सब एक-एक तोला और संगजराहत तीन तोला इन सबको कूट कपड़छान करके उसमें डाल दे। बाद यही पंजीरी बलाबल के अनुसार खिलावे। इससे शीघ्र रक्त-स्राव बन्द हो जाता है।

जब तक स्त्री बच्चा होने बाद पुनः पुर्ववत् रजस्वला होकर शुद्ध नहीं हो जाती, तब तक उसे प्रसूता ही कहा जाता है। प्रसव के बाद प्रायः महीने डेढ़ महीने में स्त्रियाँ ऋतुमती होती हैं। बहुत से लोग सौर में बारह दिन तक रहने को ही प्रसूता मानते हैं; किन्तु यह उनकी भूल है। आयुर्वेद में लिखा हैः—

**प्रसूतासार्धमासान्तेदृष्टेवापुनरार्त्तवे।**

अर्थात्—प्रसव के दिन से पैंतालिस दिन पर्यन्त अथवा पुनः

रजस्वला होने तक स्त्री की 'प्रसूत' संज्ञा है ।

इस लिए डेढ़ महीने तक अर्थात् जब तक किसी शास्त्रकारों के कथनानुसार प्रसूता रहे, उसकी देख-रेख बड़ी ही सावधानी से करनी चाहिए। सूतिका-गृह को शुद्ध और सुगन्धित रखना चाहिए तथा प्रसूता के खान-पान की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। पाठिकायें पूछ सकती हैं कि सौर घर को सुगन्धित किस प्रकार रक्खा जाय ? क्या इत्र इत्यादि से ? नहीं, इच्छा हो तो इत्र से भी सुगन्धित रक्खे नहीं तो केवल सुगन्धित चीजों की धूनी ही कर दिया करे। इन चीजों की धूनी कर देने से घर सुगन्धित हो सकता है:—कपूर कचरी पावभर, चन्दन का चूर्ण पावभर, नागरमोथा आधपाव, अगर-तगर, लाल चन्दन, गिलोय ढाई-ढाई तोला, गुग्गुल पाँच तोला, मँजीठ छः माशा, देवदारू एक तोला, मखाना दो तोला, दालचीनी एक तोला, लौंग एक तोला, और बड़ी इलायची एक तोला इन चीजों को कूट कर गाय का घी, देशी खाँड़ और शहद मिलाकर रख दे। और उसमें से थोड़ा आग में डालकर धुआँ करके सूतिका-गृह को सुगन्धित कर दिया करे ।

हमारे यहाँ सूतिका-गृह में बहुधा हर समय भीड़ सी लगी रहती है; स्त्रियाँ बारी-बारी से प्रसूता के पास बैठकर व्यर्थ की बातें किया करती हैं। इन कामों से बड़ी ही हानि होती है। एक तो अधिक आदमियों के रहने से सूतिका-गृह की वायु दूषित हो जाती है, जिससे नाजुक बच्चे की तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है, दूसरे व्यर्थ

की बातें सुनने से प्रसूता शान्ति-लाभ नहीं कर सकती, जिससे बहुत सी लक्षित तथा अलक्षित बुराइयाँ पैदा होती हैं। इस लिए सूतिका घर में अधिक स्त्रियों को फालतू कभी न रहने देना चाहिए और न तो किसी को व्यर्थ की गप्पें मारने के लिए ही स्वतन्त्रता दे रखनी चाहिए। क्योंकि ये दोनों ही विशेष हानिकारक हैं। इस समय प्रसूता का शान्त और सात्विक भाव रखना बहुत ही आवश्यक है। इससे बच्चे पर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है। कोई यह न समझे कि बच्चे इस वक्त कुछ सीखते ही नहीं।

—:o:—

# गर्भ में बालक को शिक्षा

यह बात पहले कही जा चुकी है कि माता जैसा आचरण करती है, वैसा प्रभाव गर्भस्थ बच्चे पर पड़ता है। गर्भ में बालक को माता जितनी शिक्षा दे सकती है और उस शिक्षा का जितना असर पड़ सकता है, उतनी न तो और समय में शिक्षा ही मिल सकती है ओर न उसका उतना असर ही पड़ सकता है। देखिये, जब अभिमन्यु गर्भ में थे, तब अर्जुन ने उनकी माता से चक्रव्यूह वर्णन किया था। पूरा वर्णन वह नहीं कर पाये थे कि वे गहरी नींद में सो गयीं। परिणाम यह हुआ कि चक्रव्यूह के युद्ध में जहाँ बड़े-बड़े योद्धा हृदय में हार मानकर भययुक्त हो गये, वहाँ कुमार अभिमन्यु बड़ी वीरता के साथ लड़े और फाटक पर फाटक जीतते

चले गये। अन्त में उस स्थल पर मारे गये, जिस स्थल का वर्णन उनके पिता अर्जुन से उनकी माता नहीं सुन पायी थीं। गर्भ के बच्चों पर इतना प्रभाव शिक्षा का पड़ता है।

प्राचीन समय में हमारे देश की देवियाँ जिस ढंग के बच्चे पैदा करना चाहती थीं, उसी ढंग का बालक पैदा करती थीं। ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पाये जाते हैं कि एक ही माता ने अपने एक बच्चे को सर्वस्वत्यागी बनाया, दूसरे को नीति-कुशल बनाया और तीसरे को शिल्प-कला में दक्ष! वे माताएँ जिस गुण वाली सन्तान पैदा करना चाहती थीं, गर्भ धारण करने पर मनोयोगपूर्वक उसी विषय की बातें सुन, समझ, पढ़ और विचार कर गर्भ के बालक पर प्रभाव डालती थीं; किन्तु दुःख है कि आज हमारी माताओं में वे बातें नहीं रह गयीं और न उक्त विषय की जानकारी ही रह गयी।

नैपोलियन बोनापार्ट कितना बड़ा बहादुर था, यह सब लोग जानते हैं। जब वह अपनी माता के उदर में था, तब उसकी माँ प्लूटार्क की लिखी हुई जीवनियों और ग्रोसियन वीर-साहित्य को मन लगाकर बड़े चाव से पढ़ा करती थी। उसकी माँ तेज घोड़े की सवारी करती, घोड़े तथा अपने पति के अधीन सैनिकों पर रानी की तरह हुकूमत करती और उन्हें अधिकार में रखती थी। क्या उसके इन कार्यों का प्रभाव उसके गर्भस्थ बच्चे पर न पड़ा होगा?

जिस समय नैपोलियन गर्भ में था, उसकी माँ अपने पति के

साथ लड़ाई पर गयी थी। दिनभर युद्ध करने के बाद जब उसके पति आते थे, तब वह लड़ाई का सारा हाल पूछा करती थी। इस प्रकार वह अपने पति के मुख से युद्ध-क्षेत्र की वीरता-पूर्ण घटनाओं को बड़े प्रेम से सुना करती थी। इन बातों को देखते हुए कौन कह सकता है कि माता के कार्यों का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर नहीं पड़ता ?

सन्तान के लिए माता का उदर महाविद्यालय के समान है। अथर्व वेद में लिखा है:—

**ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मागोलोकप्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम। गर्भो भूत्त्वामृतस्ययोना विंद्रोहंभूत्त्वाऽसुरांस्ततर्ह ॥**

जो ज्ञानामृत के केन्द्र-स्थान में गर्भरूप रहकर ब्रह्मचारी हुआ, वही ज्ञान, कर्म, जानता, प्रजापालक राजा और विशेष तेजस्वी परमात्मा को प्रकट करता हुआ इन्द्र बनकर अवश्यमेव राक्षसों का नाश करता है।

अस्तु; इस विषय पर एक नहीं सैकड़ों-हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं कि गर्भस्थ बालक पर कैसा-कैसा प्रभाव पड़ा है और पड़ता है; किन्तु अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। यहाँ पर एक बात का और ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि जिस प्रकार उत्तम शिक्षाओं का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ता है, उसी प्रकार

कुशिक्षाओं का भी। जो माता इस बात पर ध्यान नहीं रखती और टेढ़ा-मेढ़ा कार्य किया करती है, उसकी सन्तान किसी भी दशा में दुर्गुणों से खाली नहीं रह सकती। अब यदि इसके विषय में भी दो-एक उदाहरण दे दिया जाय तो अनुमानतः लाभदायक ही होगा।

आँखों देखी बात है कि एक जगह स्त्री-पुरुष में बराबर लड़ाई हुआ करती थी। स्त्री बड़ी फूहड़ थी। कोई भी काम सफ़ाई से करना तो मानो उसके स्वभाव-विरुद्ध था। यदि कोई पास-पड़ोस की स्त्री उससे कभी यह कहती कि तुम काम सफ़ाई से क्यों नहीं करतीं? तो वह फौरन ही जल-भुन कर खाक हो जाती और दिन-भर उस स्त्री के प्रति कुछ-न-कुछ बड़बड़ाया करती थी। कहती,—"चली हैं मुझे सहूर सिखलाने। यह न जानें कहाँ की सहूरदार हैं।" संयोग से उस स्त्री के लड़का पैदा हुआ। बचपन में बहुत रोता और छैलाता था। जब पाँच वर्ष का हुआ, तब तो ठीक उसमें उन सारी बातों का प्रत्यक्ष दर्शन ही मिलने लगा जो उसकी मां में थीं। वह लड़का बड़ी म्लेच्छता से रहता था। कभी-कभी तो वह यहाँ तक किया करता था कि कि अपने ही अंगरखे या गमछे पर टट्टी फिर देता और उसे गठरी की तरह बनाकर दिनभर अपने पास लिये रहता था। यदि कोई लड़का उसे टोंकता तो वह फौरन ही बिगड़ खड़ा होता और कहता,—'ई साला आमको कैता है ओर आप गू काता है (खाता) है।" इतना ही नहीं, वह अपने माँ-बाप को भी गालियाँ दिया करता था। इस प्रकार हूबहू वह लड़का

अपनी माँ के समान ही काम करता था और ठीक उसी तरह बातें भी करता था

वही स्त्री जब दूसरी बार गर्भिणी हुई तो उसके पति का देहांत हो गया। पति के मरते ही उस स्त्री में अपूर्व परिवर्त्तन हो गया। दिन-रात रोया करती, न किसी से कुछ बोलना न चालना, अकेले में बैठी रहती और रह-रह कर 'आह राम' कहा करती थी। अब उसका झगड़ना बिलकुल ही बन्द हो गया। वास्तव में यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो कभी-कभी मानस पर आकस्मिक चोट लगने के कारण मनुष्य के स्ववाव में विचित्र ही परिवर्त्तन हो जाता है। अन्त में उसके गर्भ से कन्या उत्पन्न हुई। तीन वर्ष की अवस्था में वह लड़की हमेशा और बच्चों से अलग चुपचाप बैठी रहा करती थी और यदि कोई बालक उसे छेड़ता था; तो वह झट रोने लगती थी। एकान्त में बैठना उसे बहुत प्रिय था। अब तो वह लड़की सयानी हो गयी होगी, बिना देखे यह कहना कठिन है कि अब उसका स्वभाव कैसा है; पर अनुमान से मालूम होता है कि अवश्य ही वह उसी स्वभाव की होगी।

इस लिए गर्भिणी को उचित है कि वह अपने गर्भस्थ बालक पर अच्छा संस्कार डाले। जिस विषय की शिक्षा देनी हो, उस विषय को ध्यान से सोचे-समझे और अपने मन में यह धारणा रक्खे कि इस विषय की शिक्षा मेरे गर्भस्थ सन्तान को मिल रही है। यदि बालक को गणित शास्त्र की शिक्षा देनी हो, तो गणित

शास्त्र पर, पदार्थ-विज्ञान की शिक्षा देनी हो तो पदार्थ विज्ञान पर, खगोल विद्या का धुरन्धर बनाना हो तो खगोल विद्या पर, इतिहासज्ञ बनाने की रुचि हो तो इतिहास पर, रसायन-शास्त्र का ज्ञाता बनाना हो तो रसायनशास्त्र पर, आध्यात्मिक शिक्षा देनी हो तो आध्यात्म-विषय, आयुर्वेद की शिक्षा देनी हो तो आयुर्वेद पर, योद्धा बनाना हो वो वीरतापूर्ण घटनाओं पर, कृषी-विद्या में प्रवीण बनाना हो तो खेती के विषय पर ही गर्भिणी को बातें करनी चाहिए, उसी विषय का चिन्तन करना चाहिए और उसी विषय में मन लगाना चाहिए।

यदि गर्भिणी स्त्री शान्ति के साथ रहे, कभी किसी से झगड़ा न करे, क्रोध न करे, बुरा भाव मन में फटकने न दे, ईश्वर को समूचे विश्व-ब्रह्मांड का रचयिता और जीवमात्र में शक्ति प्रदान करनेवाला समझ कर उस पर पूर्ण भक्ति रक्खे, किसी तरह की कठनाई पड़ने पर घबड़ा न जाय, हमेशा सत्य बोले, मन में किसी तरह का कपट छल न रक्खे, झूठ न बोले, प्राणिमात्र पर दया भाव रक्खे, दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूतिसूचक शब्द मुख से निकाले; कभी किसी को कोई कड़ी बात न कहे, दूसरों की भलाई करने में सदा तत्पर रहे, गर्भ की रक्षा करते हुए परिश्रम से मुख न मोड़े, किसी काम में आलस्य न करे, सदा प्रसन्नचित्त रहे, कृपणता न करे, किसी काम में व्यर्थ खर्च न करे, बड़ों का हमेशा आदर करे, यदि कोई कुछ कह दे तो प्रसन्नतापूर्वक उसे सहन कर

ले—प्रत्युत्तर में कोई कड़वी बात न कहे, हँसी-दिल्लगी में समय न बितावे, गम्भीरता से रहे, अधिक व्यसन न करे, सादगी से रहने में ही अपना गौरव समझे, सदा स्वच्छ रहे, पहले हानि-लाभ को सोच लिया करे पीछे उस काम को करे, लकटा न लगावे, स्वदेश, स्वजाति, और स्वकुटुम्ब पर प्रेम रक्खे, चापलूसी न करे, हर काम में और हर बाद में संतोष रक्खे, सदा निर्भीक रहे, सच बोलने में किसी से न डरे, प्रति दिन सोते जागते ईश्वर का स्मरण किया करे, प्रत्येक कार्य को नियमित समय पर किया करे, सात्त्विक भोजन करे, गन्दे गीत और गन्दी बातें न तो कभी अपने मुख से निकाले और न कान से सुने, ओछी और तुच्छ बातों पर ध्यान न दे, सदा ऊँचे ऊँचे विचारों पर मन लगावे, कभी किसी काम से हताश न हो, अपने मन में बड़े से बड़े काम को बिना किसी की सहायता के कर डालने की हिम्मत रक्खे, जो काम सामने आये उसे पूरा करके छोड़े, अपने को तुच्छ न समझे किसी बात का घमंड न करे, जो बात कहे, उसका पालन करे, तथा सब के साथ मित्र व्यवहार रक्खे, तो अवश्यमेव उसका बालक सर्व-गुणसम्पन्न, माता-पिता पर भक्ति रखनेवाला, और देश में कीर्ति फैलानेवाला, हो सकता है। उक्त बातों पर पूर्ण रीति से ध्यान देना और तदनुकूल चलाना ही गर्भस्थ बालक को शिक्षा देना है।

——: :——
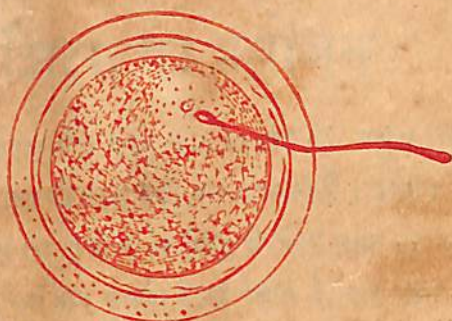
चित्र नं० ९

वीर्यकीट और रजोकोष का मिश्रण

चित्र नं० १०

प्रथम पक्ष

# उत्तम सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री शिक्षा का प्रयोजन

उत्तम सन्तान पैदा करने तथा बालकों को उत्तम शिक्षा देने के लिए स्त्री-शिक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है कि शिशु के लिए माता ही आदि गुरु है, और शिशु एक बार सबको होना पड़ता है, बाद लोग अन्यान्य अवस्थाओं में प्रवेश करते हैं, इस लिए माता ही जगत् की आदि गुरु है। यह कितने दुःख की बात है कि हमारे देश की माताएँ बिलकुल अशिक्षिता हैं। जिस स्त्री-जाति के ऊपर इतनी बड़ी जिम्मेदारी है, जो स्त्री-जाति अपने गुण और दोष से समूचे देश को आनन-फानन समुन्नत और पवित्र बना सकती है, उसकी आज कैसी शोचनीय दशा हो रही है कि सोचकर हृदय हिल जाता है। गुरु के अनभिज्ञ होने पर शिष्य के पण्डित होने की आशा करना दुराशा नहीं तो और क्या है? यदि आज हमारे देश में स्त्री-शिक्षा का काफी प्रचार होता, स्त्रियाँ शिक्षिता होतीं, अपने दायित्व को समझती होतीं तो देश की इतनी पतित और घृणित दशा कदापि न होने पाती। उन्हीं के मूर्खा होने के कारण आज चारों ओर स्कूलों में, कालेजों में, घरों में, शहरों में, गाँवों में, खेतों में, कारखानों में, राह में, तीर्थों में, धर्मशालाओं में सब जगह पापाचार हो रहा है।

सुधारक चिल्लाते चिल्लाते अपने जीवन की आहुति दे रहे हैं, लेखक-गण लेखनी रगड़ते-रगड़ते आँखें फोड़ रहे हैं; किन्तु फल कुछ भी नहीं हो रहा है। कारण? कारण यही कि स्त्री-शिक्षा का अभाव! यदि आज हमारी मातायें शिक्षिता होतीं, तो यह अनर्थ कभी न होता। क्योंकि वे बचपन से बच्चों को उचित शिक्षा देतीं जिससे स्वाभाविक ही सब लोग सदाचारी और कर्त्तव्यपरायण होते। 'न रहता बाँस और न बजती बाँसुरी।' फिर न तो ऐसे नीचतापूर्ण कार्य ही होते और न उनके सुधारने की आवश्यता ही पड़ती।

बच्चे अपनी माता की देख-रेख में ही अधिक रहते हैं। उनकी देखभाल जितनी माता कर सकती है, उतनी और कोई नहीं कर सकता। माताओं की अशिक्षा के कारण बच्चे अपनी तबीयत के अनुसार खेलते-कूदते और कुसंगति में पड़कर बुरी आदतें डाल लेते हैं। माताएँ उधर ध्यान नहीं देतीं। यदि उनमें शिक्षा की कमी न होती और सन्तान-शिक्षा आदि की विधियाँ वे जानती होतीं तो इस ओर उनका पूरा ध्यान रहता। हरवक्त बच्चों पर कड़ी नजर रखतीं और अपने पास उन्हें बैठाकर अच्छी-अच्छी बातों की शिक्षा देतीं। उस अवस्था में बचपन से ही प्रत्येक जीवन आदर्श के साँचे में ढला हुआ निकलता और एक अपूर्व ही दृश्य दिखलायी पड़ता। तब न तो देश में इतना दुराचार ही फैला हुआ दिखलायी पड़ता और न इस प्रकार के शक्तिहीन और अल्पायु मनुष्य ही होते। महाकवि कालिदास ने लिखा है—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।

स्माइल्स ने लिखा है कि,—"भावी सन्तान की स्वास्थ्यरक्षा का भार ईश्वर की ओर से स्त्रियों को ही सौंपा गया है । शारीरिक स्वास्थ्य में ही चरित्र-बल और मानसिक शक्ति की पवित्रता निहित है ।

किन्तु आज ऐसी कितनी स्त्रियाँ हैं जो ईश्वर की ओर से सौंपे गये इस भार को वहन करने में समर्थ हैं ? वे इस बात को जानतीं ही नहीं कि किस प्रणाली से सन्तान का पालन तथा उनकी शिक्षा का विधान होना चाहिए । इस लिए कभी-कभी अपनी सन्तान की भलाई करती हुई भी वे अपनी अनभिज्ञता के कारण उसकी बुराई कर डालती हैं । सभी माताएँ यह चाहती हैं कि हमारे बच्चे सुन्दर हों, दस में गिने जाने के लायक हों, दीर्घजीवी हों । इसके लिए अपनी-अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार वे कोई यत्न उठा भी नहीं रखतीं; किन्तु जिस बात को वे स्वयं नहीं जानतीं, उसमें वे बेचारी क्या कर सकती हैं ? अपनी इस अनभिज्ञता के कारण आज वे भी महान दुःख भोग रही हैं । एक तो नासमझी के कारण उनके कितने ही बच्चे असमय में ही कालकवलित हो जाते हैं और दूसरे जो जीवित भी रहते हैं उनमें बहुत ही कम ऐसे निकलते हैं, जो माता-पिता को सुख पहुँचाते, विद्वान तथा सदाचारी होते हैं । यदि स्त्रियाँ शिक्षिता बना दी जायँ तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि वे अपने बच्चों को तन-मन-धन से योग्य बनाने में कोई भी बात यथा-

शक्ति उठा न रक्खें। पुरुष सन्तान-पालन विधि को जानते हुए भी लापरवाही कर सकता है, पर स्त्री ऐसा कभी भी नहीं कर सकती, यह निश्चय है।

हाय ! सन्तान-पालन ही स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य है और उसे ही वे अबलायें नहीं जानतीं। एक बंगीय विद्वान ने लिखा है:—"मातृत्व ही नारी-जीवन का प्रधान उद्देश्य और चरम लक्ष्य है। उनके लिए सबसे बढ़कर गौरव की बात यही है कि वे मातायें हैं। गर्भ-धारण तथा सन्तान-पालन से बढ़कर महत्त्वपूर्ण कार्य नारी-जीवन के लिए दूसरा नहीं है; क्योंकि इन्हीं दो बातों से सृष्टि की रक्षा होती है। इसीसे इनका महत्त्व और गौरव भी अधिक है।

किन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि हिन्दू-जाति आज अपनी कन्याओं को इस योग्य होने ही नहीं देती कि वे समय आने पर सच्ची माताएँ बन सकें और माता की तरह जीवन यापन कर सकें। क्या यह समाज के लिए अत्यन्त लज्जा की बात नहीं है ? नाथ ! प्रभो !! भगवान !!! वह दिन कब आवेगा, जब हिन्दू जाति को अपनी यह भद्दी भूल स्पष्ट रीति से दिखलायी पड़ेगी, और वह इस त्रुटि को दूर करने के लिए स्त्री-शिक्षा प्रचार करने में जी-जान से, कमर कसकर तैयार होगी ? क्या देश की दुर्दशा की आह भरी पुकार तुम्हारे कानों तक अभी भी नहीं पहुँची ? कितना सतावोगे जगदीश्वर ! तुम्हारे इस प्रकार सोते रहने से इस अनाथ देश की रक्षा कौन करेगा दीनबन्धु ! क्या कलि के प्रभाव से तुम भी असमय

में ही सोने लग गये ? तुम तो प्रलयकाल में सोया करते थे, फिर यह क्या कह रहे हो ? क्या सृष्टि का काम करते-करते तुम्हें भी थकायी आ गयी ? किन्तु वेद तो कहता है कि तुम सदा एक रस रहते हो ? सब कुछ करते हुए भी अकर्त्ता हो ? जरा इधर भी निगाहें फेरो लला ! देखो हिन्दू-समाज की दुर्दशा से, दुर्दशा की भी दुर्दशा हो रही है— वह भी अब चिल्लाने लग गयी है ! यदि तुम विश्राम ही करना चाहते हो तो करो विश्राम, मुझे कुछ नहीं कहना है; पर एक बात इस अकिंचन की सुन लो ! यही कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो प्रलय करके चैन से विश्राम करो, व्यर्थ ही अपने सिर पर पहपट क्यों कराते हो ! तेज-स्वरूप होकर डरो न नाथ ! अन्धकार तो तुम्हारे दृष्टि-निक्षेप से ही भाग जायगा। तनिक अपने वचन की ओर निगाहें फेरोः—

**यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥**
**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥**

—श्रीमद्भगवद्गीता

कहो, अब इससे बढ़कर उपयुक्त समय और कौन सा आवेगा ? बता दो न ? भारतीय देवियाँ अज्ञता के कारण नाना प्रकार की यन्त्रणायें भोग रही हैं, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह तथा बेमेल विवाह का दमन-चक्र जोरों से चारों ओर चल रहा है, दुराचार का प्रचंड

प्रवाह प्रलय करने के लिए विकराल स्वर में 'हू हू' कर रहा है, फिर भी अभी तुम किसी अलक्षित समय की प्रतीक्षा कर रहे हो ! उतना ही गुदगुदाओ, जितना नीक लगे लला !

ओफ ! आदि गुरु की खराबी से ही आज हम दासत्व की शृंगला में भी जकड़े हुए हैं। हम में शक्ति नहीं बल नहीं भ्रातृत्व बन्धुत्व नहीं, देश-प्रेम नहीं, स्वाभिमान नहीं, एक स्वर में बोलने का साहस नहीं—कुछ भी नहीं ! है एक वस्तु—कायरता ! यदि हमारी माताओं में बुद्धि होती, जानकारी होती, तो पहले ही से उनके द्वारा उक्त वस्तुएँ हमें प्राप्त रहतीं और अवसर पड़ने पर सिंह की तरह दहाड़ कर भारतमाता की इकतीस कोटि सन्तान रण-भूमि में शत्रु पर विजय प्राप्त कर जननी-जन्म-भूमि के नत-मस्तक को ऊपर उठाने में समर्थ होते। फिर संसार हमारी वीरता के गीत गाता और हम मस्त कानों से उन गीतों का आनन्द लेते ! पर अभी तो यह सब दुरासा मात्र ही है। जमीन पर रहकर बादल चाटने की कोशिश करना निरी मूर्खता है। यदि ऐसी अभिलाषा देशवासियों के मन में हो कि 'हम मरमिटेंगे पर दास बनकर जीवित कभी न रहेंगे' तो सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि देश में स्त्री- शिक्षा का प्रचार किया जाय—ताकि देशमें वीर, साहसी और स्वाभिमानी बच्चे पैदा हों। किन्तु यदि ऐसा भाव देशवासियों का हो जाय तो फिर दासता टिक ही कैसे सकती है। ऐसी अभिलाषा तो वीर साहसी देश के लोग ही कर सकते हैं।

याद रहे कि सारे विषयों की शिक्षा केवल माता से ही प्राप्त हो जाती है। शिशु के जीवन पर माता का ही प्रभाव सबकी अपेक्षा अधिक पड़ता है। यदि माता पढ़ी-लिखी हो तो वह गर्भ से लेकर पाठशाला या स्कूल में जाने के योग्य होने तक अपने बच्चे को इतनी शिक्षा दे सकती है, कि उस बच्चे को देखकर लोगों को दंग रह जाना पड़े। जिस प्रकार बालक थोड़ी ही उम्र में सुनते-सुनते अपनी मातृभाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार वह बड़ी बड़ी बातों को आसानी से माता के पास रहकर ही सीख सकता है। बचपन में पड़े हुए संस्कार कितने पुष्ट होते हैं, यह किसी से बतलाने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि इस बात को सभी लोग जानते हैं कि कोई भी वस्तु कोमल रहने पर ही अपनी इच्छा के अनुकूल झुकायी या बनायी जा सकती है; पर कठोर हो जाने पर उसके झुकाने का प्रयत्न करना व्यर्थ जाता है—बल्कि कभी-कभी वह अधिक जोर दे देने के कारण टूट भी जाती है; ठीक यही हाल मानव-शरीर का है। बचपन में तो चाहे जैसा उसे बनाया जा सकता है, पर शुद्ध हृदय पर वाहियात के कुसंस्कारों की मैल बैठ जाने पर कठिन हो जाता है। इस लिए माता का पूर्ण विदुषी होना जरूरी है। केवल स्तन-पान कराकर बच्चे का पोषण करने और लाड़-प्यार से उसकी तबियत खुश रखने से ही बच्चे की उन्नति कभी नहीं हो सकती। बच्चे को योग्य बनाने के लिए माँ की सहायता मिलना विशेष प्रयोजनीय है।

रामायण और महाभारत के उपाख्यान हमारे देश की स्त्रियों को अत्यन्त प्रिय हैं। इन दोनों को छोड़कर गार्हस्थ्य-धर्म की शिक्षा देनेवाले ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थ इस देश में अन्य नहीं। सीता और सावित्री के दुःख, दमयन्ती और चिन्ता का पातिव्रत्य एवं नाना प्रकार के कष्टों के विवरण आँसुओं से लिखे गये हैं। इन कथाओं को पढ़कर स्त्रियों का स्वाभाविक कोमल हृदय पिघले बिना नहीं रहता। उपन्यासों के पढ़ने से भी कितनी ही बार कारुणिक घटनाओं पर आँख से आँसू लुढ़क पड़ते हैं। किन्तु पौराणिक कथाओं और वर्त्तमान उपन्यासों में अन्तर है। आधुनिक लेखक-मण्डली कहीं-कहीं केवल पाठकों के मन में कष्ट को जागृत करने के लिए ही किसी परिवार की घटना का वर्णन करते हैं, केवल दुःख-पूर्ण घटनाओं को पढ़कर मन में दुःख पैदा करने से क्या लाभ ? जिस प्रकार छोटे लड़के उड़ने और फुदकने वाले जन्तुओं को पकड़ कर उनके पंख और पैरों में खोदकर आमोद पाते हैं, आजकल के अधिकांश लेखक भी उसी प्रकार किसी सुन्दरी युवती या युवक के एक दुःख से दूसरे दुःख में पड़ने के दास्तान को कारुणिक भाषा में वर्णन कर सन्तुष्ट होते हैं। किन्तु इस प्रकार दुःखद घटनाओं से क्या लाभ ? यदि धर्म के लिए अथवा किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए कोई आत्मोत्सर्ग करे और कष्ट भोगे, तब तो उस घटना से पाठक-पाठिकाओं का मन समुन्नत होता है और हृदय में धर्मभाव उत्पन्न हो जाता है, अन्यथा कुछ नहीं। स्वामी को प्राप्त करने के

लिए बेहुला अथवा सावित्री ने जिन कष्टों को स्वीकार किये थे, उन्हें पढ़कर किस स्त्री का मन विस्मय और उच्च भावों से पूर्ण नहीं हो उठेगा ? कोई तो पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए बन गया है, कोई बाल्यावस्था में ही सर्वस्वत्यागी योगी होकर ईश्वराराधन में प्रवृत्त हुआ है और किसी ने नाना प्रकार के ऐश्वर्य-प्रलोभनों को पैरों से ठुकरा कर पातिव्रत्य-धर्म का पालन करके जगत के सामने अपने को रख दिया है। किन्तु आजकल के उपन्यासों में कहीं तो बहू ने अपनी सास को विष देकर निष्ठुरतापूर्वक मार डाला है और कहीं सास ने ही बहू की हत्या की है। ऐसे वृत्तान्तों को पढ़ने या सुनने से क्षणभर के लिए उत्तेजना या कष्ट हो सकता है, किन्तु इनसे लाभ कुछ भी नहीं हो सकता। इस लिए स्त्री-समाज को उत्तमोत्तम शिक्षाप्रद ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए और अच्छे-अच्छे उपाख्यानों को आपस में कहना-सुनना चाहिए।

अब हम यहाँ पर थोड़ा सा इस बात पर भी विचार करेंगे कि स्त्री-शिक्षा किस ढंग की होनी चाहिए। वास्तव में यह विषय बड़ा ही कठिन है। यहाँ को विद्वन्मण्डली अभी तक एक राय नहीं हो सकी है। इस लिए अभी हम सिर्फ इतना ही कहेंगे कि स्त्रियों में प्रत्येक विषय की साधारणतया जानकारी होनी चाहिए। जैसे, गणित का साधारण ज्ञान भी होने से वे अपने बच्चों को हँसाते-खेलाते, गिनती, पहाड़ा, सवैया, पौना, डयौढ़ा, जोड़, बाकी आदि जबानी पढ़ा सकती हैं, साथ ही छोटे-छोटे हिसाब भी बतला सकती

हैं। उदाहरण लीजिये, एक पैसे का ३ आम तो ३० आम के कितने पैसे आदि। इस प्रकार की शिक्षा से छोटी अवस्था में सौदा वगैरह ला सकते हैं और बिना भूल किये सारी चीजें उचित मूल्य में खरीद सकते हैं।

सांसारिक कामों के लिए स्त्रियों को इतिहास की जानकारी रखने की तो कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, पर सन्तान-सुधार की दृष्टि से थोड़ा इतिहास का ज्ञान रखना भी जरूरी है। तभी वह सम्राट् अशोक, महाराणा प्रताप, महाराज शिवाजी प्रभृति बड़े-बड़े राजाओं की कीर्ति कथा एवं शंकराचार्य, बुद्ध, चैतन्य, कबीर, नानक आदि धर्म गुरुओं की जीवनी अपने बच्चों को बचपन में ही कण्ठ कराने में समर्थ हो सकती हैं। इतिहास की तारीख और सन् अथवा मामूली घटना जानने को स्त्री को विशेष आवश्यकता नहीं है। साधारणतया भारतवर्ष का इतिहास धारावाहिक रूप से जानना ही बहुत है। इसके लिए इतिहास की बड़ी-बड़ी जिल्दें यदि स्त्रियाँ न भी पढ़ें तो कोई आपत्ति नहीं, जिस पुस्तक में गल्प रूप में भारत का इतिहास थोड़े में लिखा हो, वही पढ़कर जान लें। इस ढङ्ग की पुस्तकें अंग्रेजी में तो बहुत सी हैं। बँगला में भी इधर कुछ पुस्तकें निकली हैं; पर हिन्दी में अभी ऐसी पुस्तकों का एक प्रकार से अभाव सा है। इस लिए हिन्दी-प्रेमियों का ध्यान इस ओर अवश्य जाना चाहिए। यह काम जितने शीघ्र किया जाय उतना ही अच्छा है।

भूगोल के सम्बन्ध में भी वही बात है; गोलमटोल पृथ्वी का नकशा जान लेना, बड़े-बड़े राज्य और उसकी राजधानी, पर्वत समुद्र और नदियों का ज्ञान लेना ही स्त्रियों के लिए पर्याप्त है। यदि वे इससे अधिक जानें तो और भी अच्छा, नहीं तो इतना तो जरूर ही जानना चाहिए। इसी प्रकार अन्यान्य विषयों का भी स्त्री को ज्ञान होना चाहिए।

——*——

# प्रेम

स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध की जड़ प्रेम है। प्रेम बड़ा ही विचित्र पदार्थ है। क्योंकि इसमें स्वर्ग और नर्क दोनों ही छिपे हैं। सच्चा प्रेम वही है, जिसमें किसी प्रकार का स्वार्थ न हो। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमिकों से प्रेम का बदला नहीं चाहता। वह तो यह जानता ही नहीं कि उसे अपनी प्रेमिका से क्यों इतना प्रेम है। क्योंकि उसे देखते ही उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। शिव-पार्वती में ऐसा ही प्रेम था। एकबार पार्वती के पिता दक्ष प्रजापति ने उनके सामने शिवजी की निन्दा की थी, इस लिए पार्वती ने अपना प्राण दे दिया। जानकी जी ने सच्चे प्रेम के कारण ही अपने पति भगवान रामचन्द्र के साथ बनों में फिरीं। महारानी दमयन्ती ने राजा नल के लिए साधारण कष्ट नहीं सहा। पति-पत्नी का पवित्र प्रेम ही प्रेममय परमेश्वर के प्रेम का विकाश है। इसीसे जगत को प्रेम

करने की शिक्षा मिलती है। पति-पत्नी का सच्चा प्रेम सामाजिक या शारीरिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक है। शरीर-सुख अथवा तुच्छ भोग-विलास के लिए जो प्रेम होता है, वह प्रेम कोई चीज नहीं है और न तो अधिक काल तक ठहरता ही है। पवित्र प्रेम नित्य नये रस से पति-पत्नी के हृदय को सींचा करता है।

सच्चा प्रेम स्त्री-पुरुष के मन और हृदय को एक बना देता है। प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है, अतः ऐसे स्वतन्त्र दो हृदयों को एक बना देना आसान काम नहीं है। जब तक दोनों प्रेमियों के लक्ष्य, भाव, धर्म, अवस्था एक न हों, तब तक वास्तविक मिलन होना सम्भव नहीं। किन्तु दुःख की बात है कि आजकल आदर्श विवाह सम्बन्ध में लोग उक्त बातों पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। इस लापरवाही का फल यह हो रहा है कि कितने ही स्त्री-पुरुषों में ठीक उतना ही भेद दिखलायी पड़ता है, जितना कि पशुओं में। न तो स्त्री अपने पति पर अनुराग रखती है और न पुरुष अपनी स्त्री पर। यही कारण है कि आजकल जो सन्तानोत्पत्ति हो रही है, वह मूर्ख, प्रेम-हीन, माता-पिता पर अश्रद्धा रखनेवाली और अनेक प्रकार के दुर्गुणों से भरी हुई। क्योंकि माता-पिता के ही रक्त, मांस, बल, वीर्य और स्वभाव को लेकर ही तो बच्चे पैदा होते हैं; जिस बात का माँ-बाप में ही अभाव है, वह बात उनमें कहाँ से आ जायगी?

यहाँ पर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि जब यही बात है तब फिर मूर्ख और क्रूर माँ-बाप से विद्वान् और दयालु बच्चा कैसे पैदा हो

जाता है ? प्रश्न बहुत ही ठीक है। वास्तव में ऐसा बहुधा देखने में आता है कि विद्वानों के बच्चे मूर्ख औ मूर्खों के लड़के विद्वान निकल जाते हैं। किन्तु यह बात भी ऊपर के कथन से विपरीत नहीं है। गम्भीरता-पूर्वक विचार करने से मालूम होगा कि गर्भाधान के समय माता-पिता में तथा उसके बाद माता में वे बातें मौजूद थीं जो बालक में पायी जाती हैं—चाहे माँ-बाप ने उनका पालन जानकर किया हो अथवा बिना जाने; चाहे वे बातें किसी कारण-वश उस समय उपस्थित हो गयी हों अथवा स्वाभाविक ही।

——:*:——

## व्यायाम

जीवन को सुखी और स्वस्थ रखने के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को व्यायाम अवश्य करना चाहिए। व्यायाम किये बिना शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता और शरीर अस्वस्थ रहने से पहले तो सन्तानोत्पत्ति होती ही नहीं और यदि होती भी है तो रुग्ण और अल्पायु। उत्तम सन्तान पैदा करने की इच्छा रखनेवालों के लिये व्यायाम एक बड़ी महत्त्वपूर्ण और प्रयोजनीय वस्तु है। दुःख की बात है कि हमारे देश में स्त्रियों के व्यायाम की प्रथा बिलकुल ही लुप्त हो गयी है। यही कारण है कि हमारी गृह-देवियाँ अपनी रक्षा स्वयं न करके दूसरों के आश्रित रहती हैं। भारत का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि पहले भारतवर्ष की देवियाँ कितनी

साहसी और निर्भीक थीं। महाराज दशरथ हार गये होते यदि महारानी कैकेयी अर्धांगिनी धर्म का पालन करते हुए उनके रथ का सम्भार न कर सकी होतीं; झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई के वीरत्व से सारा संसार भली-भाँति परिचित है किन्तु क्या आज एक भी स्त्री हमारे देश में ऐसी है जो आपत्तिकाल में कैकेयी की भाँति अपने पति की सहायता कर सके? क्या ऐसी भी कोई स्त्री है जो देश की स्वतन्त्रता के लिए महारानी लक्ष्मीबाई की तरह वीरतापूर्वक शत्रुओं का मुकाबला कर सके? सम्भवतः यही उत्तर मिलेगा कि,—नहीं।

यदि गम्भीरता के साथ विचार किया जाय कि हमारी गृह-देवियाँ इस प्रकार पौरुषहीन क्यों हो गयीं, तो पता चलेगा कि उनमें न तो विद्या है न शक्ति ही है। यही कारण है कि विधर्मी उन पर दिन रात आक्रमण कर रहे हैं, उनके सब से प्यारे सतीत्व धर्म का अपहरण कर रहे हैं और वे बेचारी निस्सहाय होकर सब कुछ सहन कर रही हैं। यदि उनमें अपनी रक्षा करने की बुद्धि होती, यदि उनके शरीर में धर्म पर आक्रमण करनेवाले का सामना करने के लिए बल होता तो किसकी हिम्मत पड़ती जो उनकी ओर आँख उठाने का साहस करता? किन्तु यह बात तबतक स्वप्नवत ही रहेगी, जबतक स्त्रियाँ व्यायाम का महत्त्व न समझ जायँगी और व्यायाम करके अपने आत्म-रक्षार्थ शरीर-बल न बढ़ावेंगी।

इसके लिए पुरुषों को चाहिए वे व्यायाम का महत्त्व अपने

घर की स्त्रियों को समझावें और उस पर उन्हें आरूढ़ करें। पुरुष प्रोत्साहन के बिना स्त्रियों का इधर ध्यान देना असम्भव है। कारण यह कि इस प्रथा का लोप हो जाने के कारण उनमें संकोच की मात्रा इतनी अधिक हो गयी है कि वे व्यायाम कर ही नहीं सकतीं। अधिकांश स्त्रियाँ तो व्यायाम का नाम सुनते ही दिल्लगी समझ बैठेंगी, "भला स्त्रियाँ कसरत करेंगी, कैसा अन्धेर है! अब घोर कलियुग छा गया, इसी से ऐसी उल्टी बातें लोग कहने लगे हैं।" जिस बात की या काम की मनुष्य की आदत नहीं रहती, उसके करने में उसे स्वाभाविक ही बड़ा अनुकुस और संकोच मालूम होता है।

स्त्रियों के व्यायाम की बात सुनकर कितने ही लोग हँसेंगे और कहेंगे कि क्या दंड-बैठक करना स्त्रियों को शोभा देगा? असल में तो दंड-बैठक करने के लिए कहा ही नहीं जा रहा है और यदि कहा भी जाय तथा वे इसे करने भी लगें तो इसमें कुशोभा की कौन-सी बात है। इस पर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि जब दंड-बैठक के लिये नहीं कहा जा रहा है, तब वे व्यायाम ही कौन-सा करेंगी? ऐसा कहनेवालों को यह मालूम ही नहीं है कि व्यायाम किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार का होता है।

व्यायाम का अर्थ है—"नाना प्रकार के अंग-संचालन द्वारा प्रत्येक अंग पर जोर डालकर परिश्रम करना और उन्हें सुदृढ़ बनाना। यह व्यायाम दो तरह का होता है। एक नियमित व्यायाम

और दूसरा अनियमित व्यायाम। व्यायाम के नियमों को ध्यान में रखकर जो व्यायाम किया जाता है उसे नियमित व्यायाम कहते हैं और उसके विपरीत जो व्यायाम होता है उसे अनियमित व्यायाम कहते हैं। लोहार हथौड़ा या घन लेकर लोहा पीटने में बहुत अधिक परिश्रम करता है पर यह उसका अनियमित व्यायाम है। इस व्यायाम से उसका शरीर स्वस्थ और बलवान नहीं होता। पहलवान दंड-बैठक करके मुद्गर फेर कर तथा कुश्ती लड़कर परिश्रम करता है, यह उसका नियमित व्यायाम है। इसमें शरीर सुडौल होता है और अंग-प्रत्यंग बलवान होता है। इस विभिन्न परिश्रम के दो कारण प्रधान हैं। एक तो यह कि अनियमित व्यायाम में प्रति दिन का नियम नहीं रहता, कभी परिश्रम होता है और कभी नहीं होता तथा कभी बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है और कभी बिलकुल ही कम; किन्तु नियमित व्यायाम नियम-पूर्वक प्रति दिन होता है और परिश्रम में बहुत अधिक अन्तर नहीं पड़ता। उसके किंचित् न्यूयाधिक होने की बात दूसरी है। दूसरा कारण परिमाण की विपरीतता वा यह है कि अनियमित व्यायाम में परिश्रम करने वाले का ध्यान बल संचय की ओर नहीं रहता, बल्कि काम पूरा करने की ओर रहता है। "गले पड़ी ढोल बजाये सिद्ध।" इस कहावत के अनुसार उसे तो मर-जीकर काम पूरा करने की धुन रहती है: किन्तु नियमित व्यायाम करनेवाला मनोयोगपूर्वक बल संचयन की ओर ही ध्यान रखता है; उसका परिश्रम करने का एक मात्र

उद्देश्य ही होता है, बल-संचय करना। यही कारण है कि दोनों प्रकार के व्यायाम का एक दूसरे से विपरीत परिणाम होता है। क्योंकि मनोयोग ही तो प्रधान वस्तु है; इसी के द्वारा तो मनुष्य शक्ति को खींचकर अपने शरीर में भरता और असाध्य से असाध्य कामों को साध्य कर दिखलाता है। जिस काम में बल-संचय की ओर लक्ष्य ही नहीं है, काम पूरा करने की ओर मन का झुकाव है, उसके करने से बल का संचय क्योंकर हो सकता है; उससे तो बस काम ही पूरा हो सकता है; क्योंकि उसी पर मन का झुकाव रहता है। इस मनोयोग की कितनी बड़ी महिमा है तथा इसमें कितनी शक्ति है, इसका उल्लेख पीछे विस्तारपूर्वक किया जा चुका है; अतः अब यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नहीं है।

व्यायाम करते समय इच्छा-शक्ति को अपने अंगों की ओर लगाना चाहिए। ऐसी धारणा रखनी चाहिए कि हमारे शरीर में बल का संचार हो रहा है। इच्छा-रहित व्यायाम लाभकारी नहीं होता, यही कारण है कि बहुत से लोगों को व्यायाम के लाभों से वंचित रह जाना पड़ता है। जिस अंग को जितना मजबूत बनाना हो, व्यायाम करते समय उस अंग में उतनी ही अधिक इच्छाशक्ति लगानी चाहिए।

दस वर्ष की अवस्था तक किसी प्रकार का व्यायाम करना उचित नहीं है; इस अवस्था तक जो स्वाभाविक व्यायाम दौड़ने-धूपने और खेलने-कूदने में हो जाता है, वही यथेष्ट है। ग्यारहवें

साल से सोलह वर्ष की अवस्था तक स्वच्छ वायु सेवन और दौड़ने की कसरत की ओर ध्यान देना चाहिए। इस अवस्था तक दण्ड-बैठक करना अच्छा नहीं है। क्योंकि सोलह वर्ष तक शरीर की नस नाड़ियाँ और हड्डियाँ बहुत कोमल रहती हैं; अन्य प्रकार के व्यायाम (जैसे, दंड-बैठक आदि) से उन्हें रूढ़ नहीं बनाना चाहिए। सोलह के बाद दंड-बैठक द्वारा कसरत करना उत्तम है। यह व्यायाम-विधि पुरुषों के लिये है। स्त्रियों के लिए आगे चलकर बतलाया जायगा। दंड बैठक ५० से १००—१२५ तक करना चाहिए। यह संख्या पूर्ण युवक के लिए है। कुश्ती लड़ना सबसे उत्तम व्यायाम है; क्योंकि इससे हड्डी-हड्डी पर यथेष्ट और उचित जोर पड़ता है। वृद्धावस्था में दंड-बैठक का व्यायाम नहीं करना चाहिए। इस अवस्था में अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाते हैं, अतः व्यायाम से उनको हानि पहुँचती है। हाँ अपनी शक्ति के अनुसार प्रातः-सन्ध्या टहल कर परिश्रम कर लेना वृद्धों की स्वस्थता के लिए भी अत्यन्तावश्यक है।

प्रारम्भ करते ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। इससे ज्वर उत्पन्न हो जाने की बहुत बड़ी सम्भावना बनी रहती है। व्यायाम थोड़े से शुरू करके धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। यह नियम स्त्री-पुरुष दोनों को ध्यान में रखना चाहिए।

तेल की मालिश भी एक प्रकार का व्यायाम है। इससे खून में गर्मी पैदा होती है। कड़वे तेल की मालिश सर्वोत्तम है। इसकी

रगड़ से शरीर के छिद्रों का मल निकल जाता है और चमड़े पर रहने वाले कीड़े मर जाते हैं।

व्यायाम करने का सबसे अच्छा समय प्रातःकाल है। शौचादि से निवृत्त होकर व्यायाम करना चाहिए। कुछ लोग स्नान के पहले व्यायाम करते हैं और कितने ही लोग स्नान के बाद। स्नान करने के बाद व्यायाम करना अधिक उत्तम है। यदि व्यायाम के बाद स्नान करना हो तो कम से कम एक घण्टा ठहर कर स्नान करना उचित है। साधारण मनुष्य के लिए आधा घण्टा व्यायाम करना जरूरी है। भोजन करने के बाद किसी प्रकार का व्यायाम नहीं करना चाहिए।

इतना लिख चुकने के बाद अब हम स्त्रियों के व्यायाम पर विचार करना चाहते हैं। स्त्रियों को किस प्रकार का व्यायाम करना चाहिए। इस पर विचार करना आवश्यक है। स्त्रियों का स्वाभाविक व्यायाम है घर का काम-काज करना, जैसे चक्की चलाना, कूटना आदि। इससे बहुत-कुछ कसरत स्त्रियों की हो जाती है। इसी कसरत के कारण देहात की स्त्रियाँ हृष्ट-पुष्ट और निरोग रहती हैं तथा शहर में रहनेवाली स्त्रियाँ यह कसरत न करने के कारण निर्बल और रुग्णा रहती हैं।

किन्तु इतना ही व्यायाम स्त्रियों की स्वस्थता के लिए यथेष्ट नहीं है। उन्हें उचित है कि वे धन्धे में होनेवाले व्यायाम के अति-

रिक्त थोड़ी देर तक नियमित रूप से केवल शरीर स्वस्थ रहने के उद्देश्य से व्यायाम किया करें।

स्त्रियों का व्यायाम पुरुषों के व्यायाम से भिन्न होना चाहिए। भिन्न क्यों होना चाहिए, विस्तार-भय से इस पर यहाँ विचार नहीं किया जायगा; पर इतना तो अवश्य कहा जायगा कि दोनों कार्यों में विभिन्नता होने के कारण व्यायाम-प्रणाली में विभिन्नता रखना आवश्यक है। हमारी राय है कि स्त्रियाँ पुरुषों की भाँति दंड-बैठक न करके तथा मुद्गर न फेरकर यदि लिम्नलिखित तरीके से व्यायाम करें, तो उनकी तन्दुरुस्ती के लिए बड़ा हो लाभ हो सकता है:—

जिस प्रकार बालक को दस वर्ष की अवस्था तक व्यायाम करने के लिए इस प्रकरण में बतलाया गया है, उसी प्रकार बालिकाओं को भी इस अवस्था तक वही व्यायाम करना चाहिए। हाँ, बालकों की अपेक्षा बालिकाओं का दौड़ना-धूमना कम अवश्य होना चाहिए। कारण यह कि उन्हें और काम भी सीखना रहता है। बालकों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए जितना समय मिलता है उतना बालिकाओं को नहीं; इस लिए उन्हें अधिक समय व्यायाम की ओर लगाकर और कामों से अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए। ग्यारह की अवस्था से नीचे के व्यायामों को शुरू करना चाहिए।

१—सबेरे शौचादि से निवृत्त होकर स्त्रियों को किसी एकान्त और हवादार कमरे में नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए। सीधी खड़ी होकर दोनों हाथ ऊपर उठाओ; इस प्रकार उठाओ,

मानो तुम ऊपर की कोई चीज पकड़ने के लिए प्रयत्न कर रही हो इस समय दोनों पैर जुड़े रहें। पूरे तनाव के साथ दो मिनट तक हाथ ऊपर उठाये खड़ी रहो; बाद धीरे-धीरे कड़ाई के साथ दोनों हाथ के पंजों को कन्धे पर लाओ फिर बल डालते हुए उन्हें छाती की सीध में ले जाओ और समेट कर पंजों को छाती पर लाओ; पश्चात् दोनों हाथ नीचे गिराओ और तनाव के साथ ही पीछे की ओर ले जाकर सीध में लाओ। इस प्रकार चार-पाँच बार करने से भुजाएँ सुडौल और बलयुक्त हो जाती हैं।

२—दोनों पैर सटाकर एड़ियों को ऊपर उठाओ और पैरों के पंजों पर शरीर का सारा भार लाद दो। पैरों को खूब तना रक्खो। फिर पंजों से ही पाँच सात कदम आगे जाकर पीछे लौट आओ। लेकिन जाने और लौटने में पैरों का तनाव जरा भी कम न होने पावे। दो तीन बार प्रतिदिन ऐसा करने से पैर मजबूत हो जाते हैं और जंघाओं में चिकनाहट आ जाती है। दो-तीन बार का मतलब यह न समझो कि दिनभर में दो-तीन बार ऐसा करने के लिए कहा जा रहा है बल्कि व्यायाम के समय में बतलाये क्रमों से कई बार करने के लिए कहने कहने का तात्पर्य है।

३—साँस खींचकर छाती जितनी फूल सके उतनी उसे फुलाओ। बाद कुछ देर तक यानी जितनी देर तक सांस को रोक रखने में कष्ट न हो, उतनी देर तक रोके रहो और छोड़ दो। इस प्रकार तीन-चार बार करो। इससे छाती चौड़ी हो जाती है। प्रत्येक अंग

का व्यायाम करते समय यह धारणा रक्खो कि मेरे अमुक अंग में शक्ति आ रही है। जैसे, साँस खींचकर छाती की कसरत करते समय यह सोचो कि सीना चौड़ा और पुष्ट होता जा रहा है; हाथ की कसरत ( नं॰ १ ) करते समय यह सोचो कि मेरे हाथों में खूब ताकत भर रही है; इसी प्रकार अन्यान्य अंगों के लिए समझो।

४—सीधी खड़ी हो जाओ और दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर दाहिनी ओर उसे जमीन तक झुकाओ; इसी प्रकार बायें हाथ को भी बायीं ओर झुकाना चाहिए। दस-बारह बार करते जाने से कमर पतली, पुष्ट और लचकदार हो जाती है तथा पेट में चर्बी नहीं बढ़ने पाती।

५—चौरस जमीन पर बैठकर दोनों पैर सामने की ओर फैला दो। बाद झुक कर दोनों हाथ से पैर के दोनों अंगूठे पकड़ो। थोड़ी देर के बाद छोड़ दो। ऐसा करने से पेट में कोई बीमारी जल्द नहीं पैदा होती। सम्भव है पहले-पहल तुम पैरों के अंगूठे न पकड़ सको; इस लिए इसे त्याग न दो। अभ्यास करने से १५-२० दिन में ही तुम आसानी से अंगूठे पकड़ने लग जाओगी। पेट में दर्द होता हो और यह क्रिया की जाय तो तुरन्त ही पेट की पीड़ा शान्त हो जाती है।

६—प्रतिदिन कम से कम दस-बारह बार गर्दन को चारों ओर फेरना चाहिए। इससे कण्ठ में कोई रोग नहीं होता, आवाज रसीली हो जाती है और गर्दन में अपने-आप ही सुन्दरता आ जाती है।

७—शान्ति के साथ बैठकर हवा की ओर मुख करके पाँच मिनट तक साँस खींचो और छोड़ो। इसमें इतनी धीरता से काम लो कि श्वास-प्रच्छ्वास की आवाज दूसरे को कौन कहे स्वयं तुम्हें भी सुनायी न पड़े और न हृदय पर उसका धक्का लगने पावे। इस क्रिया से फेफड़ा शुद्ध रहता है अतः शरीर के रक्त में कोई विकार उत्पन्न नहीं हो पाता।

स्त्रियों को खूब तड़के उठकर शौच और व्यायाम से निवृत हो जाना चाहिये। गर्भिणी स्त्रियों को अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए किन्तु कुछ अवश्य करना चाहिए। इस पर पीछे काफी प्रकाश डाला गया है। गर्भाधान होने के पन्द्रह दिन पहले से व्यायाम घटा देना उचित है और गर्भ धारण कर चुकने पर एक महीने तक बड़ी सावधानी से बहुत कम व्यायाम करना चाहिए। बाद चार महीने तक बचाकर व्यायाम किया जा सकता है; पाँच महीने का गर्भ हो जानेपर फिर व्यायाम कम कर देना उत्तम है।

——*——

# व्यायाम से लाभ

व्यायाम करने से स्त्रियों का स्वास्थ्य कभी बिगड़ने नहीं पाता और किसी प्रकार का रोग होने की बहुत ही कम सम्भावना रहती है। शरीर हल्का और सबल रहता है। भोजन अच्छी तरह हजम होता है।

मुख और शरीर की कान्ति हमेशा बनी रहती है। समय से पहले बुढ़ापा पास नहीं फटकने पाता। कसरत न करने तथा संयम न रखने के कारण आजकल युवावस्था में ही स्त्रियों के चेहरे पर वृद्धावस्था झलकने लगता है, कपोल चिचुक जाते हैं, आँखें नीचे धँस जाती हैं, मस्तक पर शिकन पड़ जाती है और अंग-प्रत्यंग में शिथिलता आ जाती है। यदि स्त्रियाँ नियमित रूप से व्यायाम करें और संयम से रहें तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।

तन्दुरुस्ती ठीक रहने से प्रसव-वेदना बहुत ही कम होती है तथा हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर सन्तान पैदा होती है। सुखी जीवन बनाने के लिए तन्दुरुस्ती का ठीक रहना सबसे अधिक आवश्यक है। तन्दुरुस्ती पर ही दुनियाँ का सुख-दुख निर्भर है। पहले तन्दुरुस्ती, पीछे और सब। अमित धन हो, सुन्दर और शिक्षित परिवार हो, घर में दास-दासियों की भरमार हो, पर एक तन्दुरुस्ती न हो तो सारी वस्तुएँ फीकी पड़ जायँ। धन का उपभोग कौन कर सकता है? तन्दुरुस्त या स्वस्थ मनुष्य। परिवार का आनन्द कब

मनुष्य हो गये। छः महीने तक तो उनकी स्त्री ने खूब सुश्रूषा की। बाद उसकी ओर से कुछ लापरवाही होने लगी। घर के और लोग पहले ही से हाथ खींच बैठे थे। लगातार ग्यारह महीने तक वह बीमार रहे। कितनी यातना सहकर उनका प्राण निकला, उसका कारुणिक वर्णन करके पाठक-पाठिकाओं का दिल दुखाना नहीं चाहता। तन्दुरुस्ती नष्ट होने पर उनकी लाखों की सम्पत्ति किसी काम न आयी, इस बात को शिक्षा उक्त घटना से अच्छी तरह मिल सकती है।

व्यायाम से शरीर में बल बढ़ता है और भीरुता दूर होती है। मौका पड़ने पर दुष्टों के नीच शब्दों का जवाब लात-घूसे से देने का साहस होता है। जल्द किसी नीच की बुरी निगाह डालने की हिम्मत नहीं पड़ती। इससे भोग-विलास की ओर रुचि नहीं बढ़ती और सदा तबियत मस्त रहती है।

कसरत के द्वारा स्त्रियाँ अपने रूप-यौवन को अधिक दिनों तक कायम रखकर अपने पति को प्रसन्न रख सकती हैं और पति की प्रसन्नता से स्वयं भी प्रसन्न रहती हैं।

—:o:—

# स्वस्थ रहने के सरल उपाय

स्वस्थ रहने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है—प्रसन्न रहने की। मनुष्य के मनोविकार, वृत्तियाँ, इच्छाएँ, बुरे-भले विचार जिस तरह बदलते रहते हैं, उसी तरह शरीर के अवयवों में भी परिवर्त्तन होता रहता है। प्रोफेसर एल० मर्गेट ने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके बतलाया है कि भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और उदासीनता से पसीने में, थूक में, श्वास में, तथा खून में जहरीले पदार्थ पैदा होते हैं और इसके विपरीत प्रेम, दया, आनंद, सन्तोष, आरोग्य तथा प्रसन्नतापूर्ण विचारों से बलवान बनाने वाले तत्त्व उत्पन्न होते हैं।

इसीसे इस पुस्तक में स्थल-स्थल पर उत्तम सन्तान पैदा करने के लिए माता-पिता को उक्त बात पर सदा ध्यान रखने के लिए चेतावनी दी गयी है। बच्चों की माँ के क्रोधित होने पर उसका दूध जहरीला हो जाता है और उस समय दूध पीने से कितने ही बालकों को मूर्छा आ जाती है। शास्त्रकारों ने आदेश किया है कि भोजन करते समय खूब प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। उनके कथन का असली रहस्य यही है कि भोजन के समय क्रोध, चिन्ता, दुःख आदि करने से उत्तम से उत्तम बलकारक भोजन भी विष हो जाता है।

यदि प्रारम्भ से ही स्वास्थ्य-रक्षा के खास-खास नियमों का

पालन किया जाय और बालकों में आरम्भ से ही इन नियमों पर चलने की आदत डाली जाय, तो जीवन विशेष सुख और शान्ति से व्यतीत हो सकता है। बचपन में जिस बात की आदत पड़ जाती है, वह कभी नहीं छूटती। स्वास्थ्य-रक्षा के साधारण नियम ऐसे नहीं हैं, जिनका सरलतापूर्वक पालन न किया जा सके, किन्तु जब मनुष्य की आदत कुछ और ही ढंग की हो जाती है, तब वे ही सरल नियम पहाड़ से मालूम होने लगते हैं।

अब हम स्वास्थ्य-रक्षा के कुछ उपायों का उल्लेख यहाँ करेंगे, जिनका पालन करना आलसी मनुष्य के लिए तो अवश्य ही दुरूह है, पर और किसी भी मनुष्य के लिए कठिन नहीं है —

१—रहने का स्थान खूब हवादार होना चाहिए; किन्तु दूषित और गन्दी हवा जरा भी न आने पावे। गन्दी हवा और गन्दा पानी ही नाना प्रकार के रोगों का घर है।

२—अपना प्रत्येक कार्य नियमित समय पर करना चाहिए। स्वास्थ्य के लिए अनियमित समय पर काम करना पूरा घातक है। ऐसे आदमी कभी स्वस्थ नहीं कहे जा सकते जो एक दिन तो तड़के मल-मूत्र त्याग कर निवृत्त हो जाते हैं और दूसरे दिन दोपहर को टट्टी जाते हैं। इसी प्रकार उनका प्रत्येक कार्य होता रहता है। ऐसे मनुष्य सम्भव है कि ऊपर से देखने में हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण दिखलायी पड़ें, पर वास्तव में वे कदापि स्वस्थ नहीं हैं।

३—शुद्ध, सादा और थोड़ा भोजन करना चाहिए। ठूँस-ठूँस

कर खाने से स्वस्थता कभी नहीं रह सकती । भोजन धीरे-धीरे और खूब चबा-चबा कर करना चाहिए। एक ग्रास को चालीस बार कुचल कर निगलना, पेट में अमृत डालने के समान गुण करता है। इससे कई लाभ होते हैं । एक तो यह कि थोड़े आहार से अधिक रक्त तैयार होता है और उस रक्त में किसी प्रकार का दोष नहीं रहता और दूसरा लाभ यह होता है कि दाँत मजबूत होते हैं। इस प्रकार चबाकर भोजन करने से पाचन क्रिया बहुत ठीक काम करती है ; मल की रुकावट कभी नहीं होती, चित्त प्रसन्न रहता है, अच्छी भूख लगती है, पेट में कभी शिकायत नहीं पैदा होती।

४—भोजन करने के पहले और पीछे हाथ, पैर तथा मुख का धोना बड़ा ही हितप्रद है ।

५—मल-मूत्र के वेग को कभी न रोको । हमेशा पेट साफ रक्खो । कब्ज कभी मत होने दो । यदि कभी इसकी शिकायत जान पड़े तो फौरन यत्न करो ।

६—दाँत, मसूड़े और जीभ की हमेशा सफाई रक्खो । तथा कोई ऐसी चीज न खाओ जिससे मुख में जलन पैदा हो । हाँ काली मिर्च आदि खाने की बात दूसरी है; पर लाल मिर्च को भूलकर भी मुख में नहीं डालना चाहिए।

७—प्रति दिन सबेरे उठते ही मल-मूत्र त्याग करके मुख की सफाई कर डालनी चाहिए। स्नान हमेशा ठण्ढे पानी से तड़के कर लेना बहुत ही लाभदायक है । शरीर की त्वचा को मैल-मिट्टी

और पसीने से बिलकुल साफ रक्खो। नदी के स्वच्छ जल में स्नान करना सबसे उत्तम है ।

८—अपने काम और मौसम के अनुसार हमेशा साफ और ढीले कपड़े पहनो तथा हर मौसम में खुली हवा में मुख खोलकर सोने के अभ्यासी बनो ।

९—प्रतिदिन नियमित रूप से थोड़ा समय धूप में बिताओ। और सूर्य से शक्ति लिया करो ।

१०—सदा प्रसन्नचित्त रहो और चिन्ता आदि से दूर रहो । किसी की बुराई मत करो और सृष्टि की प्रत्येक वस्तु से कुछ न कुछ शिक्षा लेने की चेष्टा करो ।

११—ब्रह्मचर्य से रहा करो। वेश्यागामी और पर-स्त्री-गामी न बनो। इसी प्रकार से जो स्त्रियाँ स्वस्थ रहना चाहें वे पराये पुरुष को बुरी निगाह से न देखें ।

१२—नशे की चीजों से सदा दूर रहो । नशीली चीजों के सेवन से फेफड़े खराब हो जाते हैं ।

१३—भोजन करते समय जितना कम जल पी सको; उतना ही अच्छा। भोजन करने के घण्टा आध घण्टा बाद इच्छा के अनुसार जल पिया करो ।

१४—प्रतिदिन शुद्ध गोदुग्ध का सेवन किया करो। एक मनुष्य के लिए २४ घण्टे में सेर भर दूध पीना अत्यन्त आवश्यक है।

१५—थोड़ा-सा छाछ ( मट्ठा ) का सेवन करना बड़ा ही लाभदायक है। वैद्यक ग्रन्थों में इसकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। स्वास्थ्य के लिए यह बड़ी ही उपयोगी वस्तु है।

१६—अपनी सुविधा के अनुसार ताजे और आरोग्य फलों का सेवन किया करो।

१७—सबेरे कुछ रात शेष रहते ही उठने की आदत डालो। शय्या से उठते ही परमात्मा का ध्यान किया करो। बाद शौचादि से निवृत्त होकर व्यायाम करो। व्यायाम उतना ही करो, जितने से थकावट न मालूम हो।

१८—चटपटी, मसालेदार और बाजार की बनी हुई चीजें ( मिठाई पूड़ी आदि ) कभी मत खाओ।

१९—मुँह से कभी साँस मत लो। यदि इसकी आदत पड़ गयी हो तो शीघ्र इस दोष से अपना पिण्ड छुड़ाओ। मुँह से साँस लेना बड़ा ही हानिकारक है। कारण यह कि मुँह के रास्ते से जो हवा भीतर जाती है, वह छनकर नहीं जाती। अतः वायु में उड़ने वाले अनेक सूक्ष्म तथा विषैले जीवाणु एवं समन्वित धूलि-कण या ऐसा ही कोई दूसरा मल शरीर के भीतर चला जाता है जो कि नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करने का कारण होता है; किन्तु नासिका द्वारा साँस लेने से उक्त चीजें नासिका-द्वार में ही अटक जाती हैं। मुख द्वारा श्वासन-क्रिया करनेवालों के फेफड़े में रोगों को उत्पन्न करनेवाले नाना प्रकार के परमाणु एकत्र हो जाते हैं। नासिका के

चित्र नं० ११

द्वितीय सप्ताह

चित्र नं० १२
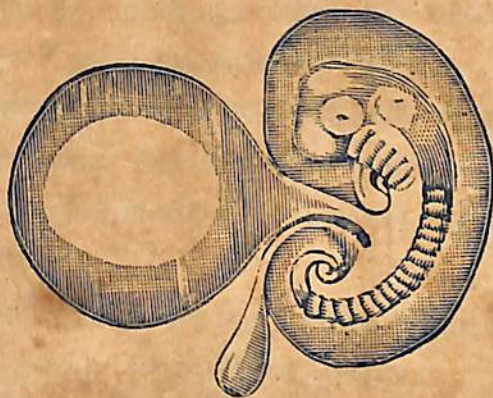
तृतीय सप्ताह
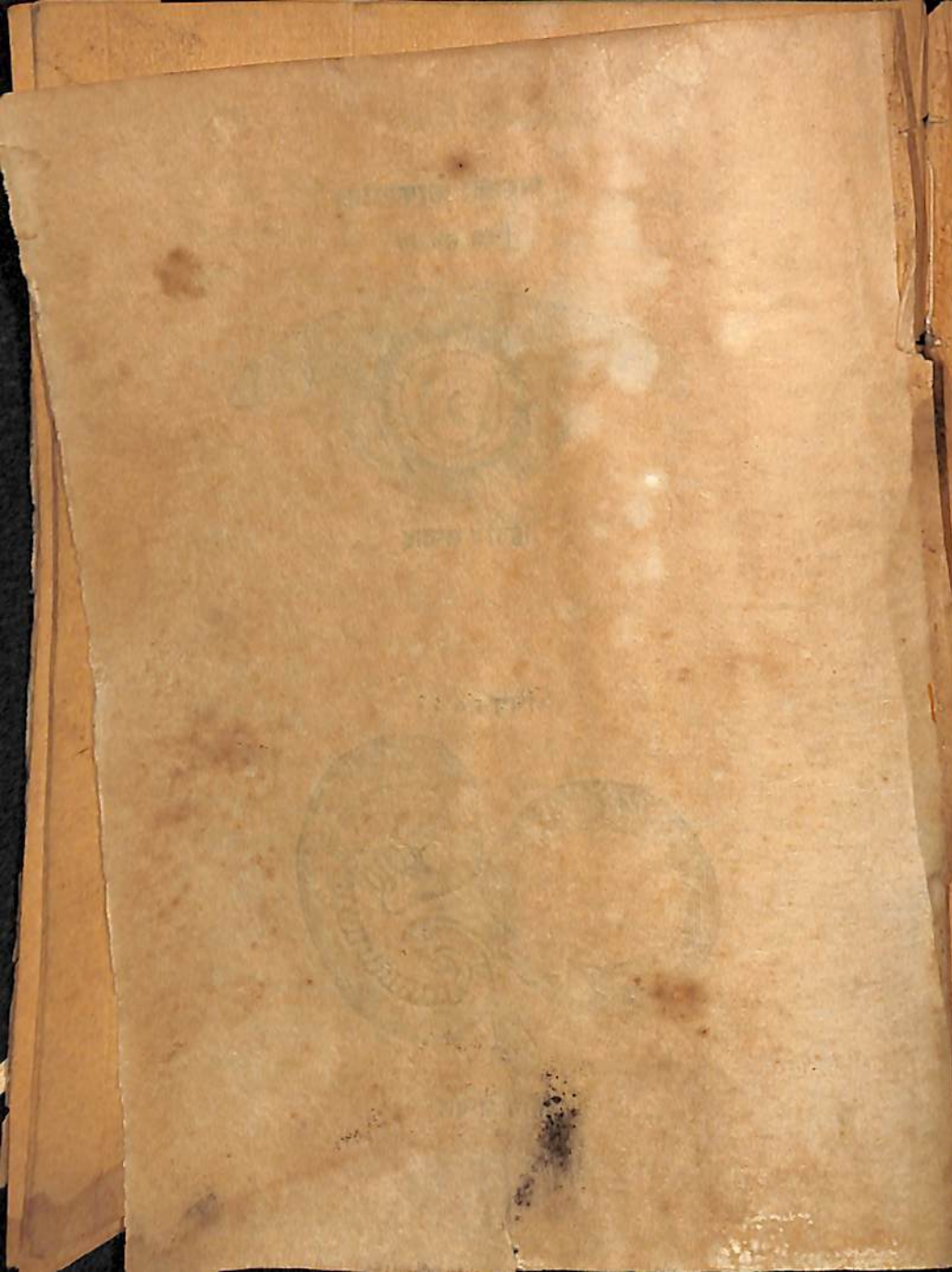
छिद्रों में प्रकृति ने बहुत से बालों की रचना की है। ये बाल हवा में समन्वित धूलि के कणों को रोगजनक जन्तुओं को तथा ऐसे ही दूसरे कचरे को फेफड़ों में जाने से रोकते हैं। यह रुका हुआ कचरा जब मनुष्य वायु को बाहर निकालता है, तब बाहर निकल जाता है। जो लोग नासिका के भीतर के बालों को कटवाते हैं, वे भारी भूल करते हैं। इतना ही नहीं, नासिका में एक गुण और भी बड़ा विचित्र है, वह यह कि शीतकाल में जब बिलकुल ठण्ढी हवा चलती है, तब उसे गर्म करके फेफड़े में पहुँचाती है। इससे फेफड़े को किसी तरह की हानि नहीं पहुँचती है। किन्तु मुख द्वारा श्वासन-क्रिया करने से ठण्ढी हवा ज्यों की त्यों फेफड़े में जाकर हानि पहुँचाती है। ठण्ढी हवा पहुँचने से कभी कभी फेफड़ों में सूजन हो आती है। हवा को शुद्ध करने के लिए नासिका एक प्राकृतिक यन्त्र है, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

२०—काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य आदि विकारों को प्रतिक्षण दूर रखने के लिए सतर्क रहना चाहिए और दया, परोपकार, आदि गुणों को धीरे-धीरे अपने हृदय में भरने का प्रयत्न करना चाहिए।

२१—भोजन करने के बाद थोड़ा टहल कर चारपाई पर लेटा करो, किन्तु तुरन्त ही नींद में अचेत न हो जाओ।

२२—डाक्टर हडली का कहना है कि,—"आरोग्यता प्राप्त करने के दो मार्ग हैं—( १ ) ग्राम्य-जीवन, उद्यान-भ्रमण, नियमित

व्यायाम और स्वच्छ वायु का सेवन ( २ ) सादा तथा हलका भोजन और निर्मल जल ।" ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य होगा जो आरोग्य प्राप्ति के इन प्राकृतिक नियमों को छोड़कर वैद्यों और डाक्टरों की तरह तरह की औषधियों का सेवन करके धन और आरोग्य का नाश करेगा ।

२३—ऋतु के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को आहार-विहार करना चाहिए । यह सौभाग्य भारतवर्ष को ही प्राप्त है कि यहाँ ठीक समय पर गर्मी पड़ती है, ठीक समय पर वर्षा होती है और ठीक समय पर सर्दी पड़ती है । पाश्चात्य देशों में यह बात नहीं है । वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है ।

फाल्गुन और चैत—वसन्त ऋतु
बैशाख और ज्येष्ठ—ग्रीष्म ऋतु
आषाढ़ और श्रावण—वर्षा ऋतु
भाद्रपद और आश्विन—शरद ऋतु
कार्तिक और मार्गशीर्ष—हेमन्त ऋतु
पौष और माघ—शिशिर ऋतु

कुछ आचार्यों ने चैत्र-बैशाख को वसन्त ऋतु मानकर छहों ऋतुओं का उल्लेख किया है; पर इस विपरीतता में कोई खास बात नहीं है, अतः कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं ।

ऋतु के अनुसार आहार-विहार करने के लिए उनका ज्ञान

होना अत्यन्तावश्यक है, इस लिए प्रत्येक ऋतु का संक्षेप में परिचय करा देना जरूरी है।

## वसन्त

वसन्त ऋतु का दूसरा नाम ऋतुराज है। इस ऋतु में दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं तथा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु ही नया रूप धारण करती है। यह ऋतु स्निग्ध है; अतः कफ की वृद्धि होती है और उसके द्वारा अन्य रोगों की उत्पत्ति होती है। इस ऋतु में कफ का प्रकोप होता है. इस लिए कफ का शमन करने वाली वस्तुओं का सेवन करना लाभदायक है।

पौष और माघ में शीत के कारण कफ सञ्चय होता है और वही संचित कफ वसन्त ऋतु में सूर्यताप से कुपित हो पाचक अग्नि को दूषित कर रोग को उत्पन्न करता है। इस लिए इस ऋतु में वमन-विरेचन द्वारा कफ को बाहर निकाल देना चाहिये। वसन्त ऋतु में चटपटे, रूखे, कड़वे, कसैले और हलके पदार्थों का सेवन करना हितकर है। खट्टी, मीठी, चिकनी और कष्ट से बचाने वाली वस्तुओं का सेवन कदापि न करनी चाहिए।

इस ऋतु में गेहूँ, चावल, मूँग, परवल, बैंगन, शहद, जीरा, अदरख, मूली आदि खाना तथा सोंठ, मिर्च, पीपर, पीपलामूल, त्रिफला, असगन्ध और हल्दी का सेवन करना विशेष लाभदायक है।

## ग्रीष्म

बैसाख और ज्येठ में गर्मी बहुत अधिक पड़ती है। इस ऋतु

लेने से पित्त-जन्य रोगों के उपन्न होने की आशंका नहीं रहती।

इन महीनों में घी, चीनी, मिश्री, जौ, गेहूँ, मूँग, चावल, गरम दूध, आँवला, परवल, धनियाँ, कमलगट्टा, मुनक्का, नारियल, गुड़-मिश्रित हड़का चूर्ण, गोभी आदि वस्तुएँ विशेष लाभ पहुँचाती हैं।

## शिशिर

पौष और माघ ये दोनों महीने शीतल, स्निग्ध, प्रायः सब पदार्थों को स्वादिष्ट करनेवाले तथा अग्नि को प्रज्ज्वलित करनेवाले हैं। इन महीनों में कफ संचय होता है और बल की वृद्धि होती है। शीत होने से वायु का कोप होता है। इस लिए इन महीनों में चिकने, रूखे, खट्टे और नमकीन रसों का सेवन ही लाभदायक है। सुश्रुताचार्य का कथन है:—

"ये दोनों महीने ठण्ढे और रूखे हैं। इन महीनों में सूर्यताप मन्द रहता है। हवा तेजी से चलती है। सर्दी के कारण वायु कुपित होता है। वही वायु सर्दी लगने से कोष्ठ के भीतर पिंडिकासा हो जाता है और शीघ्र रस को सोख लेता है। इस ऋतु में मधुर, अम्ल, लवण तथा रस-युक्त पदार्थों का ही भोजन करना चाहिए। इन महीनों में पौष्टिक, बलवर्द्धक, घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड़ के बने हुए पदार्थ अत्यन्त लाभदायक हैं। गेहूँ, उर्द, नये चावलों का भात, शुद्ध और उत्तम बनी हुई मिठाइयाँ, पाक, बादाम, अखरोट चिरौंजी, आदि पदार्थों का सेवन मनुष्य को अपनी शक्ति के अनु-

सार करना चाहिए। सूर्य की धूप तथा आग का सेवन करना बड़ा ही गुणकारी है।

इस ऋतु में बर्फ, सत्तू, अत्यन्त वायु सेवन, खट्टे, कड़वे, कसैले, शीतल तथा वातकारी पदार्थ नहीं खाना चाहिए। कसेरू, सिंघाड़े, उर्द, आलू आदि का सेवन करना हानिकारक है।

ऋतु के अनुसार आहार करने में एक बात का ध्यान और रखना चाहिए। वह यह कि कभी-कभी ऋतु के विपरीत समय रहता है, जैसे मौसम तो वर्षा का है, किन्तु हवा की अधिकता से तथा अन्यान्य कारणों से सर्दी काफी पड़ने लगती है। ऐसी दशा में आहार-विहार में परिवर्त्तन करना आवश्यक होता है।

—:o:—

से सब तरह के प्रसूत रोग समूल नष्ट हो जाते हैं ।

७—प्रसूत रोग में यह दवा भी बड़ा लाभ पहुँचाती है । प्रसारिणी को पाँच सेर पानी में औटावे । जब तीन सेर पानी रह जाय, तब उतार कर छान ले। फिर इस क्वाथ में सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, सफेद जीरा, काला जीरा, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुग्दपर्णी, गोखरू, रायसन, रेंडी वृक्ष की छाल, खरेंटी, सेंधा नमक, जवाखार और सज्जी इन सब चीजों को एक-एक तोला लेकर लुगदी बना ले । ऊपर के काढ़े में इस लुगदी को सेर भर घी ( गाय का ) डालकर पकावे । पक जाने पर उतार कर छान डाले । इस घी के सेवन से प्रसूत, संग्रहणी आदि कई तरह के रोग दूर होते हैं । इस घी के सेवन से प्रसूता की जठराग्नि प्रज्ज्वलित होकर स्तनों का दूध शुद्ध हो जाता है । उदर-रोग भी इससे नष्ट हो जाता है ।

८—सुहाग सोंठ, विषगर्भ तैल, अथवा मरीचादि तैल भी इस रोग में बहुत ही फायदा करते हैं । इनके बनाने की रीति नीचे लिखी जाती है:—

## सुहाग सोंठ बनाने की विधि

बैतरा सोंठ पावभर कूट-छानकर रख ले । बाद डेढ़ सेर गाय का दूध आँच पर चढ़ाकर औटावे; जब वह जलकर आधा रह जाय, तब उसमें सोंठ का चूर्ण डाल दे और बराबर चलाता रहे । जब

खोवा हो जाय, तब पावभर गाय का घी उसमें डालकर भूने। बाद थाली में निकाल कर रख ले। फिर एक सेर चीनी की चाशनी करके उसमें भुने खोवे को डाल दे और ऊपर से केशर छः माशे, कस्तूरी डेढ़ माशे, भीमसेनी कपूर तीन माशे, पिस्ता चार तोला, छिला बादाम आठ तोला छोड़कर लड्डू बना ले। प्रति दिन गरम दूध के साथ एक तोला इसे खा लिया करे।

दूसरी विधी—पावभर बैतरा सोंठ का चूर्ण, दही चक्का आध पाव, छोटी पीपल आधपाव, धतूरे के बीज आधपाव, इन सबको हाँड़ी में रखकर उसका मुख मजबूती के साथ बन्द कर दे। एक गढ़े में उसे रखकर ऊपर से कंडी रखकर आग लगा दे। जब वे कंडे जलकर खाक हो जावें, तब राख को हटाकर फिर पूर्ववत् कंडी रखकर सुलगा दे। इस प्रकार तीन बार करे। पश्चात् हाँडी को खूब सावधानी के साथ निकाल कर बाहर कर ले और उसमें से दवा निकाल कर शीशी में रख काग लगा दे। यह साधारण मात्रा है। यदि इसको बहुत तीक्ष्ण करना हो तो इसमें सात-सात पुट अदरख,बँगला पान के पत्ते का रस, थूहर के दूध के क्रम से दे और फिर ऊपर की भाँति चौदह आँच दे।

तीसरी विध—बैतरा सोंठ का चूर्ण पाव भर, आधा पाव सज्जी और छटाँक भर लौंग को थूहर के दुध में पीसकर लुगदी बना ले और मिट्टी के उतने ही बड़े बर्त्तन में इसे रखे, जिसमें अँट जाय। बाद ऊपर की भाँति इसे गढ़े में रखकर फूँक दे। जब

आधे कंडे जल जायँ तब उसमें और कंडे डालकर मिट्टी से आग को ढंक देना चाहिए। आग देने से आठ पहर पीछे इसे निकाले। बाद इनको थूहर के दूध, बँगला पान के रस और भारंगी के रस में क्रम से आठ-आठ पहर घोंटे। ( रस में पानी या छिलका कुछ भी न रहने पावे। ) ज्यों-ज्यों रस सूखता जाय त्यों-त्यों उसमें रस डालता जाय और खरल करता जाय। पश्चात् फिर मिट्टी के बर्तन में रखकर ऊपर की भाँति फूँक दे और आठ पहर के बाद उसे बाहर निकाल दे। पीछे उन्हें पीसकर शीशी में रखकर काग लगा दे। यदि कमर में दर्द हो अथवा छाती या पेट में दर्द हो तो छः माशे अदरख के रस में इसे तीन रत्ती डालकर देना चाहिये। यदि कफ की खाँसी हो तो छः माशे अदरख का रस, छः माशे शहद, आधी गाँठ छोटी पीपल पीसकर उसमें दो रत्ती यह दवा मिलाकर दे। इसी प्रकार सन्निपात में छः माशे अदरख का रस एक पीपल और तीन रत्ती यह दवा पीसकर दे तथा पैरों के तलवे में अदरख का रस, लहसन का रस और अजवायन को गरम करके मर्दन करे। सर्दी हुई हो तो तीन माशे शहद में दो रत्ती दवा चटा दे। हिचकी आती हो तो तीन मासे शहद और तीन माशे अदरख के रस के साथ डेढ़ रत्ती यह दवा मिलाकर चटावे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अनुपान के साथ यह दवा देने से अनेक तरह के रोगों से प्रसूता की मुक्ति होती है।

—:o:—

# विषगर्भ तैल बनाने की विधि

धतूरे की जड़, निगुंडी, कड़वी तूँबी की जड़, अरंड की जड़, असगन्ध, पमार, चित्रक, सहिजन की जड़, काग लहरी, करिहारी की जड़, नीम की जड़, बकाइन की छाल, दशमूल, शतावरि, चिरपोटन, गौरीसर, बिदारीकन्द, थूहर का पत्ता, आक का पत्ता, सनाय, दोनों कनेर की छाल, अज्जाझारा ( अपामार्ग या चिरायता भी इसे कहते हैं ) ओर सीप इन सबको तीन-तीन रुपये भर लेकर कूट डाले। बाद इनके बराबर काले तिल का तेल, उतना ही रेंडी का तेल और सबका चौगुना पानी एक बर्तन में रख उसी में सब चीजों को छोड़कर मधुर आँच से पकावे। जब पकते-पकते सब औषधियाँ पानी के सहित जल जायँ—तेल मात्र रह जाय, तब उतार ले। फिर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, असगन्ध, रास्ना, कूट, नागरमोथा, वच, देवदारु, इन्द्रजव, जवाखार, पाँचो नमक, नीला-थोथा, कायफल, पाढ़, भारंगी, नौसादर, गन्धक, पुष्कर मूल, शिलाजीत और हरताल इन सब चीजों को आधे-आधे पैसे भर ले और सिंगीमुहरा टकेभर लेकर महीन पीसकर उक्त तेल में मिला दे। फिर इस तेल का मर्दन करे। इससे वात के सब रोग दूर हो जाते हैं। यह याद रहे कि प्रसूत रोग वात के ही प्रकोप से होता है। इसकी मालिश से पीठ जंघा और सन्धियों की सूजन तथा हड़फूटन, कर्णशूल, गण्डमाला इत्यादि रोग नष्ट होते हैं।

# मरिच्चादि तैल बनाने की विधि

काली मिर्च, निसोथ, दातूणी, आक का दूध, गोबर का रस, देवदारु, दोनों हल्दी, छड़, कूट, रक्तचन्दन, इन्द्रायन की जड़, नागरमोथा, वायविडंग, पमार, सिरस की जड़, कलौंजी, हरताल, मैनसिल, कनेर की जड़, चित्रक, कलिहारी की जड़, कुड़े की छाल, नीम की छाल, सतौंप की छाल, गिलोय, थूहर का दूध, किरमाला की गिरी, खैरसार, बावची, वच, मालकांगनी, इन सबको दे-दे टके भर, सिंघी मुहरा चार टके भर, कड़वा तेल चार सेर, गो-मूत्र सोलह सेर इन सब चीजों के मधुर आँच से पकावे। जब तेल मात्र रह जाय, तब उतार कर छान ले। और फिर उसी तेल की मालिस करे तो प्रसूत रोग अच्छा हो जाता है। यह तेल भी वायु का नाश करने में एक ही है।

—०—

# प्रसूत ज्वर

यह ज्वर स्त्रियों को प्रसवकाल में असंयम के कारण होता है। इसमें हड़फूटन होती है, प्यास अधिक लगती है, हरवक्त ज्वर लगा रहता है, बारम्बार मल-त्याग करना पड़ता है, शरीर भारी और गरम रहता है। इसके लिए पूर्व लिखित दशमूल का क्वाथ सबसे अधिक लाभदायक है। अथवा, अजमोदा, जीरा, बंसलोचन खैरसार, विजयसार, सौंफ, धनियाँ और मोचरस, इन सब चीजों को बराबर-बराबर लेकर दो-दो तोले की दस पुड़िया बनाकर रख दे। फिर एक पुड़िया प्रति दिन आधसेर पानी में औटाकर जब छटाँक भर पानी रह जाय तब छानकर पिलावे। इस दवा का दस दिन सेवन करने से प्रसूत-ज्वर समूल नष्ट हो जाता है।

यदि गर्भावस्था में ही ज्वर आवे तो रक्तचन्दन, दारवा, गौरीसर, खस, मुलहठी, महुआ, धनियाँ, नेत्रवाला और मिश्री का सम भाग लेकर उसका क्वाथ सात दिन तक पिलावे तो ज्वर का आना बन्द हो जाता है। अथवा मुलहठी, लाल चन्दन, खस, गौरीसर, कमल की जड़ छः-छः माशे लेकर काढ़ा बनावे और उसमें शहद और मिश्री मिलाकर सात-आठ दिन तक पिलाने से ज्वर दब जाता है।

गर्भिणी स्त्री के मस्तक में प्रायः झनझनाहट होती है और मूर्छा सी हो जाया करती है। ऐसी दशा में गर्भिणी को चारपाई

पर चित्त सो जाना चाहिए और सिर के नीचे तकिया न रखना चाहिए। उसे अपने कपड़ों को भी ढीला कर देना उचित है। मुख पर ठण्डे पानी के छींटे लगाने से विशेष लाभ होता है।

एक रोग गर्भिणी को और होता है। यह प्रायः छठे महीने से लेकर बालक उत्पन्न होने तक होता है। इसमें गर्भिणी की नसें बनने लगती हैं। इस लिए जब नसों में तनाव मालूम हो, तब उसे कपड़े से कसकर बाँध देना चाहिए और अफीम के रस से सेंक कर फिर नमक की पोटली से या बोतल में गरम पानी भर कर सेंकना उचित है।

—*—

# मूर्च्छा रोग

यह रोग आधुनिक समय में बहुतायत से पाया जाता है। इसके लक्षण नाम ही से प्रकट हैं। किन्तु दुःख की बात है कि आजकल लोग इसे भूत, प्रेत, असुर, चुड़ैल समझने लग गये हैं। यद्यपि यह भाव अब दिन पर दिन कम होता जा रहा है, तथापि इसका प्रचार इतना बढ़ गया था कि अब भी ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही अधिक है। इस रोग के लक्षण ये हैं:—

१—सिर में भारीपन रहता है।

२—आँखों की भौंहों में इतनी पीड़ा होती है, मानों कोई कील ठोक रहा है। बिना कारण ही आँखों में आँसू भरे रहते हैं।

३—मन सदा उदास रहता है, कोई काम करने का जी नहीं चाहता।

४—यदि पास में कोई न रहे, तो बहुत ही आराम मिलता है। किसी से बातें करना जवाल मालूम होता है।

५—कण्ठ रुक जाता है और उसमें गोला सा जान पड़ता है। इसी गोले के उठने से प्रतीत होता है कि मूर्छा आनेवाली है।

६—हृदय में धड़कन हुआ करती है। साँस की गति भी तेज पड़ जाती है।

७—बायीं पसली में दर्द होता है।

८—छाती में बहुत कष्ट मालूम होता है, मानों वहाँ का माँस

ही गला जा रहा है ।

९—डकारें बहुत आती हैं और पेट में मरोड़ हुआ करता है । आँतें सदा गड़गड़ाया करती हैं ।

१०—शरीर की सब नसें दुखती रहती हैं । कभी किसी जगह पीड़ा रहती है, कभी किसी जगह ।

११—शरीर ऐंठ कर तन सा जाता है ।

१२—कभी-कभी सफेद पेशाब बहुत उतरता है ।

१३—किसी-किसी दिन पेट में अफरा जान पड़ता है और वायु गड़गड़ा कर आँतों तक आ जाती है । इस समय कण्ठ भी रुक सा जाया करता है । किसी दिन पेट इतना फूल आता है कि गर्भ का सा मालूम होने लगता है ।

अच्छी पहचान इस रोग की यह है कि रोगी देव-मन्दिर आदि में जाने से हिचकता है और यदि चला भी जाता है तो उसका अपना कण्ठ घुटता सा और छाती गिरती सी जान पड़ती है । बाजा इत्यादि के शब्द सुनकर उसे मूर्छा आ जाती है अथवा वह चिल्लाने लगता है । हवादार जगह में बैठने को जी चाहता है ।

यह रोग अधिकतर उन स्त्रियों को होता है जिनका गर्भ बार-बार गिर जाता है या जल्दी-जल्दी सन्तान होती है या जिन स्त्रियों को शोक अधिक रहता है । स्पष्ट रीति से यों समझना चाहिए कि जिन कारणों से निर्बलता आती है उन्हीं कारणों से यह मूर्छा रोग भी उत्पन्न होता है ।

इसका सबसे उत्तम और सरल उपाय यही है कि गर्भाशय को ठीक करके शुद्ध कर देना चाहिए। यदि रजोधर्म ठीक समय पर न होता हो तो उसका यत्न करना भी आवश्यक है। यह रोग कभी-कभी अविवाहिता कन्याओं को भी हो जाता है, किन्तु बहुधा यह रोग ऐसी स्त्रियों को होता है, जो ब्याही हुई होती हैं और बाँझ होती हैं। पति-शोकाकुल स्त्री को भी यह रोग हो जाया करता है।

इस रोग में दूध के साथ पान का रस मिलाकर देना बड़ा ही लाभदायक है। अथवा बादाम को खूब महीन पीस कर दूध में मिला दे और ऊपर से थोड़ा सा शुद्ध गुलाबजल डालकर पिलावे।

गर्भावस्था में स्त्रियों के मसूड़े और दाँत अक्सर दुखते हैं। कितनी ही स्त्रियों का प्रत्येक गर्भ में एक दाँत गिरता जाता है। इसका उपाय यह है कि जब दाँतों में दर्द जान पड़े तब रूई से कान बन्द कर लेना चाहिये। यदि इससे अच्छा न हो तो लौंग के तेल में रुई भिगोकर दाँत में रक्खे या मसूड़ों पर पोत दे। मसूड़ों पर उसी समय लगाना लाभदायक होता है; जब मसूड़े में दर्द हो, अन्यथा नहीं।

यदि मसूड़े में दर्द हो और पेट में गड़बड़ हो तो फौरन दवा करनी चाहिये। सबसे पहले पेट को शुद्ध कर लेना चाहिये। पहले कहा जा चुका है कि शोधे हुए रेंडी के तेल का जुलाब गर्भिणी और बच्चे के लिए बड़ा ही उपयोगी है। इस लिए जरा भी पेट की शिकायत मालूम होने पर उसे यही जुलाब लेकर पेट को साफ

और हल्का कर डालना चाहिये। यहाँ पर पेट शुद्धी के लिए कुछ ऐसी औषधियों का लिखना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनका सेवन करके गर्भावस्था में भी पेट को साफ किया जा सके। क्योंकि यह समय इतना नाजुक होता है कि जल्द कोई वैद्य जुलाब देने का साहस नहीं करता और बिना जुलाब के पेट की शिकायतें रफा नहीं होतीं।

१—रेंडी का तेल दूध में मिलाकर पीना चाहिए।

२—दो तोले दाख, एक तोला गुलाब के फूल, दो अंजीर इनको पीसकर चटनी बना ले ओर तीसरे-चौथे दिन सुपारी भर खा लिया करे। यदि आवश्यकता समझे तो सोते समय थोड़ा सा अधिक खाले।

३—रोटी के साथ शहद या खाँड़ खाने से भी पेट की शिकायत दूर होती है। क्योंकि खांड़ भी दस्तावर चीज है।

४—पक्के अंगूर ओर भुने हुए सेब से भी कब्ज दूर होता है।

५—सुपारी, बड़ी हड़का छिलका, बबूल को कोंपल, इन सब को एक-एक तोला लेकर तीन पाव पानी में ओटावे। जब छटाँकभर पानी रह जाय तब उतार ले जितने दस्त लेना चाहे, उतनी ही बार कपड़े से इस काढ़े को छानकर पी ले। जितनी बार छाना जायगा, उतने ही दस्त आवेंगे यह निश्चय है। यह जुलाब सबसे अच्छा है।

——:*:——

# गर्भिणी की वायु

पाँच या सात बादाम के बीज और एक माशे गेहूँ की चोकर प्रतिदिन खाने से वायु का कोप गर्भिणी स्त्री को कभी नहीं होता।

यदि मूत्र न उतरता हो तो दाभ की जड़, दूब की जड़ और काँस की जड़ इनको थोड़ा सा लेकर दूध में औटावे और फिर उसे पी जाय। इससे गर्भिणी को बिना किसी प्रकार के कष्ट के पेशाब उतर जाता है।

—o—

# संग्रहणी

यदि भोजन न पचे, खाते ही दस्त हो जाय तो चावल का सत्तू आम और जामुन के छिलके के काढ़े से खाना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र जठराग्नि ठीक होकर अपना काम करने लगती है।

—:o:—

# गर्भिणी को वमन

जब गर्भाधान हो ज़ाता है, तब बहुधा स्त्रियाँ वमन करने लगती हैं। इसमें गेरू को आग में गरम करके थोड़े से पानी में बुझाकर वही पानी पीना चाहिए। या कपूरकचरी को पीसकर मूँग के बराबर गोली बनाकर सेवन करे अथवा वट-वृक्ष की डाँठी जलाकर उसकी राख शहद में मिलाकर चाटे।

# गर्भिणी के पैरों की सूजन

यदि पैर फूल आवें तो थोड़ा-थोड़ा चलने-फिरने का अभ्यास डालना चाहिए ।

—:o:—

# दूध बढाने का यत्न

यदि स्तन में दूध कम हो तो भाड़ में गेहूँ कहुलवा कर उसीके बराबर अखरोट के पत्ते मिला गाय के घी में उसकी पूड़ी बनावे और सात दिन गाय के घी के साथ ही खाया करे । अथवा—गाय के दूध में थोड़ी सी शतावर और खाँड़ मिलाकर पिया करे ।

—:o::o:—

# स्तन-रोग

माता के दूध में विकार रहने से बच्चों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है; इस लिए दूध की परीक्षा कर लेना बालक की रक्षा के लिए अत्यन्तावश्यक है । दूषित दूध की पहचान यह है:—जिस स्त्री का दूध पानी में न डूबे, खट्टा या कड़वा हो, काला या पीला हो, जिसको गार कर रख देने पर उसमें मलाई सी न पड़े, या जिसमें चींटी डालने से मर जाय—जीती हुई तैरकर निकल न आवे, ऐसे लक्षणों से युक्त दूध दूषित होता है । शुद्ध दूध पतला और नीलापन लिए

हुए होता है। निर्दोष दूध मीठा होता है और उसमें मलाई पड़ जाती है। इस प्रकार दूध की परीक्षा करने पर यदि वह दूषित प्रमाणित हो तो उसे औषधियों द्वारा शुद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए और जब तक वह पूर्ण रीति से शुद्ध न हो जाय तब तक बालक को स्तन-पान न करावे। किसी अच्छी शुद्ध दूध वाली धाई का दूध पीने का प्रबन्ध कर दे। दाई ऐसी ही होनी चाहिए जिसकी गोद में उतने ही दिनों का बालक हो, जितने दिन के बच्चे को दूध पिलाना हो। दस-पाँच दिन न्यूनाधिक की तो बात दूसरी है, पर अधिक दिनों का अन्तर रहना ठीक नहीं। कारण यह कि ज्यों-ज्यों दिन बीतता जाता है त्यों-त्यों दूध गाढ़ा होता जाता है। इस लिए यदि बच्चा दो महीने का हो और दूध पिलाने वाली दाई को छः सात महीने प्रसविणी हुए हो गये हों तो उसका दूध पिलाने से बच्चा बीमार पड़ जाता है; क्योंकि उतना गाढ़ा दूध पचाने की शक्ति उसमें नहीं रहती। ईश्वर की बड़ी ही विचित्र लीला है। वह बच्चे के बलाबल के अनुसार ही माता के स्तनों में गाढ़ा पतला दूध पैदा करते हैं। जब बच्चा जन्म लेता है, तब माता का दूध बहुत ही पतला होता है, फिर ज्यों ज्यों उसमें ताकत आती जाती है और पाचनशक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों दूध भी गाढ़ा होता जाता है। इस लिए इस बात पर ध्यान देना बड़ा ही आवश्यक है। किन्तु इतना करने से सब काम समाप्त नहीं हो जाता। जब बच्चे का दूध पीना छुड़ा दिया जाय, तब माता का कर्त्तव्य है कि वह प्रति

दिन अपने स्तनों का दूध निचोड़ कर गिरा दिया करे। क्योंकि स्तन में दूध रह जाने से स्तन पक जाते तथा और भी अनेक तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जब दूध स्तन में रह जाता है, तब माता को बड़ा ही कष्ट होता है। अतएव इसके निचोड़ने में ढिलाई नहीं करनी चाहिए।

अब हम दूषित दूध को शुद्ध करने का कुछ यत्न बतलाते हैं। मूँग का जूस पीना चाहिए। अथवा भारंगी, दारुहल्दी, वच, अतीस तीन-तीन माशे पानी में घोटकर पिये। या पाढ़, मूर्वा, मोथा, चिरायता, देवदारु, इन्द्रजव, कुटकी, इनका काढ़ा पिया करे।

—•—

# थनैला

जो स्त्रियाँ बालकों को दूध पिलाती हैं, उनके स्तनों में कई कारणों से गाँठ पड़कर फोड़े हो जाते हैं और स्तन पक जाते हैं। जैसे, बालक के सिर की चोट लग जाने से गाँठ पड़ जाती है। स्तन गीले रहने से फट जाते हैं। रुधिर खराब होने से फोड़ा निकल आता है। इस लिए यदि बालक के सिर की चोट लग जाय तो गरम पानी में रुई डालकर सहने लायक गरम रहने पर धीरे-धीरे सेंक देना चाहिए। स्तनों को गीला न रखना चाहिए। यह रोग बड़ा ही कष्टदायक होता है, अतः पहले से ही इसका इलाज करना चाहिए।

यदि थनैला हो जाय तो नागरमोथा और मेथी को बकरी के दूध में पीसकर लगाना चाहिए। या रेंडी के पत्ते का रस निकाल कर उसमें कपड़ा भिगो भिगोकर बारम्बार लगाना चाहिए। अथवा गुलाब की पत्ती, सेव की पत्ती, मेंहदी की पत्ती और अनार की पत्ती बराबर-बराबर लेकर खूब बारीक पीस डाले और आग पर किंचित् गरम करके दिन भर में चार-पाँच बार स्तनों पर लगाया करे। या सहिजन के पत्त पीसकर लेप किया करे।

यदि स्तन तड़क गये हों या स्तनों में पीड़ा हो तो ग्लैसरिन लगा देना चाहिए। अथवा घी में मोम मिलाकर लगा देना चाहिए अथवा सुहागा दो तोले, गेहूँ का सत सात तोले, पीस-छानकर स्तन पर मल दे। इस दवा से बालक के मुख में पड़े हुए फफोले भी जाते रहते हैं।

—o—

# नेत्र रोग

आँखें लाल रहती हों तो छः माशे बकरी के दूध में चार रत्ती अफीम पीसकर नेत्र के ऊपर लगाना उचित है; किन्तु यह भीतर जरा भी न जाने पावे, नहीं तो बड़ा कष्ट होगा। या दो रत्ती फिट-किरी को एक तोले पानी में पीसकर चार-पाँच बूँद आँखों में सुबह-शाम टपका दिया करे। इससे भी लालिमा मिट जाती है।

यदि आँखों से पानी गिरता हो और किसी-किसी समय

धुँधला दिखलायी पड़ता हो तो शाम को मिट्टी के नये बर्तन में कुएँ का पानी छानकर रख दे और तड़के उठकर शौचादि से निवृत्त हो, उसी जल से आँखों पर खूब छींटा लगावे। कम से कम दो-तीन सेर पानी का छींटा लगाना जरूरी है। घड़ा प्रतिदिन बदलने की आवश्यकता नहीं। महीने भर के सेवन से नेत्र निरोग हो जाते हैं और ज्योति भी ठीक हो जाती है। यह दवा हमारी आजमायी हुई है।

रतौंधी होने पर गाय का घी, मिश्री और काली मिर्च का नित्य सबेरे सेवन करना चाहिए। यह रोग निर्बलता के कारण मस्तक में आयी हुई कमजोरी से उत्पन्न होता है; अतः मस्तक की पुष्टि का इलाज करने से यह रोग दूर होता है। देशी स्याही दवात में से निकाल कर तीन-चार दिन अंजन लगाने से भी रतौंधी बन्द हो जाती है। या पान के रस की तीन-चार बूँदें आँखों में टपका देने के बाद साफ पानी से धो डालने पर भी यह रोग दूर हो जाता है। यह दवा कम से कम दस-बारह दिन में काम करती है, घबड़ा कर छोड़ नहीं देना चाहिए।

—०—

# कान्तिबर्द्धक उबटन

पीली सरसो एक सेर, सफेद चन्दन का चूर्ण एक छटाँक, बालछड़ एक छड़, नेत्रबाला आधी छटाँक, आम की छाल एक छटाँक, केशर रुपये भर, चिरौंजी तीन छटाँक, इन सबको कूट-छानकर रक्खे और इसे थोड़ा सा लेकर दूध में पीसकर शरीर में लगाया करे। इस उबटन से शरीर सुगन्धित रहता है, कांति बढ़ती है, स्वच्छता रहती है और शीघ्र कोई चर्म-जन्य रोग नहीं होता।

—o—

# फोड़ा-फुन्सी

रक्त-विकार से ही शरीर में फोड़े-फुन्सियों का निकलना शुरू होता है। इस लिए सबसे उत्तम बात ते यह है कि रक्त को ही शुद्ध करने की चेष्टा करनी चाहिए। रक्त के शुद्ध हो जाने पर फोड़े फुन्सियों की जड़ ही कट जाती है। इसे शुद्ध करने का सबसे सरल और उत्तम उपाय ते यह है कि कोष्ठ-शुद्धि पर विशेष ध्यान रक्खे; क्योंकि पेट की गड़बड़ी से ही सारे रोगों की उत्पत्ति होती है; भोजन हल्का, शुद्ध और पचने पर करे। इससे रक्त धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है। अथवा इसे करते हुए चैत के महीने में शुद्ध मधु का एक महीना सेवन करे। या उसी महीने में नीम की मुलायम पत्ती खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण दूध पिये और खट्टी-मीठी तथा

तिक्त चीजें न खाय। इस प्रकार महीना भर नीम का पत्ती का सेवन करने से भी रक्त-[illegible]कार दूर हो जाता है।

यदि फोड़ा निकल आया हो तो तूतमलंगा पानी में फेट कर बाँधना चाहिए। यही पराचित दवा है। फोड़े को बैठाने में एक ही चीज है। दिनभर में तीन-चार बार इसकी पुलटिस बदलनी चाहिए। इसके बांधने से दर्द तो रात भर में ही रफा हो जाती है। कितना ही बड़ा फोड़ा उभड़ता हो, यदि उभड़ते ही इसकी पुलटिस बाँधी जाय तो फौरन वह दब जायगा—बढ़ नहीं सकता और न पीड़ा ही दे सकता है।

यदि छोटी छोटी फुन्सियाँ निकलती हों तो क्यूटीक्यूरा साबुन लगाकर धोना चाहिए और फिर भेंड़ का मक्खन ( सौ पानी से धोए हुए ) में कालीमिर्च फेटकर लगाना चाहिए। इससे फुन्सियाँ अच्छी हो जाती हैं और खाज नहीं चलती।

—:०:—

## बवासीर

यह रोग खूनी और बादी दो तरह का होता है। खूनी में पाखाने के साथ खून गिरता है और बादी में मस्से जोकि गुदा द्वार पर होते हैं, सूज आते हैं। खूनी में छोटे-छोटे लाल रंग के मस्से होते हैं, उन्हीं से खून गिरता है। मल त्यागने में बड़ा कष्ट होता है। कभी-कभी मल त्याग के समय लाल रंग की भीतर की आँत

भी बाहर निकल आती है। खूनी में मनुष्य निर्बल बहुत हो जाता है, परन्तु बादी की अपेक्षा इसमें पीड़ा कम होती है। दोनों तरह के बवासीर होने के मूल कारण हैं, कब्ज रहना, अधिक बैठना, तिक्त ओर गरिष्ट चीजें खाना तथा खाने-पीने और मल-त्याग आदि में व्यतिक्रम करना।

सूजे हुए मस्सों के लिए अखरोट के तेल में रुई भिगोकर गुदा में रखना लाभदायक है। इससे मस्से जल जाते हैं और इस रोग से छुटकारा मिलता है।

गेंदे की पत्ती, काली मिर्च के साथ घोंटकर पीने से भी बवासीर अच्छा हो जाता है।

थूहर-वृक्ष का दूध ६ छटाँक और हल्दी ३ छटाँक, इन दोनों को बारीक पीसकर मरहम बना लेना चाहिए। अर्श रोगी मंगल से शुक्रवार तक, यानी चारो दिन इसी का लेप करे तो नयी पुरानी बवासीर नष्ट हो जाता है। बवासीर की यों तो सैकड़ों ओषधियाँ वैद्यक ग्रन्थों में लिखा हैं, पर परीक्षित न होने के कारण व्यर्थ उनका यहाँ उल्लेख करना हम उचित नहीं समझते।

अस्तु; खास रोगों की कुछ ओषधियाँ लिख दी गयीं। अब इस प्रकरण को समाप्त करके आगे के प्रकरण में बच्चों के सम्बन्ध में काम की बातें लिखी जायँगी।

—:o:—

# बालरोग चिकित्सा

माता की लापरवाही या मूर्खता के कारण बच्चे बहुधा रोग-ग्रस्त हो जाते हैं और कभी-कभी मर भी जाते हैं। इस लिए इस प्रकरण में साधारण घरेलू चिकित्सा की मोटी-मोटी बातें लिख देना माताओं के लिए बहुत ही उपयोगी होना सम्भव है। यद्यपि बालक के रोगों की चिकित्सा करना बड़ा ही असाधारण काम है और वह हम लोगों के समान मनुष्यों का काम भी नहीं है तथापि यह विषय इस पुस्तक का मुख्य अंग होने के कारण प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर कुछ बातें लिखी जा रही हैं।

सबसे पहले बालक का रोग समझना आवश्यक होता है। आयुर्वेद शास्त्र में दो खण्ड हैं; एक निदान खण्ड है और दूसरे का नाम चिकित्सा खण्ड है। निदान खण्ड में रोग पहचानने की विधियाँ, रोगों के लक्षण आदि हैं और चिकित्सा खण्ड में रोगों के प्रतिकार के उपाय बतलाये गये हैं। आयुर्वेद की इस प्रणाली से मालूम होता है कि पहले निदान है और पीछे चिकित्सा। ऐसे भी देखने से निदान ही पहली वस्तु मालूम होती है। यदि यही न मालूम होगा कि रोग क्या चीज है, तो फिर इलाज क्या किया जा सकता है? इस लिए माताओं का कर्त्तव्य है कि पहले वे बच्चे का रोग खूब सावधानी से जानने की चेष्टा करें। आजकल की मातायें बहुधा बच्चों के बीमार पड़ते ही दवा देने की ओर ध्यान न देकर
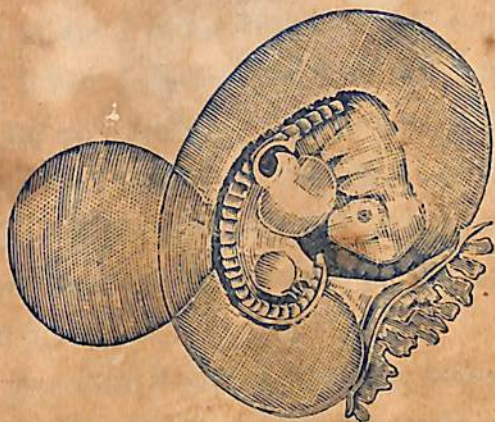
चित्र नं० १३

पहला महीना

चित्र नं १४
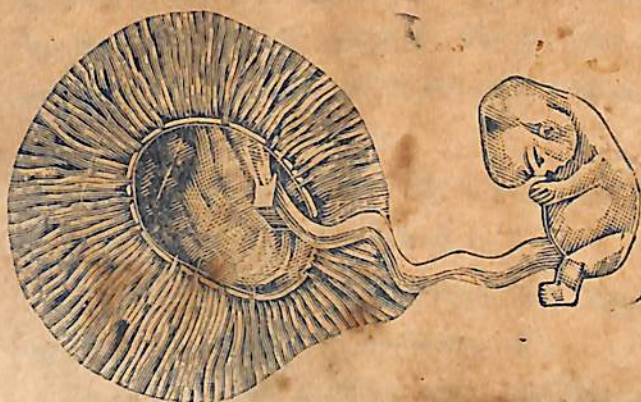
दूसरा महीना

टोना, नजर, ग्रह, भूत, प्रेत आदि के भ्रम में पड़ जाती हैं। परिणाम यह होता है कि ठीक उपचार न होने के कारण वे बच्चे से हाथ धो बैठती हैं। भला भूख लगी हो और कै होने की दवा दी जाय, यह कहाँ की बुद्धिमाना है ? हमारे देश में ऐसे ही अट-सट यत्न किये जाते हैं। किन्तु यह बात उचित नहीं है। सुश्रुत आदि महर्षियों ने स्पष्ट लिखा है कि किसी प्रकार के असुख का मूल कारण जानकर उसकी दवा करनी चाहिए। सब रोग औषधियों से ही शान्त होते हैं।

सुश्रुत संहिता में लिखा है कि अधिकार अपवित्रता के कारण ही बच्चे रोग के शिकार बनते हैं। कारण यह कि उसका स्वभाव अत्यन्त सुकुमार होता है, अतएव मामूली गन्दगी भी उनके रोग का कारण हो जाती है। इसीसे आचार्यों ने इस बात पर बारम्बार जोर दिया है कि बच्चों की सफाई की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। सौर में नीचे लिखी बातों पर यदि ध्यान रक्खा जाय तो बच्चे जल्द बीमार नहीं पड़ सकते।

१—गन्दी हवा न जाने दे तथा सौर के घर में किसी प्रकार की गन्दगी न करे। शुद्ध वायु को रोके भी न

२—बहुत ही सावधानी से नालोच्छेदन किया जाय, ताकि उसमें कोई रोग उत्पन्न होने की सम्भावना न रहे।

३—बालक पैदा होने के बाद ही उसको एक दस्त कराया जाय और उसके अंग-प्रत्यङ्ग की सफाई बहुत ही सावधानी से

कर डाली जाय।

४—सूतिका को भोजन पीछे के लिखे अनुसार दिया जाय और बच्चे को बासी दूध कभी न पिलाया जाय।

इन्हीं बातों पर ध्यान न देने के कारण बालकों को बहुधा ये रोग हो जाते हैं:—

उनका शरीर शिथिल पड़ जाता है और नींद नहीं आती दस्त पतले होने लगते है। बार-बार दूध डाल देते हैं; वे स्तन-पान नहीं करते। हिचकी, खाँसी, अतिसार, उल्टी, ज्वर आदि रोग हो जाते हैं। रंग पीला पड़ जाता है, कम्प होता है, गले में घरघराहट होता है, शरीर में दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। मूर्ख-स्त्री-पुरुष इनको भूत-प्रेत का उपद्रव जानकर झाँड़-फूँक कराने लगते हैं।

बालक को स्वस्थ और निरोग रखने का सहज उपाय यही है कि जन्मते ही उसकी हर प्रकार की सफाई पर पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय और नीचे लिखे काढ़ों से पाँचवें-सातवें दिन उसे नहला दिया करे।

गोरखमुण्डी और खस को पानी में पका डाले। बाद ठण्ढा हो जाने पर ( विशेष गलने न लगे ) छानकर उसी जल से स्नान करावे। उसके अंगों को खूब हल्के हाथ से धो दे, जिसमें मैल न लगी रह जाय।

हल्दी, चन्दन, कूट उनको पीसकर उबटन की भाँति बालक के शरीर पर लगाकर छुड़ा दे, फिर स्नान करावे।

पीपल, पीपलामूल और कटेरी का क्वाथ बनाकर फिर उसे घी में पकावे। जब सब पानी जल जाय और घी रह जाय, तब उसे उतार कर किसी बर्त्तन में रख ले और वही घी बालक के शरीर में मलकर उसे स्नान करावे।

यदि बालक रोने लगे, तब समझना चाहिए कि उसे किसी प्रकार का कष्ट हो रहा है। बड़े लड़के तो अपना दुःख-सुख कुछ कह सुनाते हैं, पर छोटे लड़के न बोल सकने के कारण अपने दुःखों को रोकर ही जाहिर करते हैं। बालक के दुःखों को जानने की रीति यह है:—

यदि बालक रोता हो, मुख में झारा आती हो, तो जानना चाहिए कि उसके कपड़ों में जूँ है और उसीके काटने से बच्चा रो रहा है। फिर उसको ढूँढ़कर निकाल डालना चाहिए। और बच्चे के शरीर में जहाँ-जहाँ उसने काट खाया हो, वहाँ-वहाँ जरा घी मल देना चाहिए। तुरन्त बालक चुप हो जायगा।

यदि बालक बार-बार अपने पैरों को पेट की ओर समेटे और पेट को दबाने से प्रसन्न न हो, रोता ही रहे तो समझना चाहिए कि उसके पेट में दर्द है। पेट-दर्द दूर करने के लिए निम्न-लिखित उपाय काम में लाना चाहिए:—

१—हाथ को आग पर सेंक-सेंक कर सहता हुआ बालक का पेट सेंके। इस बात का ध्यान रहे कि बच्चे का शरीर बहुत ही कोमल होता है। अधिक गरम हाथ पड़ने से कहीं जल न जाय।

२—गुलरोगन को जरा सा गरम करके पेट पर मल देने से भी भी पेट की पीड़ा शान्त हो जाती है।

३—नमक को खूब महीन पीसकर गरम करे और उसे बालक के पेट पर मले। खूब महीन नमक रहे, नहीं तो बालक के पेट का चमड़ा छिल जायगा और उसे महान दुःख होगा।

४—छोटी इलाइची को दो बीज, सौंफ के दो दाने, माँ के दूध में पीसकर पिला देने से भी पेट का दर्द मिट जाता है।

सो कर उठने पर यदि बालक रोने लगे, जीभ निकाले और इधर-उधर दूध की खोज में माथा हिलावे तो समझना चाहिए कि बच्चा भूखा है।

अधिक देर तक एक ही करवट के बल सोने से या किसी वस्तु के चुभने, चींटी अथवा मच्छर के काटने से भी बच्चा रोने लगता है। इस लिए सबसे पहले इन बातों का निरीक्षण भली प्रकार कर लेना आवश्यक है।

यदि बालक बराबर रोता ही रहे, चुप न हो तो जानना चाहिए कि उसे कोई दुख हो रहा है। जहाँ या जिस अंग में पीड़ा होती रहती है, बालक बार-बार उसी को छूता है और दूसरे का उस स्थान पर हाथ लगने से रोता है।

मस्तक में पीड़ा होने पर बच्चा अपनी आँखें मूँद लेता है। गुदा में दर्द होने पर बच्चे को प्यास अधिक लगती है। साथ ही मूर्च्छा भी हो जाती है मलकोष्ठ में दर्द होने पर मल-मूत्र रुक

जाता है और मुख धुँधला पड़ जाता है; साँस अधिक चलती है और आँतों से आवाज निकलती है।

बच्चों को खाने की दवा तीन प्रकार से दी जाती है। दूध पीने वाले बच्चे को यदि दवा देनी होती है तो दूध पिलाने वाली को दवा दी जाती है, जिससे उसका असर दूध में आ जाता है और स्तन-पान करने वाला बच्चा निरोग हो जाता है। दूध और अन्न दोनों से जो बच्चे निर्वाह करते हैं, उनकी यदि चिकित्सा करनी होती है तो माँ बच्चे दोनों को दवा दी जाती है। बालकों को दवाएँ माता के दूध या शहद में घिसकर दी जाती हैं, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

बच्चों को बहुधा नीचे लिखे रोग होते हैं:—

# नाल पकना

यदि नाल खींचने के कारण पक जाय तो मोम का मरहम कपड़े पर लगाकर या कपड़े को कड़वे तेल या नारियल के तेल में भिगोकर लगा देना चाहिए। यदि नाल में सूजन हो तो पीली मिट्टी को आग में गरम करके दूध डालकर बाफ देना उचित है अथवा साफ और नयी रुई से फेंक दे। अथवा बकरी की लेंडी जलाकर उसकी राख को नाभि पर चिपका देना चाहिए। या हल्दी लोध, मेहँदी, मुलहठी इनको तेल में पका कर नाभि पर लगाना चाहिए।

——:o:——

## मूत्र रुकना

पीपल, कालीमिर्च, इलायची छोटी, और सेंधा नमक—इनका चूर्ण शहद में मिलाकर चटाने से बालकों का रुका हुआ मूत्र खुल जाता है।

—o—

## बहुत रोने पर

पीपल और त्रिफला के चूर्ण को घी और मधु में मिलाकर चटाने से बालक का रुदन बन्द हो जाता है।

—o—

## दूध फटकना

अपने पेट के विकार से अथवा माता के दूध में दोष होने से बालक दूध पीकर फटक देता है। चक्की पीसकर या रोटी बनाकर अथवा और कोई परिश्रम का धन्धा करके तुरन्त-स्तन पान कराना बड़ा ही हानिकारक है। माता को उचित है कि वह अपने शरीर को अच्छी तरह से शान्त करने के बाद बच्चे का स्तन-पान करावे। यदि माता को अजीर्ण रहता हो तो उसे शीघ्र पचने वाला हल्का भोजन करना चाहिए और किसी अच्छे पाचक चूर्ण का भी सेवन करना चाहिए—ताकि जठराग्नि ठीक हो जाय। काकड़ासिंगी, अतीस, मोथा और पीपल पीसकर शहद में चाटना उत्तम है।

आम की गुठली, धान की खील और सेंधा नमक पीसकर शहद म चाटना भी लाभदायक है। आम वा कटेरी के फूल का रस, पीपल, पीपलामूल, चित्रक और सोंठ पीसकर घी और शहद के साथ सेवन करना चाहिए।

यदि बालक दूध न पीता हो तो पहले यह जानना चाहिए कि इसे किसी प्रकार की पीड़ा तो नहीं हो रही है। कारण जानकर फिर उसका इलाज करना चाहिए।

—o—

# आँख दुखना

जब बच्चे की आँखें दुखने लगें तब तीन दिन तक कोई दवा नहीं करनी चाहिए। कारण यह कि दवा करने से उसका वेग रुक जाता है इससे पीछे बच्चे को अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। आँख दुखने के बहुत से कारण हैं। गर्मी से, दाँत निकलते समय, माता की आँखें दुखने से बालक की आँखों में दर्द होता है। इसके लिए नीचे दवाएँ लिखी जाती हैं:—

१—बच्चे के कान में कड़वा तेल डाल दे और तलवे में भी कड़वा तेल मल दे।

२—रसोत का पानी आँखों में टपका देना चाहिए।

३—माता को नमकीन तथा खट्टी चीजों का खाना छोड़ देना चाहिए। चने की बनी हुई भी कोई चीज नहीं खानी चाहिए।

क्योंकि इससे भी बालक को हानि पहुँचती है।

४—यदि आँखें दाँत निकलने के कारण दुखती हों तो शान्ति से काम लेना उचित है। ऐसे समय में उठने वाली आँख जरा देर में अच्छी होती है। इस लिए घबड़ा कर अंट-संट दवा करना उचित नहीं है।

५—आँवले और लोध को गाय के घी में भून डाले, फिर पानी में पीसकर लगावे।

६—पोस्ते का फल (ढोंढ़) लेकर उसका दाना निकाल डाले। बाद छिलके को गुड़ के गरम पानी में भिगोकर सहता हुआ आँखों पर बांध दे या बार-बार उससे आँखें तर करके योंही छोड़ दे।

७—अमचूर को लोहे पर पीसकर आँख पर लेप कर दे। इससे भी आंख की पीड़ा शान्त हो जाती है।

८—बकरी के दूध का फाहा लगाना भी लाभदायक है।

—:o:—

# खाँसी

यह कई तरह की होती है। सूखी खाँसी, जुकाम की खाँसी, कुकुर खाँसी आदि। इसके लिए नीचे की दवाएँ काम में लानी चाहिएः—

१—छोटी पीपल, पीपलामूल और सोंठ को पीस-कपड़छान कर शहद में मिलाकर बालक को चटाने से कास-श्वास रोग बहुत

शीघ्र दूर हो जाता है ।

२—बंसलोचन शहद में चटाने से भी खांसी नष्ट हो जाती है।

३—पीपल, काकड़ासिंगी और मूली के बीज इन सब चीजों को शहद के साथ चटाने से बालकों की खांसी अच्छी हो जाती है। अथवा केवल काकड़ासिंगी और मूली के बीज ही घी या शहद के साथ खांसी रोग में चटाना चाहिए ।

४—अनार का छिलका और नमक पीसकर चटाना भी बालक की खांसी को दूर करता है ।

५—सूखी खांसी में मुलहठी का सत बालक के मुख में डाल रखना बहुत ही लाभदायक है ।

६—काकड़ासिंगी और मिश्री बराबर-बराबर लेकर चूर्ण करे। सेवनविधि यह है—जितने मास का बालक हो उतनी ही रत्ती मधु के साथ सायं-प्रातः दो बार दे। स्वास, खांसी और ज्वर छूटकर बालक चंगा हो जायगा ।

७—पान के रस में एक रत्ती जायफल घिसकर देने से भी खांसी अच्छी हो जाती है ।

—:o:—

# हिचकी

सोना गेरू को पीसकर शहद के साथ चटाने से बालक की हिचकी बन्द हो जाती है। या सोंठ, आँवला, पीपल, इनका चूर्ण शहद में मिलाकर चटाना भी हिचकी के लिये बहुत ही लाभदायक है। अथवा पीपल और रेणुका बीज के क्वाथ में भुनी हुई हींग और शहद डालकर पिलाना चाहिए। इससे सब तरह की हिचकी जाती रहती है, ऐसा धन्वन्तरि जी ने लिखा है।

—:०:—

# अतिसार

इसको ठेठ भाषा में 'पेट चलना' कहा जाता है। यह रोग सर्दी-गर्मी लगने से, तथा दांत निकलते समय होता है। यदि दाँत निकलते समय दस्त आते हों तो किसी प्रकार की भी दवा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उस समय दवा से दस्त को रोकना बच्चे के लिए बड़ा ही हानिकारक होता है। हाँ, यदि और कारणों से दस्त अधिक आते हों तो फौरन इलाज करना चाहिए। इस रोग की कुछ औषधियां वैद्यक ग्रन्थों से नीचे उद्धृत की जाती हैं:—

लोध, मँजीठ, नेत्रवाला, और धाय के फूल सम मात्रा में लेकर इनका क्वाथ बालक को पिलाना अतिसार के लिए अत्यन्त लाभदायक है। इससे अतिसार शीघ्र नष्ट हो जाता है।

बेलगिरी, धाय के फूल, नेत्रवाला, लोध और गजपीपल के क्वाथ में शहद डालकर पिलाने से भी अतिसार नष्ट हो जाता है।

नागरमोथा, अतीस, इन्द्रजव, नेत्रवाला का क्वाथ बालक के अतिसार को अच्छा कर देता है।

आम की जड़ का स्वरस भी बच्चों के अतिसार को अच्छा करने में एक ही चीज है।

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, कूड़े की छाल इनका काढ़ा पिलाने से भी अतिसार से बालक का पिण्ड छूट जाता है और दस्त नियमित रूप से आने लगते हैं।

यदि अतिसार के साथ ज्वर भी हो तो नागरमोथा, पीपल, अतीस, काकड़ासिंगी इनका चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिए। इस दवा से अतिसार और ज्वर का तो नाश हो ही जाता है-साथ ही खांसी और दूध गिरना भी आन-फानन बन्द हो जाता है। अथवा हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, कंटकारी की जड़ और इन्द्रजव का काढ़ा पिलाने से भी ज्वरातिसार नष्ट हो जाता है। या धाय के फूल, बेल, धनियाँ, लोध, इन्द्रजव का चूर्ण शहद में चटावे।

यदि इनके साथ प्यास भी लगती हो तो मोथा, सोंठ, अतीस इन्द्रजव और खस का काढ़ा पिलाना चाहिए। और यदि केवल प्यास हो, अतिसार या ज्वर न हो—तो पीपल, मुलहठी, जामुन के पत्ते और आम के पत्ते का चूर्ण शहद के साथ चटाने से बालक का प्यास मिट जाती है। अथवा अनारदाना, सफेद जीरा और नाग-

केशर के चूर्ण में उतनी ही मिश्री मिलाकर शहद के साथ चटाने से भी प्यास लगना बन्द हो जाता है। या घी में भुनी हुई हींग, सेंधा नमक और पलासपापड़ा का चूर्ण शहद के साथ चटाना चाहिए इससे भी बालक की बढ़ी हुई तृषा नष्ट हो जाती है मुनक्का और दाख को धो-पोंछकर बीज निकाल डाले। बाद सेंधा नमक के साथ पीसकर प्रातःकाल बालक को चटा दिया करे। इससे भी प्यास मिट जाती है।

—०—

## ज्वर

नागरमोथा, हड़की छाल, नीम की छाल, परवल और गिलोय इन औषधियों का क्वाथ पिलाने से बालक का ज्वर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार गिलोय का चूर्ण या स्वरस शहद में चटाने से भी ज्वर का नाश हो जाता है।

कुटकी के चूर्ण में शहद और मिश्री मिलाकर चटाने से ज्वर छूट जाता है। कुटकी के कल्क का लेप भी बालक के ज्वर को दूर कर देता है और वह निरोग हो जाता है।

—०—

## त्रिदोष ज्वर

पद्म काष्ठ, नीम की छाल, गिलोय और लाल चन्दन इन द्रव्यों का क्वाथ बालक और उसकी माता को पिलाने से त्रिदोष के ज्वर का शमन होकर खूब अच्छी भूख लगता है।

गिलोय को आठ पहर तक भिगो रक्खे, बाद उसे पीसकर पिलाने से बालक के सब तरह के ज्वर का बहुत जल्द नाश हो जाता है।

—o—

## वात ज्वर

शालपर्णी, गोखरू, सोंठ, नेत्रवाला, छोटी बड़ी कटेरी की जड़ और चिरायता का क्वाथ पिलाने से बालक का वात ज्वर बहुत शीघ्र दूर हो जाता है। यह काढ़ा बालक और उसकी माँ दोनों को पिलाना चाहिए। लघुपंचमूल के क्वाथ का सेवन करने से भी वात ज्वर नष्ट होता है। (लघुपंचमूल में पांच चीजें हैं—शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू।)

मुनक्का, गिलोय, सिरयाई, खरेंटी का क्वाथ भी वातज्वर को नष्ट कर देता है।

खस, लाल चन्दन, सिरयाई, गिलोय, नीलोफर, पद्म काष्ठ, फालसा, मुलहठी, गम्भीरी और धनियाँ का क्वाथ पीने से भी वात ज्वर जड़ से साफ हो जाता है।

## पित्त ज्वर

सिरयाई, नीलोफर, गम्भीरी, गिलोय, पद्मकाष्ठ और पित्त-पापड़ा का क्वाथ बालकों के पित्त-ज्वर को दूर भगाता है। नागर-मोथा, पित्तपापड़ा, खस, नेत्रवाला, पद्मकाष्ठ का क्वाथ ठण्डा करके पिलाने से प्यास, दाह, वमन और ज्वर का शीघ्र नाश हो जाता है।

बाँसा, पित्तपापड़ा, खस, नीम की छाल, चिरायता इनके क्वाथ का सेवन कराने से वमन, श्वास-कास और पित्त ज्वर दूर होता है।

—:o:—

## अन्य ज्वर

हरड़ की छाल, आँवला, पीपल छोटी, चीता इनके सेवन से सन्निपात ज्वर और कफ ज्वर नष्ट हो जाता है। इन चारों चीजों का योग बड़ा ही पाचक और दस्तावर है।

काली मिर्च, कायफल, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, छोटी पीपल इन चीजों में से एक या दो को अथवा सबको लेकर चूर्ण बनावे। बाद उस चूर्ण को अदरख के रस और शहद के साथ चटाने से बालक का कफ ज्वर, अरुचि, श्वास और शूल नष्ट हो जाता है।

फालसा, कमलनाल, धान की खील और मिश्री को रात में भिगो दे। सबेरे कपड़े से छानकर शहद मिलाकर पिलाने से बालक का वात-पित्त-ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम रक्त-पित्त

आदि का शमन होता है।

नागरमोथा, गिलोय, पित्तपापड़ा, पोहकरमूल, परवल, धनियाँ, चिरायता, लाल चन्दन, खस, खरेटी, नेत्रवाला का क्वाथ पिलाने से पित्त-कफ ज्वर नष्ट हो जाता है।

वाँसा, कटहली की जड़ और पीपल का अवलेह शीत ज्वर को नष्ट कर देता है। या कटहली की जड़, गिलोय, जवासा, कुटकी, चिरायता का क्वाथ भी शीघ्र शीत ज्वर का संहार करता है।

इस बात का ध्यान रहे कि चढ़े ज्वर में किसी प्रकार की भी दवा नहीं देनी चाहिए। यदि दवा देने से एक-दो दिन पहले रेंडी का तेल देकर दस्त करा दिया जाय तो बहुत उत्तम हो। दस्त हो जाने से लाद की गर्मी शान्त हो जाती है, ज्वर का वेग भी कम हो जाता है और दवा अधिक तेजी से रोग का नाश करने में समर्थ होती है।

कंजे की घिसी हुई भींगी एक माशा और काली मिर्च दो रत्ती पीसकर अथवा अतीस डेढ़ माशा और काली मिर्च दो रत्ती ये एक बार की मात्रायें हैं। यदि शरीर ठण्ढा हो और बुखार न हो तो ठण्ढे पानी के साथ फँका देना चाहिए। सुबह और शाम दो में से एक दवा सेवन कराने से बालक का बुखार छूट जाता है। यदि शाम के वक्त बालक का शरीर गरम हो आता हो तो छटाँक भर पानी में चार रत्ती सोरा और एक माशा पक्की चीनी घोलकर पिला दे। बाद कम्बल से शरीर ढँक दे, ताकि पसीना हो जाय। यदि

बुखार के साथ आँव के दस्त भी आते हों तो हींग एक रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती और काली मिर्च आधी रत्ती की एक-एक गोली बनाकर सुबह-शाम एक गोली खिलावे। आँव पड़ते समय तक रोटी आदि न खिलाकर चावल और दही खिलाना चाहिए। ऊपर की मात्रा युवक मनुष्य की है। बालक की मात्रा इससे कम होनी चाहिए।

—o—

## लार गिरना

बहुत से बच्चों के मुख से लार गिरा करता है, यहाँ तक कि कितने ही बालकों की छाती पर रुईदार टुकड़ा बंधा रहता है और वह थोड़ी ही देर में भींग जाता है। ऐसे लड़कों के लिए दो तोले मस्तगी, दो तोले बड़ी इलाइची के दाने कूट कर पावभर चीनी की चाशनी में जमाकर रख दे और प्रतिदिन एक या दो माशे खिलाना चाहिए। इससे लार का गिरना बन्द हो जाता है।

—:o:—

## कर्ण रोग

कसेरा, बिजौरा का अर्क, अदरख का अर्क इन सब चीजों को गरम करके कान में डालने से कान की पीड़ा शान्त हो जाती है।

आक के पीले पत्ते पर तेल पोतकर उसे तप्त तवे के ऊपर गरम करना चाहिए। बाद उसका अर्क कान में निचोड़ देना चाहिए।

यह दवा भी कान के दर्द को बहुत शीघ्र हर लेती है।

स्त्री के दूध में रसोत घिसकर उसमें शहद मिला, कान में डालने से कान का बहना, बदबू, पीड़ा, कर्णशूल से होने वाला शिर दर्द आदि रोग फौरन अच्छे हो जाते हैं।

लोध को महीन पीसकर कान में डाल देने से कान का बहना और दर्द होना बन्द हो जाता है।

लड़के वाली स्त्री के दूध की चार-पाँच बूँदें कान में टपका देने से कान का दर्द आसानी से मिट जाता है।

यदि कान के इर्द-गिर्द सूजन हो तो वटवृक्ष की जटा को तीन दाने काली मिर्च के साथ पीसकर आग पर गरम कर ले और कपड़े पर रखकर उसका रस कान में टपका दे। थोड़ा सा कान के आस-पास भी लगा देना चाहिए। दिनभर में तीन-चार बार डालने से कान का रोग दूर होने लग जाता है।

यदि कान बहता हो तो हाइड्रोजन पाक्साइड अंग्रेजी दवा है) से साफ कर डालना चाहिए। कान की पीड़ा में भी इस दवा से काम लेना बड़ा ही लाभदायक है; क्योंकि इससे कान की सब मैल फूल आता है और रुई से बड़ी सरलता पूर्वक बाहर निकल आती है।

बहुत से बच्चों के कान में बहुधा पीड़ा हुआ करती है। इस लिए ऐसे बच्चों पर सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि लकड़ी से कान खोदते तो नहीं; कारण यह कि कान खोदने से बहुत जल्द उसमें रोग पैदा हो जाता है।

# दाँत निकलना

दाँतों का निकलना जब प्रारम्भ होता है, तब बालकों को बड़ा कष्ट होता है। प्रायः सात-आठ महीने की आयु में दाँत का निकलना शुरू होता है। इस समय तरह-तरह के विकार पैदा होते हैं बहुत सी माताएं अपनी मूर्खता के कारण इस बात पर ध्यान ही नहीं देतीं कि ये सब उपद्रव दांत निकलने के हैं और वे अंट-संट औषधियाँ करने में लग जाती हैं। जिसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। दाँत निकलते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए जब बालक के दाँत निकलने वाले होते हैं, तब साधारणतया ये लक्षण दिखलायी पड़ते हैं:—

१—बालक के मुख से लार गिरने लगती है और उसके मसूड़े गरम और लाल हो जाते हैं।

२—बच्चा अपनी अंगुलियों को चबाता है। प्यास अधिक लगती है। इसीसे वह बार-बार दूध पीने को करता है परन्तु पिलाने पर पीता नहीं। माता का स्तन मुख में ले-लेकर छोड़ दिया करता है।

३—रोते समय उसके गालों का रंग लाल हो जाता है।

४—किसी-किसी बच्चे को दस्त भी होने लगता है।

जब ये लक्षण दिखलायी पड़ें, तो समझना चाहिए कि अब बहुत जल्द दाँत निकलने वाले हैं। सुगमता से दाँत निकलने के

लिए उत्तम उपाय यह है कि शहद में सुहागा और नमक पीसकर मिला दे और फिर उसे मसूड़ों पर दिन भर में कई बार चुपड़ दिया करे। अथवा मुलहठी छीलकर बालक के गले में बांध दे, जिसमें वह उसको चूसा करे।

दाँत निकलते समय बालक को खट्टी चीज न खिलावे। इस समय यदि माता स्तन-पान न करावे तो बड़ा ही अच्छा हो। इसके छुड़ाने का सरल उपाय यह है कि माता चार-छः दिन भोजन कम करे जिसमें दुध का उतरना बन्द हो जाय और छः माशे सफेद खरी और चार रत्ती कपूर पानी में पीसकर स्तनों पर मल दिया करे। दस--बारह दिन ऐसा करने से बालक अपने अपने-आप ही दूध पीना छोड़ देता है। परन्तु गाय का शुद्ध बालक को मजे में पिला दिया करे और अन्न कम खिलावे। मजे में पिलाने का यह मतलब नहीं है कि ऐसा पिला दे जिससे बच्चे को अपच हो जाय—जैसा कि आजकल बहुधा स्त्रियाँ करती हैं। यदि दांत निकलते समय बालक को दस्त होने लगें तो बहुत ही उत्तम हो। हां, यदि अधिक दस्त आते हों तो बेलगिरी और रूमी मस्तगी मिलाकर जरा-जरा सा खिला देना चाहिए।

कभी-कभी बालक को इसमें बड़ा कष्ट होता है। मसुड़े लाल होकर फूल आते हैं, गरम रहते हैं, दर्द करते हैं, दुध नहीं पिया जाता, नष्ठ सूखा रहता है, ज्वर हो आता है, हर वक्त चेहरा लाल रहता है, सोते-सोते बालक चिहुँक कर रोने लगता है और पेट

जोरों से चलने लगता है। ऐसी दशा में किसी अच्छे डाक्टर से मसूड़ों को चिरवा देना बड़ा ही लाभदायक है। इससे बालक का कष्ट बहुत ही कम हो जाता है और दाँत जल्द निकल आते हैं।

इन्हीं दिनों बच्चों के कान के पीछे गिल्टी भी निकल आती है। उस गिल्टी को गरम पानी में दूध डालकर धो देना चाहिए। इस समय बालक का आहार भी घटा देना चाहिए।

—०—

## संग्रहणी

यदि बालक को खिलायी-पिलायी चीज हजम न हो तो आधी छटाँक खाने का चूना परात में रखकर पतली धार से उसके ऊपर ढाई सेर पानी का तरेरा दे; ऐसा करने से सब चूना पानी में मिल जाता है। दो घण्टे के बाद जब चूना नीचे बठ जाय तब उस पानी को दूसरे बर्तन में निथार ले। आधे घण्टे के बाद फिर दुबारा इस पानी को किसी साफ बर्तन में निथारे—ताकि चूने का जरा भी अंश पानी में न रह जाय। फिर यही जल थोड़ा-थोड़ा बालक के दूध में मिलाकर पिलाया करे। इससे बालक की उल्टी और फटे दस्तों का आना बन्द हो जाता है।

अजवाइन, सफेद जीरा, सोंठ मिर्च, छोटी पीपल और कूड़े की छाल का चूर्ण शहद के साथ चटाने से भी बालकों की संग्रहणी बहुत जल्द नष्ट हो जाती है।

# मुख में छाले

शीतल चीनी और सफेद कत्था पीसकर शहद के साथ चटाने से मुख के छाले अच्छे हो जाते हैं।

केले पर पड़ी हुई ओस चाटने से भी मुँह में पड़े हुए छाले बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

कपूर और शीतल चीनी पीसकर मुख के भीतरी भाग में लगाना भी बड़ा लाभदायक है।

यदि बालक के मुख में सफेद छाले पड़ गये हों और मुख का रंग लाल हो गया हो तथा लार अधिक गिरता हो तो बालक के मुख में पड़े हुए छालों के ऊपर छोटी इलायची के बीज, सफेद कत्था और वंशलोचन पीसकर बुरक देना चाहिए। अथवा दो रत्ती सुहागा और सात रत्ती गेहूँ का सत पीसकर मुख में मल दे।

---*---

# चेचक

यदि बालक को आजन्म के लिए इस रोग से बचाना हो तो माता पिता का कर्त्तव्य है कि रजोदर्शन से सोलहवें दिन गर्भाधान करें। सोलहवें रात में गर्भाशय होने से जो बालक उत्पन्न होता है उसे प्रायः चेचक की बीमारी नहीं होती। कारण यह कि उस दिन का रज बिलकुल शुद्ध होता है और शीतला रोग माता के रज

विकार के कारण ही बालकों को हुआ करता है। माता के उदर में बालक जिस रुधिर से पलता है, उसी के विकार से शीतला रोग होता है।

यह रोग छुआछूत से भी हो जाता है। यदि घर में एक बच्चे को यह रोग हो जाय तो घरवालों का कर्त्तव्य है कि वे घर के और बच्चों को चेचक-रोगी के पास हर्गिज न जाने दें और सयानी स्त्रियाँ ही स्वतंत्रता के साथ रोगी की सेवा किया करें। इसे रोकने के लिए सबसे अच्छा और सरल उपाय तो टीका लगवाना है। टीका लग जाने पर शीतला निकल जाने की बहुत कुछ आशंका जाती रहती है। ऐसी दशा में यदि यह रोग होता भी है तो अधिक जोर दार नहीं होता।

शीतला रोग साधारणतया दो प्रकार का होता है यहाँ पर भेदोपभेद लिखने की आवश्यकता नहीं है। अतः उस उलझन में न पड़कर रोग का यत्न बतलाना ही विशेष प्रयोजनीय है।

कचनार वृक्ष की छाल के क्वाथ में एक रत्ती सोनामक्खी भस्म बुरक कर बालक को पिलाने से भीतर बढ़ी हुई शीतला शीघ्र बाहर निकल आती है। तुलसी की पत्तियां खिलाने से भी शीतला बाहर निकल आती है। तुलसी की पत्तियों की धूप भी शीतला रोगी को लाभ पहुँचाती है।

चेचक की बीमारी में उड़द की दाल और मीठा नहीं खिलाना चाहिये। माता को भी इन चीजों से बचकर ठंढी चीजों का सेवन

करना उचित है। जब चेचक के दाने बालक के शरीर पर दिख-लायी पड़ने लग जायँ तब माता को चार चार तोला गोला स्वयं खाना चाहिए और यदि बालक दो वर्ष का हो तो दो तोला गोला उसे भी खिलाना लाभदायक है। दो वर्ष के ऊपर के बालक को जितने वर्ष की अवस्था हो उतना तोला खिलाना चाहिए। इसके सेवन से चेचक के दाने अधिकता से नहीं निकलते।

मोती अथवा मोती के सीप, कछुए की खोपड़ी तथा मूँगा इन चीजों को जल से पीसकर बालक को पिलाने से चेचक से होने वाली पीड़ा शान्त हो जाती है। उक्त वस्तुओं को लौंग के जल में घिसकर पिलाने से छोटी शीतला शान्त हो जाती है। पीछे कही गयी नाल में भरी हुई मोती का सेवन दस दिन तक करा देने से तो बालक को चेचक का भय रही नहीं जाता।

इस बीमारी में बालक को बहुत स्वच्छ और हवादार स्थान में रखना चाहिए। कुछ लोगों की राय है कि अँधेरे मकान में रखना चाहिए, जिसमें शीतला के रोगी पर किसी की परछाहीं न पड़ने पावे; क्योंकि परछाहीं पड़ने से बालक के मुख पर दाग पड़ जाते हैं। हैं। पर वास्तव में यह बात ठीक नहीं है। दाग पड़ने का कारण छाया नहीं है, बल्कि घाव का देर में अच्छा होना है। जब खाज चलने पर बालक उसे खुजला देता है अथवा और किसी कारण से घाव देर में अच्छा होता है, तब वहाँ दाग पड़ जाता है। इसलिए दाग न पड़ने देने के लिए बालक के हाथों में कपड़े की थैली लगा

देना आवश्यक है। यद्यपि इससे कोई विशेष लाभ तो नहीं होता, क्योंकि हाथ में थैली लगी रहने पर बालक देर कर खुजलाता है और घाव कर ही देता है; तथापि इतना फायदा तो अवश्य ही होता है कि बालक आसानी से अंग को खुजला नहीं सकता और जहाँ खुजलाता है वहाँ विषैला नाखून नहीं लगा सकता।

खुजली निवारण करने के लिए कबूतर के पंख से मक्खन या मलाई खुजली के स्थान पर लगा देना चाहिए। अथवा चूने के पानी में नारियल का तेल फेट कर लगा देना चाहिए। इसके लगाने से दाग नहीं पड़ता और रोगी बालक को आराम मिलता है।

जब शीतला के दाने फूट जायँ, तब सिर्सा, पीपल, लिसोरा और गूलर की छाल को जलाकर उसकी पिसी हुई राख में घी मिलाकर फफोलों पर लगाना चाहिए। इससे दाने बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

—*—

## खुजली

यदि बालक को खुजली हो जाय तो चूने के साफ पानी में कड़वा तेल डालकर खूब हिलावे। जब वह गाढ़ा हो जाय, तब रुई के फाहे से खुजली पर लगा दे।

तेली को कोल्हू का पुराना पाचर जो खूब तेल खाये हुए हो, लाकर उस लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े करके एक मिट्टी के बर्त्तन

में नीचे छेद करके भर दे। छेद में कपड़े की बत्ती [illegible] कर लगा दे। बाद जमीन में एक गढ़ा खोदकर एक बर्तन रक्खे और उसके ऊपर लकड़ी से भरी हुई छेदवाली हँडी रख दे। फिर उस बर्त्तन या मुँह अच्छी तरह से बन्द करके उसके ऊपर गोहरी सुलगा दे। इस प्रकार आँच पाकर जब लकड़ी का तेल नीचे के बर्त्तन में टपक जाय, तब उसे बोतल में भर कर धर दे और वही तेल खुजली में लगावे। यह तेल स्त्री-पुरुष सबकी खुजली को नष्ट कर देता है; किन्तु अत्यन्त छोटे बच्चों को यह तेल न लगाना चाहिए; क्योंकि यह कुछ-कुछ चुन चुनाता है।

—*—

# मसान

यह रोग अधिकतर सौर में उत्पन्न होता है। इस रोग की उत्पत्ति गन्दगी के कारण होती है। इसमें बालक की पसली चलने लगती है, ज्वर भी हो आता है। पसलियों में कफ जम जाता है। कभी तो दस्त होते हैं और कभी नहीं होते। बालक अचेत रहता है। यह सर्द और गर्म दो प्रकार का होता है। इस रोग में दस्त करा देना बड़ा ही लाभदायक है। गर्म से होने वाले मसान में तो कोई डर नहीं रहता, परन्तु सर्दी से होने वाले मसान में भय रहता है। इसकी दवा यह है:—

कबीला, चूना, नीलाथोथा, बड़ी हड़, बहेड़े का छिलका, और

सफेद कत्था इन सबको सम-मात्रा में ले कूट-छान कर गोली बना ले। फिर इसको घी में मिलाकर बालक की पसली पर लेप कर दे। अथवा, कंजे का बीज एक, नीलाथोथा एक रत्ती इन दोनों चीजों को पीसकर सरसो के बराबर की गोली बनाकर रख दे और एक गोली प्रति दिन बच्चे को खिलाया करे। या रेंडी का तेल बालक के पेट पर मलकर बकाइन के पत्ते गरम करके बाँध दे।

यदि बालक के शरीर पर लाल चकत्ते पड़ गये हों और ज्वर भी हो तथा वे ऐसे हों कि आज पेट पर दिखलायी पड़ें तो कल जाँघों पर दिखलायी पड़ें और परसों मुख पर निकल आवें, तो बैतरा सोंठ का चूर्ण पावभर, दही आधपाव, छोटी पीपल आधपाव इन सबको मिट्टी की हाँड़ी में भर कर उसका मुँह बन्द कर दे। बाद एक गढ़ा खोदे और उसमें हाँड़ी रखकर चारो ओर से गोहरी धर के आग लगा दे। जब गोहरी जलकर राख हो जाय तब उस राख को निकाल कर दूसरी गोहरी भर कर फिर आग लगा दे। इस प्रकार तीन आँच देकर ठण्ढा हो जाने पर हाँड़ी में से रत्ती-रत्ती भर सब दवा निकाल कर शीशी में रख मजबूती से काग लगा दे। फिर यही दवा माता के दूध में चावल भर दे। यदि रोग का बल अधिक हो तो एक रत्ती अदरख का रस और छः रत्ती शहद मिलाकर तीन दिन तक दोनों वक्त दे।

—*—

## पसली

यदि बालक की पसली चलती हो तो तुलसीदल के चार रत्ती रस में एक माशा शहद मिलाकर देना चाहिए और नीचे लिखे तेल को पेट पर मलकर सेंक देना चाहिए ।

—o—

## तेल बनाने की रीति

अदरख और लहसुन के दो-दो तोले रस में आधी छटाँक मीठा तेल मिलाकर मधुर आँच से पकावे । जब जलकर केवल तेल रह जाय, तब उसे एक शीशी में भरकर रख दे । जिस बालक को बहुधा पसली का रोग हो जाता हो उसके पेट पर ऊपर की रीति से मालिश किया करे ।

—:o:—

## पेट बढ़ना

यदि बालक का पेट बढ़ आवे तो शहद का शर्बत थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना चाहिए । कुछ दिनों तक इसका सेवन करने से पेट पचकर ठीक हो जाता है ।

—o—

## चिल्हक

अगर पेशाब करते समय बालक रोने लगे और इन्द्रिय को पकड़-पकड़ कर नोचे तो जान लेना चाहिए कि पेशाब करने में चिल्हक पैदा हो रही है। इसके लिए थोड़े से बबूल के गोंद को कपड़े में बाँधकर पानी में भिगो दे। बाद उस पानी में मिश्री मिलाकर दिनभर में पाँच-छः बार पिलावे। अथवा धनियाँ को पानी में भिगोकर रातभर रहने दे और सबेरे छानकर मिश्री मिला मिट्टी के नये बर्त्तन में रख दे और थोड़ा-थोड़ा करके पिलावे। यह इन्द्रिय जुलाब है। इससे गर्मी शान्त हो जाती है और पेशाब के समय होने वाला चिल्हक फौरन ही शान्त हो जाता है। या पत्थर की बेर ( यह यहूद देश का पत्थर है और इसे 'हजरुल यहूद' कहा जाता है—पंसारियों के यहाँ मिलती है ) को पानी में घिसकर पिलाने से भी चिल्हक दूर हो जाती है।

—o—

## नाक से रुधिर बहना

शंखपुष्पी ( कौड़ेनी ) को मिर्च के साथ पीसकर सेवन करने से विनाश का फूटना बन्द हो जाता। बच्चों को बहुत थोड़ी मात्रा में यह चीज देनी चाहिए; क्योंकि यह बहुत ही तर चीज है।

अनार के फूल का रस और सुफेद दूब का रस इन दोनों से

दिनभर में दो-तीन बार नास लेने से भी रुधिर का गिरना बन्द हो जाता है। अथवा फिटकिरी का पानी सूँघे।

यदि नाक में कीड़े पड़ गये हों तो पिंडोल मिट्टी की डली कूट कर रोगी के मुख पर एक कपड़ा डाल उसी के ऊपर वह मिट्टी रख दे। आँख बन्द कराकर उसके मस्तक पर भी मिट्टी डाल दे। बाद धीरे-धीरे उसके ऊपर पानी छिड़के। जब मिट्टी तर हो जाय, तब पानी छिड़कना बन्द कर दे। इस मिट्टी की सोंधी महँक नाक में जाने से कीड़े बाहर निकल आते हैं। तीन-चार दिन ऐसा करने से सब कीड़े निकल जाते हैं और रोगी आराम हो जाता है।

—०—

# विषूचिका

यदि बालक को हैजा हो जाय तो उसकी दवा बड़ी सावधानी से करनी चाहिए और सबसे अधिक ध्यान उसकी सफाई पर रखना चाहिए। कै या दस्त होने पर फौरन उस स्थान को अँगीठी से तप्त कर देना बहुत ही आवश्यक है इससे हैजे के विषैले कीड़े मर जाते हैं—बढ़ने नहीं पाते। वमन होने पर उस स्थान को लीपना बहुत ही बुरा है।

१—प्याज का अर्क सालभर के बच्चे को पाव तोला पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद दस्त-कै बन्द न होने तक देना चाहिए जब दस्त और कै बन्द हो जाय तब धीरे-धीरे इसे भी दो-तीन खुराक

देकर बन्द कर देना उचित है। यदि प्यास न बन्द हो तो एक फूल कच्ची और आधा फूल भुनी हुई लौंग को घिसकर दे देना उचित है, पर यह मात्रा बड़ी अवस्था वालों की है, बालकों को कम मात्रा में देनी चाहिए।

२—अफीम, हींग, कपूर और कालीमिर्च पीसकर डेढ़-डेढ़ रत्ती की गोली बनाकर घण्टे-घण्टे पर एक गोली बालक को दे।

कपूर का अर्क पिलाना भी बहुत ही लाभदायक है।

४—कपूर को सुँघाया करे और माता स्वयं भी सूँघा करे। यदि वह थोड़ा-थोड़ा कपूर खा लिया करे तो और भी अच्छा हो। बालक के पास रहने में माता को अपने शरीर पर भी पूरी दृष्टि रखनी चाहिए।

—०—

# फूली

यदि आँख में फूली पड़ जाय तो चिरचिटे की जड़ का रस शुद्ध शहद में मिलाकर आँखों में अंजन लगावे। इससे फूली कट-कर आँखें निरोग हो जाती हैं।

—०—

# स्वास्थ्य-रक्षा के नियम

१—हर एक खाद्य पदार्थ दाँतों से इतना अधिक पीसकर खाओ कि उसमें लार पैदा हो जाय। वह शीघ्र पचने वाला पौष्टिक और स्वास्थ्यप्रद होता है।

२—मशीन का आटा तत्त्व-हीन कब्ज करने वाला होने से रोगकर है और हाथ की चक्की का आटा बल-पुष्टि देने वाला सुपच तथा पेट साफ रखने वाला होने से निरोग है।

३—मशीन में साफ किये चावलों का पोषाक तत्त्व निकल जाता है। इस लिए इस प्रकार की चीजों का खाना निरर्थक है।

४—आग पर पकाये पदार्थों की अपेक्षा स्वयं सूर्य ताप से पके पदार्थ अधिक लाभकर होते हैं, जैसे फल आदि।

५—भोजन के आदि और अन्त में केवल आचमन मात्र करना चाहिए और इससे अधिक पानी पीना हानिप्रद है। भोजन के मध्य में थोड़ा जल पीना चाहिए।

६—जिनको पेट की शिकायत रहती हो उनको पाखाना जाने के आध घण्टा पूर्व आध सेर पानी पीकर टहल लेना चाहिए। इस नियम से उनकी शिकायत जाती रहेगी।

७—सब दालों की अपेक्षा अरहर की दाल देर हजम है।

८—सब आहारों की अपेक्षा दुग्धाहार उत्तम आहार है तथा दुग्धाहार की अपेक्षा फलाहार और भी उत्तम है।

९—तमाखू, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, चरस, भाँग, शराब, चाय, काफी आदि जितने मादक द्रव्य हैं, इनको भूलकर भी कभी सेवन न करे। ये उत्तेजक और स्वास्थ्य बिगाड़ने वाले हैं।

१०—जब तक पहला भोजन अच्छी प्रकार हजम होकर पेट साफ न हो जाय तब तक दूसरा भोजन कभी न खाय। इस प्रकार करने से कभी पेट खराब नहीं होगा।

११—जिनकी पाचन-शक्ति निर्बल पड़ गयी हो वे निरन्तर गदरे ( अधकचरे ) फलोंका सेवन करें। उनमें फिर यथार्थ-शक्ति लौट आयगी।

१२—फलों के पूर्ण पक जाने पर उनमें शक्तियों का ह्रास आरम्भ हो जाता है अतएव स्वास्थ्य के लिए गदरे अर्थात् अधपके फल ही अधिक लाभदायक हैं।

१३—बथुआ, सोआ, पालक आदि हरे शाक-पात सूखे आलू लौकी आदि की अपेक्षा अधिक शरीर-पोषक और हितकर होते हैं। छिलकेदार तरकारी अधिक लाभदायक होती है। हरएक शाक को मन्द-मन्द आँच से अपने ही पानी में गला देना अच्छा है।

१४—दिन में थोड़ा-थोड़ा कर अनेक बार जल पीना चाहिए। जिसका कुल परिमाण तीन सेर तक होना उचित है।

१५—भूख प्यास लगने पर भोजन और जल का सेवन अवश्य करना चाहिए। नहीं तो स्वास्थ्य बिगड़ता है।

१६—पाखाना, पेशाब, जम्हाई, नींद और छींक रोक देने से

चित्र नं १६

चौथा महीना
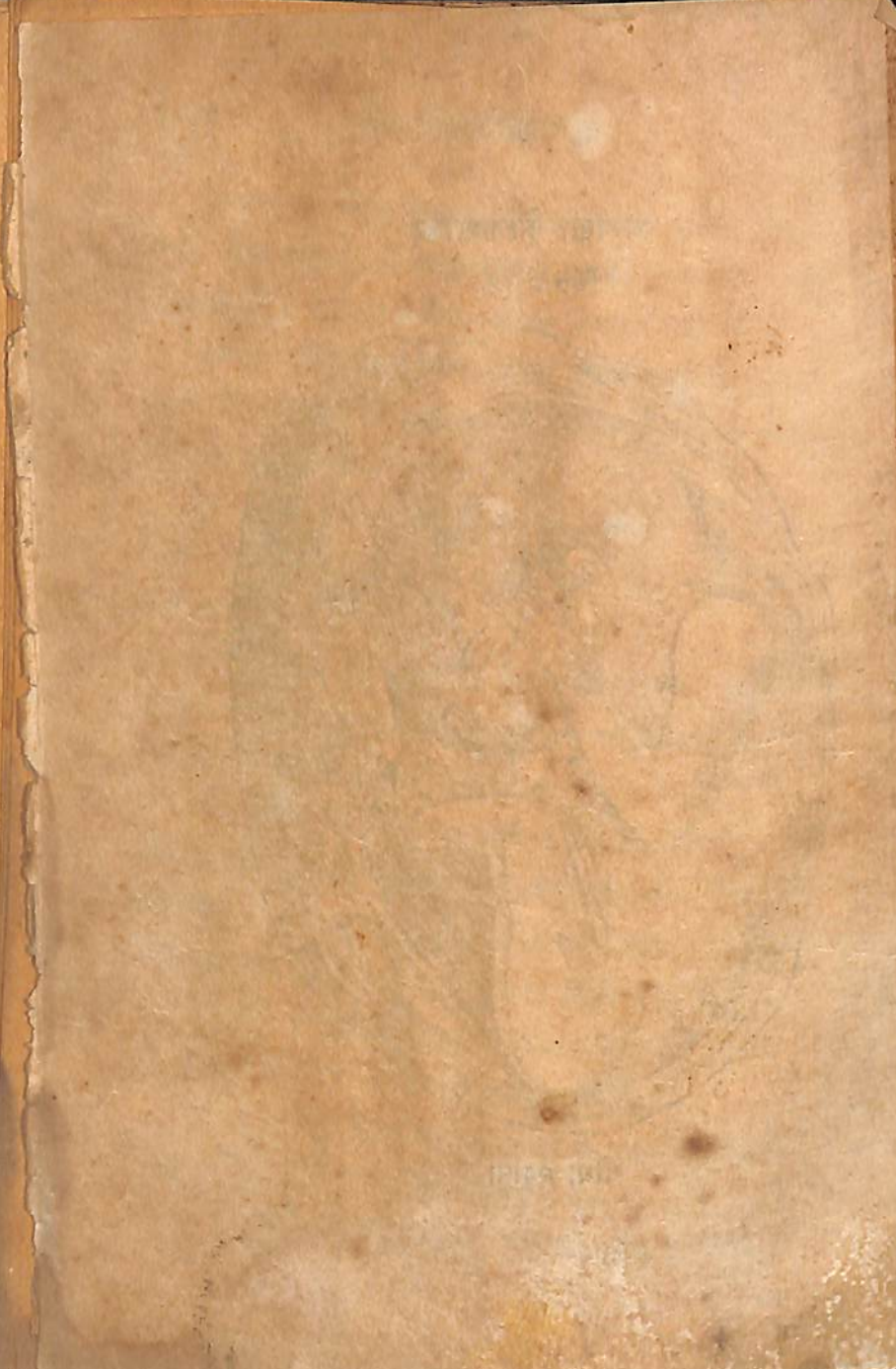
अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

१७—प्रतिदिन सबेरे और शाम को पाखाना जाना चाहिए। दो बार पैखाना जाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।

१८—नित्य प्रति सबेरे चार बजे उठना, और रात को नौ बजे सोना चाहिए। इससे स्वास्थ्य वृद्धि होती है।

१९—सबेरे बासी मुँह पानी पीकर कुछ देर टहलना चाहिए और फिर शौच दन्तधावन, स्नान से निवृत्त होकर बाहर वायु-सेवन के लिए निकल जाना सर्वोत्तम है। चलने में इतनी तीव्रता हो कि अंग-प्रत्यंग में पसीना आ जाय। किसी शुद्ध स्थान पर खुली हवा में बैठकर सन्ध्या और प्राणायाम करना चाहिए, तत्पश्चात् घर में आकर सूर्योदय के साथ-साथ हवन कर डाले।

२०—ताजा और सादा भोजन अच्छा है। बासी और गरिष्ट भोजन स्वास्थ्य बिगाड़ता है।

२१—बत्तीस अथवा चालीस ग्रास से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। चाहे कितना ही स्वादिष्ट भोजन क्यों न हो।

२२—किसी भी ऋतु में मुंह ढँककर न सोना चाहिए। श्वास सदा नाक से ही लेनी चाहिए, मुँह से नहीं।

२३—स्नान के समय सबसे पहले सिर धोकर फिर सर्वाङ्ग स्नान करें। इससे आरोग्यता और बुद्धि बढ़ती है।

२४—पानी हमेशा ढाँप कर रखना और छानकर पीना चाहिए

२५—अनपच या पेट का दर्द दूर करने के लिये ताजा अथवा

गरम जल परम औषध है ।

२६—रहने का मकान हमेशा हवादार और स्वच्छ होना चाहिए। नंगे शरीर शुद्ध वायु सेवन से अनेक रोग दूर होते हैं ।

२७—नियमित आहार-विहार करने वाला कभी रोगी नहीं होता और हो भी जाय तो शीघ्र स्वस्थ हो जाता है ।

२८—रोग, अग्नि और ऋण ये शेष रहने पर बढ़ते ही जाते हैं। इस लिए इनको कभी शेष न रहने दे ।

२९—"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" मनुष्यों का अपवित्र मन बन्धन का हेतु है और पवित्र मन मोक्ष का कारण है। कामदेव को मन से उत्पन्न होने के कारण ही मनोज या मनसिज कहते हैं। वह यदि अपवित्र मन में पैदा होता है तो तन मन धन सभी को बरबाद कर देता है और स्वच्छ मन में पैदा होकर वही धार्मिक सन्तान भी पैदा करता है । मन के पवित्र विचार कामदेव को भस्म कर देते हैं। इस लिए कामदेव हमारा परम शत्रु है। वह सम्पूर्ण व्याधियों का घर है । इस लिए सद्विचारों द्वारा उसका विनाश कर व्याधियों से छुटकारा पाना चाहिए और स्वच्छ मन को मोक्ष का साधन बनाना हमारा परम कर्त्तव्य है ।

—०—

# भोजन का परिमाण

एक स्वस्थ साधारण मनुष्य के लिए ३२ ग्रास और कसरती के लिए ४० ग्रास तक भोजन करना चाहिए। क्योंकि परमात्मा ने बत्तीस दाँत दिये हैं इस लिये बत्तीस ही ग्रास उचित हैं यदि अधिक बलवान कसरती है तो सवायी मात्रा ४० ग्रास रक्खी गयी है। रोगी के लिये आधी अथवा यथोचित खुराक होनी चाहिए। एक ग्रास एक तोलाभर की होना उचित है इससे अधिक नहीं। चालीस तोले का आध सेर और बत्तीस का डेढ़ पाव तैयार अन्न होता है। इतना एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त है। एक मसल है "आधपाव रोगी, पावभर भोगी, आधसेर मर्द, और सेर भर बर्ध" आधसेर से ऊपर सिवाय पेटू के और कौन खा सकता है। किन्तु जिनको दुग्धादि पदार्थ प्रप्त नहीं हो सकते उनकी खुराक अधिक बढ़ जाती है, क्योंकि तर पदार्थ स्वभावतः अन्न का भाग कम कर देते हैं। इसी लिये आजकल लोगों की खुराक अधिक बढ़ी हुई है क्योंकि उन्हें घी दुग्ध आदि तर पदार्थ प्राप्त नहीं हो रहे अतः शुष्क खुराक बढ़ रही है। इसका परिणाम सिवाय रोग के और क्या हो सकता हैं। इसी लिये उदर विकारों के रोग का प्रकोप हर ओर दिखायी दे रहा है। यह भी मिथ्याहार कहाता है। दुग्ध घी की रक्षा के लिये गो-रक्षा की परम आवश्यकता है। इसमें वनस्पति आदि का घी दुग्ध काम न कर सकेगा। प्रत्युत उससे हानि ही होगी।

# ग्रास चर्वण

एक ग्रास कितनी बार चबाना चाहिए। परमात्मा ने उसकी संख्या स्वयमेव निर्माण कर दी है अर्थात् जितने दाँत हैं उतनी ही बार यदि एक ग्रास को चबाया जाय तो वह पिसकर इतना बारीक हो जायगा कि उसका रस बहुत शीघ्र रस-वाहिनी नाड़ियें खींच लेंगी और किसी प्रकार का रोग भी उत्पन्न नहीं होगा। प्यास भी कम लगेगी। क्योंकि अधिक चबाने से मुख में लवाब बन जाता है जो कण्ठ में खुश्की पैदा नहीं होने देता जिससे प्यास नहीं लगती और पानी कम पीने में आता है। किन्हीं का सिद्धान्त है कि भोजन में जल नहीं पीना चाहिए और घण्टा भर ठहर कर पीना चाहिए तथा कोई भोजन के मध्य में अमृत कहते हैं जैसे कहा है—

**अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।**
**भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥**

अर्थ—अपच के समय जलपान औषध का काम करता है और पच जाने पर जलपान बल-वृद्धि करता है। भोजन के बीच थोड़ा सा जलपान अमृत के तुल्य होता है और भोजन के अन्त में पानी पीना विष के समान है।

भोजन के आरम्भ में तीन आचमन अवश्य कर लेना चाहिए उससे कण्ठ गीला हो जाता है और प्यास पैदा नहीं होने देता।

भोजन के मध्य में जल पीने से अन्न की मात्रा घट जाती है, अन्यथा अन्न का भाग अधिक हो जाने से आलस्य उत्पन्न करता है और जल आलस्य विनाश करने वाला है। अत्यन्त ग्रास चबाने से प्यास स्वयं ही कम लगती है और जो लगती भी है वह उचित ही है। उसके अनुसार जल पीना अमृत कहा गया है यदि अधिक लगती हो तो कोई उदर-विकार समझना चाहिए। तब भोजन कम कर देना उचित है। घण्टाभर के बाद जब प्यास लगे तब थोड़ा-थोड़ा कर खूब जल पीना उत्तम है इससे उदर-विकार पच जायगा। भोजन के अन्त में भी तीन आचमन मात्र करके उठ जाना चाहिए। जिन लोगों का मत भोजन में जल का निषेध है वे भोजन के आध घण्टा पूर्व जल का विधान करते हैं। उसके विधान का भी यही आशय निकलता है कि अन्न की मात्रा घटायी जाय। क्योंकि जब पेट में जल रहेगा तो सुतरां अन्न कम खाया जायगा।

—o—

# भोजन करने का समय

प्रातःकाल १० बजे से १२ बजे तक, और सायंकाल को ८ बजे तक अवश्य भोजन कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् भोजन करना रोगों को निमन्त्रण देना है क्योंकि सूर्य के तेज की वृद्धि के साथ-साथ हमारी जठराग्नि की भी वृद्धि होती जो अन्नपाचन में बड़ी सहायता देती है और सायंकाल का भोजन अत्यन्त हलका और

स्वल्प होना चाहिए जो केवल जठराग्नि की सहायता से ही हजम हो जाय। जैसे थोड़ा गर्म दुध थोड़ी चोनी डालकर धोरे-धोरे घूँट घूँट कर पीना चाहिए। दवायी को छोड़कर रात को अधिक गर्म दुध न पीना चाहिए क्योंकि उत्तेजना पैदा कर वह स्वप्नदोष भी पैदा कर देता है।

# ताजा भोजन

भोजन सदैव ताजा करना उत्तम है। बासी अन्न तमोगुणी होकर बल, बुद्धि और आयु का हरने वाला है तथा रोगकर भी होता है। इस लिए सर्वथा त्याज्य है। ताजा भोजन अवश्य हो किन्तु अत्यन्त गरम न होना चाहिए, कवोष्णा ( थोड़ा गरम ) अर्थात शरीर की गर्मी के समान गरम हो। लोग बहुत गरम भोजन करते, और उस पर अत्यन्त शीतल जल, गरमी के दिन हों तो बरफ डालकर पीते हैं। वे बहुत ही बुरा करते हैं। क्योंकि गरम भोजन से दाँत गरम हो जाते हैं और उन पर ठण्ढा पानी लगने पर गरम, सर्द मसूड़े हो जाते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि असमय ही दाँत हिलकर गिर जाते हैं। दूसरे पानी भी अधिक पीने में आता है जिससे बहजमी रोग उत्पन्न हो जाता है। ठण्ढा भोजन करने से अधिक ठण्ढा पानी पोने की विशेष इच्छा नहीं होती और न अधिक पोने में ही आता है। गरम रोटी ठीक चबाने में भी नहीं आती जो देर-हजम और अजीर्णता उत्पन्न करती है।

# अहार विचार

फलाहार, दुग्धाहार, अन्नाहार, माँसाहार, रक्ताहार, मृतिकाहार, काष्ठाहार, रसाहार, पवनाहार इस प्रकार मिलाकर नौ प्रकार के आहार होते हैं। ये उपरोक्त आहार संसारी जीवों के हैं। जिनमें से पहले के चार प्रसिद्ध और उत्तर के पाँच अप्रसिद्ध हैं। इस लिए हम उलटी ओर से विचार करेंगे।

## पवनाहार

सर्प का मुख्य आहार पवन है। वह मिट्टी और ओस भी चाटता है। ऐसा अनुभवी लोगों का कहना है कि—

**सर्पा पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते,**
**कन्दैर्फलैर्मुनिवराः क्षपयन्तिकालम्।**

इत्यादि वचनों से सर्प का पवनभक्षी होना स्पष्ट सिद्ध होता है। इसी प्रकार गोजर, कानसलाई, बिच्छू आदि भी वायु-भक्षी हैं। ये बड़े हितकारी जीव हैं क्योंकि वायु में रहने वाला विष ही इनकी खुराक है, जो हम लोगों के शरीर से मल-मूत्र और श्वासादि द्वारा निकला हुआ विष वायु में मिला होता है उसे ही ये खाते हैं इसी लिए ये गन्दे स्थानों पर ही रहते हैं और साफ स्थानों पर नहीं। यदि आप अपने घर साफ सुथरे रक्खेंगे तो वे वहाँ नहीं आयँगे, क्योंकि वहाँ उनकी खुराक नहीं मिलती। जब नये अन्न शाक-पात

घास आदि उत्पन्न होते हैं उस समय उनमें विष होता है उस कच्ची विषैली घास को जो पशु खाता है, उसका पेट फूल जाता है और वह मर जाता है। रात को जब ओस उन पर पड़ जाती है तो उन घासादि का विष पत्तों पर पड़े ओस के विन्दुओं में आ जाता है जिसे सर्प बड़े प्रेम से चाट लेता है। इसी लिए किसी जीव को नहीं मारना चाहिए। क्योंकि परमात्मा ने इन्हें हमारे हित के लिए रचा है।

## रसाहार

जो जीव केवल रस पीकर ही जीते हैं उनको रसाहारी कहते हैं। जैसे शहद की मक्खी, भ्रमर आदि ये सदैव फूल पत्तों आदि के रसों को चूसते हैं और अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

## काष्ठाहार

काष्ठाहारी वे जीव हैं जो काष्ठ खाकर अपनी जीवन यात्रा पूरी करते हैं। जैसे घुन या काष्ठ का कीड़ा जो काष्ठ में रहता और काष्ठ ही खाता है। व्हाइल आट अर्थात् काठ में रहने वाले सफेद कीड़े दीमक आदि।

## मृतिकाहार

मृतिकाहारी वे ही जीव हैं जो मिट्टी खाते हैं। वे प्रायः बरसात में पैदा होते हैं। जैसे,-केचुआ आदि, जब वे हगते हैं तो उनका पाखाना रात को चमकता है। यह भगवान की अद्भुत महिमा है।

## रक्ताहार

रक्ताहारी वे जीव हैं जो केवल रक्तपान करके जीवन धारण करते हैं। जैसे जूँ, खटमल आदि । इस प्रकार के जीव प्रायः प्राणियों के शरीरों पर रहते हैं ।

## मांसाहार

मांसाहारी वे ही जीव हैं जो केवल अपना जीवन मांस से ही यापन करते हैं। जैसे शेर, चीता आदि जो प्रायः जंगलों में रहते हैं और जल में भी ।

## अन्नाहार

अन्न पर जिनका जीवन निर्भर है वे अन्नाहारी हैं । अर्थात मनुष्यादि अनेक जीव हैं ।

## दुग्धाहार

मनुष्य का दूसरा भोजन दुग्ध है। प्रायः अन्न के साथ इसे दूध का आहार करना पड़ता है। क्योंकि इसके बिना रूक्ष भोजन अधिक खाना पड़ता है। जो हानिप्रद होता है। दूध के बिना घी भी नहीं मिल सकता जो परमावश्यक है। अस्तु-यह रहा मिलिताहार। जब मनुष्य को योगाभ्यास की आवश्यकता पड़ती है तब अन्न भारी और मलावह होता है—उस समय दूध ही उत्तम आहार होता है जो तर पुष्ट और हलका होता है । बचपन में तो अनेक

जीव दुग्धाहारी होते हैं। किन्तु फिर नहीं रहते। मनुष्य ही बुद्धि बल से अपनी लाभदायक वस्तुओं का संग्रह कर लेता है यही इसमें पशु आदि से विशेषता है। इसी लिए इसे मनुष्य कहते हैं।

# फलाहार

यह सबसे उत्तम आहार है। क्योंकि प्रकृति इन्हें बनाती है। जमीन से पानी खिचकर स्वच्छ छना हुआ जिसमें किसी प्रकार का विकार नहीं रहता वह फल में संचित होता है और सूर्य की किरणों के ताप से पकता है। जिस वस्तु पर सूर्य का प्रकाश और सूर्य की गरमी तथा चन्द्र की सुधावर्षिणी रश्मियों का संसर्ग हुआ हो तथा जिसने वायु के पवित्र झोकों में कई महीने दिन रात अठखेलियाँ की हों। वह अमृत रस भरा प्रकृति देवी का पैक किया हुआ ताजा फल, जब हमें मिले तब भला उसकी बराबरी कौन कर सकता है। सबसे अधिक स्वास्थ्यप्रद बल और तेज को देने वाला है। बानर को देखो कितना छोटा होता है और बड़े से बड़े पेड़ को हिला डालता है, छोटी-छोटी भुजाओं के बल कितना लम्बा कूदता है। तथा कितनी फुरती रखता है। वह अधिक फलों का ही सेवन करता है। अन्न की अपेक्षा इससे मल बहुत कम तैयार होता है। अधिक से अधिक लाभ देने वाली वस्तु हमें फलों से मिलती है। फलों से कन्द, मूल, शाकपात, आदि सभी का ग्रहण हो जाता है।

—o—

# मनुष्य का आहार मांस नहीं

माँस मनुष्य का आहार नहीं। क्योंकि इसकी रचना मांस-हारियों के साथ नहीं मिलती प्रत्युत निरामिष भोजियों के साथ मिलती है। मनुष्य को तटस्थ मानकर दो प्रकार के जीवों का विचार किया जाता है। एक मांसभोजी और दूसरे निरामिषभोजी। इन दोनों में से जिसके आहार-विहार के साथ इसका मिलान हो जायगा वह उसी श्रेणी का आहार भोगी समझा जायगा।

जैसे शेर, बिल्ली, गिद्ध आदि मांसहारी पशु-पक्षियों के पंजों के नाखून ऐसे पैने मजबूती और घुमे हुए होते हैं कि जो शिकार को बड़ी मजबूती से पकड़ चीर फाड़ कर सकते हैं। परमात्मा ने उन्हें उनको खुराक खाने के लिये वैसे ही ओजार भी दिये हैं। जो कच्चे मांस को चीर-फाड़ सकें। यदि मनुष्य भी मांसहारी होता तो उसे भी वैसे ही साधन दिये जाते। उसे नकली छुरी काँटे आदि ओजारों की आवश्यकता न पड़ती। किन्तु ऐसा नहीं, उसके नाखून के सामने बहुत ही कमजोर और सीधे होते हैं। मांस को चीरना-फाड़ना तो दूर रहा, वे थोड़ा बढ़ जाने पर जरा सी ठोकर स्वयं ही टूट जाते हैं। अधिक क्या, इससे दोनों की बनावट का अन्तर स्पष्ट दिखलायी दे रहा है। हाँ, निरामिषभोजी जीव अर्थात् गाय भैंस बकरी आदि के साथ अवश्य मनुष्य का मिलान होता है। उनके पंजे भी सादे होते हैं।

बिल्ली शेर आदि जितने मांसहारी जीव होंगे, वे सब रात को अन्धकार में अपनी खुराक खोजेंगे और पेटभर, दिन में कहीं छिप-कर सो रहेंगे इसी लिए इनको निशाचर भी कहते हैं। इनकी नेत्र-ज्योति सूर्य का प्रकाश सहन नहीं कर सकती और दिन में सजग जीव भी इनके हाथ में कब आयेंगे। रात में थके-माँदे बेखबर सोये जीवों पर इनकी बन आती है। मांसहारी को गरमी भी बर-दास्त नहीं होती। वे थोड़े परिश्र में थक कर हार जाते हैं। इनके नेत्रों में इतनी शक्ति है कि उन्हें रात को भी दिन की भाँति दिखाई देती है, किन्तु जो निरामिष-भोजी हैं वे दिन में खायेंगे और रात को आराम से सोयेंगे। वे परिश्रम से थकते नहीं और उन्हें रात को मनुष्य की भाँति दिखलायी देता है मांसहारी जीवों की आँखें रात को दीपक के सामने अंगारे की भाँति चमकती है और निरा-मिषियों की नहीं।

मनुष्य भी दिन में सब काम करता है, निरामिषियों की भाँति रात को सो जाता है इसकी आँखें भी नहीं चमकतीं। चारों वेद और छः शास्त्रों के ज्ञाता, दशानन अर्थात् पौलस्त्य मुनि के नाती महाप्रतापी रावण को भी केवल निशाचरी माँस भोजन के कारण ही निशाचर कहा गया। इस लिए इस निशाचरी भोजन का मनुष्य मात्र को सर्वथा त्याग करना उत्तम है।

माँसहारी जीव जब पानी पीते है तब जबान से उठाकर अर्थात् लपलपा कर पीते हैं। निरामिष-भोजी दोनों ओठ मिला खींचकर

पीते हैं। मनुष्य भी ओंठों से खींचकर ही पीता है।

दाँत तीन प्रकार के होते हैं। कुन्तन, छेदन और पेषण इनमें से कृन्तन दाँत मांसहारियों के होते हैं जो नोकिले गोल और टेढ़े होते हैं। जिनका काम छेद करना और चीर डालना है। ये दाँत आगे रहते हैं, इनके पीछे छेदन करने वाले होते हैं अर्थात् जो अलग अलग मांस के टुकड़े कर देते हैं। और पेषण करने वाले दाँत आमिषभोजियों के नहीं होते। क्योंकि उन्हें पीसने को आवश्कता नहीं पड़ती। वे केवल टुकड़े के टुकड़े निगल जाते हैं और उन्हें हजम हो जाते हैं। क्योंकि परमात्मा ने उनके उदर को जठराग्नि इतनी तीव्र रक्खी है कि वह कच्चे माँस से टुकड़े भी हजम कर सके और उन्हें अजीर्ण भी न हो, निरामिष-भोजी जीवों के भी दो प्रकार के दाँत होते हैं एक छेदक और दूसरे पेषक। इनके कृन्तन दाँत नहीं होते क्योंकि इन्हें किसो वस्तु को दाँतों से चीरने को आवश्यकता नहीं पड़ती। मांसाहारियों के आगे के कृन्तन और पीछे के छेदक होते हैं। किन्तु निरामिषियों के आगे के छेदक और पीछे के पेषक होते हैं। ये आगे के दाँतों से प्रत्येक वस्तु को दो टुकड़ों में विभाजित कर देते हैं अर्थात एक मुँह में और दूसरा बाहर। आगे के दाँतों से कटे हुए टुकड़े को पिछले पेषक दाँतों से पीस कर पेट में पहुँचा देते हैं। मनुष्य के भी येही दोनों दाँत होते छेदक और पेषक। भेद इतना ही होता है कि मनुष्य छेदक और पेषक से क्रमशः एक साथ काम लेता जाता है और पशु पहले

केवल छेदक से टुकड़े-टुकड़े करके पेट की एक थैली में पहुँचाते जाते हैं और फिर जल पी बैठ अथवा खड़े रहकर ही, दुबारा अन्दर से मुँह में निकाल कर पेषक दाँतों से पीसते हैं और फिर जठराग्नि में पहुँचा देते हैं।

मांसाहारी जीव का जब बच्चा पैदा होता तब उसकी आँखें बहुत दिनों तक बन्द रहती हैं। वे बच्चे अन्धे के सामन पड़े रहते हैं। किन्तु निरामिषियों के बच्चे पैदा होते ही थोड़ी देर में आँख खोल देते हैं।

इस प्रकार बहुत सी भेद की बातें परमात्मा ने आमिषभोजी और निरामिषियों में रक्खी हैं। मनुष्य यदि इतने पर भी न समझे तो इसमें किसका दोष ? यदि उल्लू को दिन में न दिखलायी दे तो इसमें सूर्य का क्या दोष ? सच कहा है—

नोलूकं विलोकते यदि दिवा,
सूर्य्यस्य किं दूषणम्।

नाखून आदि औजारों का होना, रात्रि का आहार करना, रात के आँखों का चमकना कृन्तन और छेदन दाँतों का होना, छेदन के साथ पेषण का न होना, अर्थात् पीसकर न खाना, लपलपा कर जबान से पानी पीना, जन्म होने पर अनेक दिन तक जन्मान्ध रहना ठीक इसके विपरीत निरामिषभोजियों का वैसे तीखे कुण्ठित नाखूनों का न होना, दिन में आहार करना, रात्रि को आँखों का न चमकना छेदक और पेषक दाँतों का होना तथा कृन्तन का न होना, आठ से

खींच कर पानी पीना, लपलपा कर नहीं, जन्मते ही आँखों का खुलना, बन्द रहना। इन दोनों पशुओं में कितना भारी अन्तर है।

इस तुलना से देखे कि वह निरामिषभोजियों की समता रखता है या आमिषभोजियों की। इस प्रकार मिलान करने से स्पष्ट माल्हम हो जायगा कि मनुष्य निरामिषियों का ही सहयोगी है आमिषियों का नहीं। इस लिए उसे मांस अवश्य त्याग देना चाहिए।

शास्त्रविधि से भी निषेध पाया गया और ईश्वरीय रचना से भी यही सिद्ध हो रहा है कि मनुष्य की खुराक मांस नहीं। योरुप आदि देशों के अनुभवी डाक्टर भी इसका निषेध कर रहे हैं और स्पष्ट आदेश कर रहे हैं कि यह बहुत हानि पहुँचाने वाला है। अब हम एक दूसरी विधि से भी प्रकाश डालना चाहते हैं जो हमारे इस प्रकृत विषय से सम्बन्ध रखता है—

## स्वास्थ्य और मांस

माँस स्वास्थ्य के लिये कैसा है? विचार करने से यह माल्हम होता है कि माँस खाने से जितनी बड़ी और जल्दी बीमारी पैदा होती है उतनी और किसी से नहीं। जिस प्रकार से मनुष्य को संक्रामक रोग होते हैं उसी प्रकार पशु-पक्षियों को भी होते हैं। मानिये किसी तपेदिक के रोगी ने कफ थूका या दमे के रोगी ने थूका; उस कफ को मुर्गा-मुर्गी ने खाया जो प्रायः गली कूचों और कतवारखानों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर खाया करते हैं। और उसका विषैला

असर उस जानवर के माँस में प्रविष्ट हुआ। उस जीव को जो कोई भी खायगा उसे बीमारी क्यों न होगी। लोग यह कहते हैं कि मुर्गी को वह रोग क्यों नहीं हुआ ? सम्भव है मुर्गी उस रोग से पीड़ित हो या न हो। किन्तु उसका असर उसके माँस में तो अवश्य रह सकता है। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता। जिसका अकाट्य प्रमाण आगे दिया जाता है। जिस चील्ह ने मरा हुआ सर्प खाया हो, उसकी बीठ कुत्ता खा लेने से पागल हो जाता है और वह कुत्ता जिस-जिस को काटता है, यदि उसकी यथोचित औषध न की जाय तो वह अवश्य मर जाता है।

इस उदाहरण में देखा जाता है कि खाये हुए सर्प के विष से चील्ह और गीध नहीं मरते और न पगलाते ही हैं। किन्तु उसकी बीठ खाने वाले कुत्ते स्यार आदि जीव पगलाते और मरते भी हैं। क्या बीठ मात्र में उसके विष का असर खतम हो जाता है। उत्तर स्पष्ट है नहीं, क्योंकि देखा जाता है, चील्ह का मांस कोई जीव नहीं खाता और न गलाने से गलता ही है। इसका क्या कारण ? इसका कारण है सर्प के विष का असर है, क्योंकि देखा जाता है जिस मनुष्य को सर्प काट लेता है उसे भी कोई जीव या जल-जन्तु नहीं खाते। इससे स्पष्ट हो गया कि सर्प का विष ही इसका कारण है, जो मनुष्य और सर्पाहारी जीवों के शरीर में व्याप्त होता है।

—o—

# प्राणायाम का फल

वायु में बड़ी शक्ति है। जब वह मोटर के टायर में भर दी जाती है तब वह कितने वजन को कितनी आसानी से हवा की तरह उड़ा ले जाती है, यह बात किसी से छिपी नही। प्रो० राममूर्त्ति इसी के बल पर अस्सी मन का पत्थर छाती पर रखते थे और हाथी को पीठ पर चढ़ाते थे। वायु का शरीर में संग्रह प्राणायाम से ही होता है। प्राणायाम कहते हैं, प्राण के आयाम अर्थात् प्राण की लम्बाई को। प्राण के लम्बा बढ़ा लेने से योगियों की आयु बढ़ जाती है। इस लिए जो भी प्राणायाम करेगा वह अवश्य स्वस्थ ताकतवर होगा और उसकी जीवन-शक्ति बढ़ेगी।

प्राणायाम में तीन क्रियायें करनी पड़ती हैं। पहली क्रिया पूरक अर्थात् प्राणवायु को अत्यन्त धीरे-धीरे नासिका द्वारा अन्दर खींचने का नाम पूरक है। दूसरी क्रिया कुम्भक अर्थात् भीतर खींची हुई वायु को, खींचने के दुगुने तिगुने काल तक अन्दर रोक रखने का नाम कुम्भक है। तीसरी क्रिया रेचक अर्थात् भीतर ली हुई वायु को अत्यन्त धीरे-धीरे बाहर निकालने का नाम रेचक है। पहली और तीसरी क्रिया करने में वायु के जाने का शब्द अपने को भी सुनायी नहीं देना चाहिए।

धीरे-धीरे प्राणायाम का काल बढ़ाना चाहिए, एक साथ बढ़ाने से लाभ के स्थान में हानि होने की सम्भावना है।

# जल

जल हमारे बहुत काम में आता है। इसके बिना हमारा एक भी काम नहीं चलता, आटा सानने दाल, भात, तरकारी आदि सभी खाद्य वस्तुओं के बनाने तथा पीने के काम में आता है। हमारे शरीर तथा भोजन में सत्तर फीसदी जल का अंश माना गया है। इस लिए जल के दूषित होने से भी हमारा स्वास्थ्य बहुत शीघ्र खराब हो सकता है। हलका जल मधुर तथा स्वादिष्ट है और वह हमारे लिए स्वास्थ्यप्रद भी है। भारी पानी नहीं। वह पीने में खारी होता है। उसे यदि पीना पड़े तो औटाकर पीना चाहिए, तब कोई हानि नहीं पहुँचायगा। जल हमेशा मोटे कपड़े से छानकर पीना चाहिए। मनुष्य को प्रतिदिन दिनभर में अन्न से अठगुना जल पीना चाहिए। ऋतु अनुसार कमोवेश भी किया जा सकता है।

जब नगर में रोग फैल जाता है अथवा फैलने की सम्भावना होती है तब प्रायः बराबर देखने में आता है कि म्युनिस्पैलिटी की ओर से नगर के सभी कुओं में लाल बुकनी डाली जाती है। इसका प्रयोजन केवल रोगकारक कीटाणु मारकर जल साफ करना होता है। अनेक स्थानों पर बिना बुझा चूना भी डालते हैं, उससे भी यही लाभ होता है।

—o—

# सिगरेट और बीड़ी

यह दोनों चीजें बहुत ही विषधर हैं, बीड़ी की अपेक्षा सिगरेट में दुने नशे का प्रयोग किया जाता है। एक तमाखू दूसरा अफीम, तमाखू के पत्तों पर अफीम का पानी छिड़का जाता है यदि नशा अधिक तेज करना हो तो अफीम के पानी में पत्ते भिगो दिये जाते हैं जो नशा बहुत लाते हैं। "नीम चढ़े करेले" की तरह इनका असर होता है। इनका पीनेवाला यदि इन्हें छोड़ना चाहे तो कठि-से छोड़ पाता है। बीड़ी, तमाखू, सिगरेट, भाँग, चाय, काफी, कोको, आदि नशीली चीजों पर अब हम विशेष और कुछ अधिक न लिखकर सर्व देश प्रसिद्ध महात्मा गाँधी के लिखे आनुभविक भोजन विषयक लेख का कुछ अंश यहाँ नीचे उद्घृत कर देते हैं।

"हमें कौनसी चीज खानी चाहिए, इसके पहले यह देख लेना आवश्यक है कि हमें कौन सी चीज न खानी चाहिए। मुख की राह से शरीर के अन्दर जाने वाली चीजों की गिनती यदि हम अनाज शब्द में करें तो शराब, बीड़ी, तम्बाकू, भाँग, चाय, काफी कोको और मसाला इत्यादि भी अनाज ही है।

मुझे अनुभव से मालूम हुआ है। यह सब चीजें छोड़ने के लायक हैं, इनमें से कुछ चीजों का अनुभव तो खुदा ही किया है, और कुछ के सम्बन्ध में दूसरों के अनुभव से लाभ उठाया है।

शराब और भाँग को हर धर्म में दूषित ठहराया गया है। फिर

भी शायद ही कोई इनके पीने से परहेज करता हो। शराब से हजारों घर धूल में मिल गये। लाखों आदमियों का सत्यानाश हो चुका। शराबी को किसी बात का ज्ञान नहीं रहता। प्रायः वह माता, स्त्री और लड़की का भेद तक भूल जाता है। शराब से मनुष्य का मेदा जल जाता है अन्त में वह पृथ्वी का भार हो जाता है। शराबी मोरियों में पड़े नजर आते हैं अच्छा मनुष्य भी शराब से कौड़ी का तीन हो जाता है। इस व्यसन से घिरे मनुष्य, होश-हवास ठीक होते भी निकम्मे देख पड़ते हैं। मन पर उनका अधिकार नहीं होता, सदा शेखचिल्लियों के से मनसूबे बाँधा करते हैं। इस लिए शराब और इसी की सगी बहन भाँग दोनों चीजें बिलकुल त्यागने योग्य हैं; इसमें दो मत नहीं हो सकते। कुछ लोग कहते हैं, दवा की भाँति शराब पीने में कोई हर्ज नहीं। परन्तु असल में इतनी की भी जरूरत नहीं। यूरोप—जो शराब का घर है—उन डाक्टरों की भी यही राय है। पहले अनेक बीमारियों में शराब काम में आती थी, परन्तु वहाँ अब बिलकुल बन्द हो गई है। असल में तो दवा की दलील ही निराधार है। शराब के पक्षपाती दिखाना चाहते हैं कि जब शराब दवा के काम में आ सकती है, तब उसे पीने के काम में लाना क्या बुरा है। परन्तु विष भी तो दवा की भाँति काम आता है तो भी कोई उसे खुराक की भाँति बरतने का विचार तक नहीं करता। हो सकता है, कुछ बीमारियों में शराब से लाभ पहुँचे, पर हानि इतनी हो चुकी है कि विचारवान मनुष्य को चाहिए

कि जान जाने दें, पर शराब दवा की भी न ले। शराब से इस शरीर की भलाई होने में जहाँ सैकड़ों मनुष्यों को बुरा होता है वहाँ ऐसे शरीर की रक्षा न कर उसे नष्ट ही हो जाने देना चाहिए। हिन्दुस्तान में लाखों मनुष्य ऐसे हैं जो वैद्य के कहने पर भी शराब न पीवेंगे। वे शराब पीकर वा अपनी समझ में बुरी चीजों का प्रयोग कर जीना नहीं पसन्द करते। अफीम का विचार भी शराब के साथ ही करना चाहिए। अफीम का नशा शराब से भिन्न है; फिर भी उससे शराब से कम बुराई नहीं होती। अफीम के फेर में पड़कर चीन जैसे बड़े राष्ट्र की प्रजा पायी हुई स्वन्त्रता खो बैठी। हमारे जागीरदार भी अफीम के चंगुल में पड़कर अपनी-अपनी जागीरों से हाथ धो बैठे।

शराब भाँग और अफीम की बुराइयाँ तो साधारण पाठकों की समझ में तुरन्त आ जाती है, और बीड़ी तम्बाकू की नहीं आतीं। बीड़ी और तम्बाकू ने मनुष्य जाति पर अपना ऐसा असर जमा रखा है कि उसके मिटने में एक जमाना लगेगा। छोटे-बड़े सभी इसके फेर में पड़े हैं। अच्छे भलेमानस भी बीड़ी सिगरेट का व्यवहार करते है। इनके पीने में कोई शरम नहीं समझी जाती। मित्रों की खातिर का यह एक महान् साधन बन गई है। दिन-दिन इनका प्रचार बढ़ता जाता है सर्वसाधारण को इस बात की खबर नहीं कि सिगरेट का व्यसन बढ़ाने के लिए सिगरेट के व्यापारी लोग उसकी बनावट में हजारों तरकीबें लड़ाते हैं। जर्दे तम्बाकू में

अनेक प्रकार के सुगन्धित तेजाब छिड़कते हैं और अफीम का पानी मिलाते हैं। इससे सिगरेट हम पर अधिकाधिक अधिकार जमाती जाती है। उसके लिए नोटिसबाजों में हजारों पौंड खर्च किये जाते हैं। यूरोप में सिगरेट कम्पनियाँ अपने छापेखाने चलातीं, बायस-कोप खरीदतीं, अनेक प्रकार की इनाम बाँटतीं, लाटरियाँ निकालती और नोटिसबाजी में पानी की तरह पैसा बहाती है। फल यह हुआ कि स्त्रियों तक को सिगरेट की आदत लग गई है। सिगरेट पीने पर कविताएँ भी बनायी गई है, इनमें सिगरेट को "गरीब, नेवाज" ( दीनबन्धु ) की उपमा दी गई है।

सिगरेट तम्बाकू से होने वाली हानियों की गिनती नहीं हो सकती। सिगरेट पीने वाले मनुष्य का व्यसन इतना अधिक बढ़ जाता है कि वह बिना किसी का परवा किये दूसरे के घर में बिना इजाजत ही सिगरेट का धुआँ उड़ाने लगता है, किसी की शरम नहीं रखता।

देखा गया है कि सिगरेट और तम्बाकू पीने वाला मनुष्य इन चीजों की प्राप्ति के लिये बहुतेरे अपराध तक कर बैठता है। लड़के माता-पिता के पैसे चुराते हैं, जेल में कैदी बहुत जोखिम उठाकर सिगरेट रखते हैं। दूसरे आहार बिना काम चल जाता है, सिगरेट बिना नहीं। लड़ाई में सिगरेट पीने वाले सिपाहियों को सिगरेट नहीं मिलती तो ढीले पड़ जाते हैं, फिर किसी काम के नहीं रहते।

सिगरेट पर स्वर्गीय टालस्टाय ने लिखा है कि एक मनुष्य के मन में अपनी स्त्री के खून करने का विचार आया। छुरा निकाला, चलाने को तैयार हुआ, पछताया और पीछे हट गया। फिर सिगरेट पीने बैठा, सिगरेट के जहर से अक्ल पर पर्दा पड़ गया; तब उसने खून किया। मि० टालस्टाय तम्बाकू को एक सूक्ष्म प्रकार का और कई अंशों में शराब से भी खराब नशा मानते थे।

सिगरेट का खर्च भी कुछ कम नहीं। कुछ मनुष्यों को चुरुट के पीछे हर महीने ५ पौंड अर्थात् ७५) रुपये तक खर्च करते मैंने अपनी आँखों देखा है।

सिगरेट से पाचनशक्ति कम हो जाती है। भोजन का स्वाद नहीं मिलता। अन्न फीका मालूम होता है, इस लिए उसमें मसाला इत्यादि डालना पड़ता है। सिगरेट पीने वाले की साँस से बदबू निकलने लगती है। उसका धुआँ हवा को बिगाड़ता है। कितनी ही बार मुँह में फफोले पड़ आते हैं। मसूड़े और दाँत काले या पीले पड़ जाते हैं इससे कितनी ही लोगों को बड़ी ही भयंकर बीमारियाँ हो जाती हैं। समझ में नहीं आता कि शराब के निन्दक सिगरेट क्यों पीते हैं? सिगरेट का जहर सूक्ष्म है, शायद इसीसे उसका प्रयोग करते हैं। जो निरोग रहना चाहते हैं उन्हें सिगरेट पीना जरूर छोड़ देना चाहिए।

शराब, तम्बाकू, बीड़ी और भाँग इत्यादि व्यसन हमारे शरीर का आरोग्य हर लेते हैं; मन और धन के आरोग्य का भी हरण

करते हैं। इनसे हमारे आचरण का नाश होता और हम व्यसनों के गुलाम बन जाते हैं।

लोगों के मन में यह बैठाना बहुत कठिन जान पड़ता है कि चाय, काफी और कोको बुरी चीजें हैं। पर, चाहे जो हो कहना ही पड़ता है कि ये सब चीज बुरी है। इनमें एक विशेष प्रकार का नशा होता है। यदि चाय और काफी के साथ दूध शक्कर न हो तो इनमें एक भी पुष्टिकारक पदार्थ नहीं। केवल चाय और काफी पर जीवन निर्वाह करके कितने ही प्रयोग किये गये। सिद्ध यही हुआ कि इनमें खून बढ़ाने वाली चीजें बिलकुल नहीं हैं। हम लोग कुछ वर्ष पहले साधारण तौर पर चाय और काफी नहीं पीते थे, कहीं किसी विशेष अवसर पर या दवा में इन्हें पी लेते थे, परन्तु अब नई रोशनी के कारण चाय और काफी साधारण वस्तु बन गई है। अब तो हम केवल मिलने आने वाले मेहमानों तक को ये चीजें पिलाते हैं। चाय की पार्टियाँ देते हैं। लार्ड कर्जन के शासनकाल से तो चाय ने और भी हाथ-पैर फैला दिये हैं। इन साहब बहादुर ने चाय के व्यापारियों को उत्तेजना दे देकर चाय का प्रचार घर-घर करा दिया और लोग जहाँ पहले आरोग्यकारक चीजें पीते थे वहाँ अब रोगकारी चाय पीने लग गये हैं।

कोको बहुत नहीं फैला, क्योंकि वह चाय से कुछ महँगा है। सौभाग्य से हम लोगों को इसका परिचय बहुत कम है, फिर भी फैसनेबुल घरों में उसकी पूर्ण सत्ता है।

चाय, काफी और कोको तीनों चीजें पाचनशक्ति को कम करने वाली हैं। ये नशे की चीजें हैं, क्योंकि जिन्हें व्यसन पड़ जाता है वे छोड़ नहीं सकते। लेखक खुद भी चाय पीता था, यदि चाय के समय इसे चाय न मिलती थी तो आलस्य मालूम होता था। यह नशे की पक्की निशानी है। एक उत्सव में लगभग ५०० स्त्रियाँ और बच्चे इकट्ठे हुए थे। प्रबन्धकों ने तै कर लिया था कि इनको चाय या काफी न देनी चाहिए। जो स्त्रियाँ आई थीं उन्हें ४ बजे चाय पीने की अचूक आदत थी। प्रबन्धकों को खबर मिली कि औरतों को चाय न मिलेगी तो बीमार पड़ जायँगी चल-फिर न सकेंगी। लाचार उन्हें अपना प्रबन्ध बदलना पड़ा। चाय बन ही रही थी कि शोर मच गया, चाय जल्दी चाहिए। औरतों का माथा चढ़ा हुआ था, उन्हें पल-पल महीने के समान मालूम होता था। चाय मिलने पर उन महिलाओं के चेहरे खिले और उन्होंने होश सँभाला, यह एक सच्ची घटना है। एक स्त्री को चाय से इतना नुकसान पहुँचा था कि उसे खाना हजम न होता था, सिर सदा दुखता रहता, पर जब से उसने अपने मन को वश में करके चाय पीना छोड़ा तब से उसकी तबीयत सुधर गई। इङ्गलैण्ड की बेटरसी म्यूनिसिपैलिटी के एक डाक्टर ने अनुसन्धान करके बतलाया है कि इस इलाके की हजारों स्त्रियों के ज्ञान तन्तुओं में दर्द होने का कारण उनका व्यसन है। चाय से मनुष्यों के आरोग्य बिगड़ने के बहुतेरे प्रमाण मुझे मिल चुके हैं। मेरा पक्का मत है कि चाय से

आरोग्य को कितनी हानि पहुँचती है। काफी के सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है:—

"कफ छांटे, बादी हरे, करे धातु बल छीन।
रक्तहिं पानी सम करे, दो गुन अवगुन तीन॥"

यह दोहा बिलकुल ठीक मालूम होता है। निःसन्देह काफी में कफ और बादी हरने की शक्ति है। पर अन्य चीजों में भी यह शक्ति मौजूद है। इन कारणों से काफी पीने वाले अदरख का रस पीयें तो काफी की आवश्यकता पूरी हो जायगी। याद रहे कि धातु जैसी अमूल्य चीज को जिस वस्तु से हानि पहुँचे, जिससे बल का क्षय हो, जो रक्त को पानी कर दे, उसे त्यागने ही में कल्याण है।

कोको में भी ये सब दोष हैं। चाय के समान इसमें वह तत्व मौजूद है जो चमड़े को बिलकुल संज्ञाशून्य बना देता है।

जो लोग आरोग्य में नीति का समावेश करते हैं उनके सामने इन तीनों वस्तुओं के सम्बन्ध में नीचे लिखी दलीलें पेश की जा सकती हैं। जाय काफी और कोको अधिकतर उन मजदूरों के द्वारा उत्पन्न की जाती है जो शर्तबँधे कुली बनकर चाय के बगीचों में जाते हैं। जहाँ कोको की उपज होती है वहाँ मजदूरों पर होते हुए जुल्मों को यदि अपनी आँखों से देख लें तो उसके ग्रहण की जरा भी इच्छा न करें। कोको के खेतों में होने वाले जुल्मों पर बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। यदि हम सब अपनी खुराक की उत्पत्ति के विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करें तो १०० में से ९० वस्तुओं का

त्याग अवश्य कर दें।

इन तीन वस्तुओं के बदले नीचे लिखे ढंग से निर्दोष और पुष्टिकर चाय बन सकती हैं। इसे चाय के नाम पर मजे में पी सकते हैं। काफी और निर्दोष चाय के स्वाद में इतना कम अन्तर है कि उसे काफी पीने वाले भी नहीं समझ सकते। पहले गेहूँ को साफ तवे या कड़ाही में या चूल्हे पर भूनना चाहिए। खूब लाल होकर कलछाने लगने पर उतार लिए जायँ और दाल दलने की छोटी चक्की में साधारण तौर पर बारीक दल लिए जायँ। इसमें से एक चम्मच भर कर पियाले में डालकर उस पर उबलता हुआ पानी डाल दें। यदि इसे एक मिनट तक चूल्हे पर चढ़ा रहने दें तो भी अच्छा हो। आवश्यकता जान पड़े तो दूध और शक्कर भी इसमें मिला ली जाय। दूध और शक्कर के बिना भी इसे पी सकते हैं। पाठक इसका प्रयोग करके देख सकते हैं। इसे ग्रहण कर जो लोग चाय, काफी और कोको छोड़ देंगे उनके पैसे बचेंगे और स्वास्थ्य-रक्षा भी होगी।

जिन पाश्चात्य देशों में इन नशीले द्रव्यों का सेवन अधिक रूप से होता था उन्हीं में हार्टफेल का रोग होता था। अब जब से भारतवर्ष में नशों का आधिक्य हुआ है तब से यहाँ पर भी हृत्कंपनावरोध (हार्टफेल) का रोग फैल गया है। चलता-फिरता मनुष्य मार्ग में ही लेट जाता है और किसी से कुछ नहीं कह पाता। यह भयंकर रोग फेफड़ों की कमजोरी से, रक्त साफ न होने के

कारण विषाक्त होकर हृत्कंपन को रोक देता है। इस लिए यदि जीवन चाहते हों और वह भी स्वास्थ्यप्रद, तो आज से ही इन नशीले प्राणघातकी द्रव्यों का सेवन छोड़ दें, उसी में सब का कल्याण है।

—*—

# नकछिकनी

दुसरी है नकछिकनी जिसे लोग सुँघनी कहते हैं। यह पिसी हुई तमाखू होती है। यह इतनी बारीक होती है कि नाक के पास आते ही स्वास के साथ दिमाग में चढ़ जाती है, जिससे छींक पर छींक आने लगती है और आँख नाक से पानी निकलने लगता है। कई मनुष्यों को इसका इतना अभ्यास बढ़ जाता है कि वे प्रतिक्षण नासदानी हाथ में लिए रहते हैं और उनकी नाक के नथुने बराबर भरे रहते हैं। यह वह हालत हुई कि "गये थे नमाज पढ़ने और रोजे गले लग गये" लगे थे सर्दी दूर करने और दूसरा रोग पीछे लग गया। नांस लेने वाले के हाथ हमेशा गन्दे रहते हैं और सुर-सुर हमेशा नाक बहा करती है। नास वाले को शिर के सभी रोग हो जाते हैं। नेत्रों से जल गिरता रहता है स्मरणशक्ति घट जाती है। इसको सुँघनी न कहकर नकछिकनी ही कहना उचित है क्यों कि—"यथा नाम तथा गुणः" जैसा नाम वैसे ही गुण भी है। इस वस्तु को भी विचारवान पुरुषों को छोड़ देना चाहिए क्योंकि

शिर की कोई भी इन्द्रिय इसे स्वीकार नहीं करती बल्कि प्रत्यक्ष रो रो कर आँसू बहाती हैं और इस बात का संकेत करती हैं कि अय मनुष्य ! इस बला को जबरदस्ती न ठूँस, नहीं तो आखिर को तुझे इससे हाथ धोना पड़ेगा ।

—o—

## शौच

प्रातःकाल रात्रि के चौथे प्रहर में अर्थात् चार बजे उठकर सबसे पहले बिस्तर पर बैठकर पाँच मिनट तक ईश्वर का ध्यान और फिर कुल्ला कर बासी मुँह डेढ़ पाव या आधसेर पानी पीकर टहले इससे पाखाना अच्छी तरह साफ आवेगा और कब्ज नहीं होगी । पहले-पहल सर्दी हो जाने का डर है । किन्तु उसकी परवाह न करनी चाहिए, वह स्वयं अच्छी हो जायगी । शौच होकर आबदस्त ले लेने पर मूत्रेन्द्रिय की खाल हटाकर ठण्ढे पानी से अच्छी तरह धो डालना चाहिए । इसके बाद दतौन, स्नान आदि करना चाहिए । तत्पश्चात् सन्ध्या सूर्य उदय से पूर्व तारों की छाया में समाप्त कर देनी चाहिए इतने काम सूर्य उदय के पूर्व अवश्य हो जाने चाहिएँ ।

—o—

# लघुशङ्का

प्राचीनकाल से यह बात चली आती है कि जब कोई पेशाब जाता है तब एक पात्र में जल ले जाता है। पेशाब हो लेने के बाद इन्द्रिय को पानी से धो डालता है। कोई-कोई गमछे का एक किनारा भिगोकर ले जाते हैं उसी से धो देते हैं। गमछे में जल ले जाना अच्छा नहीं, क्योंकि वह पानी हाथ की गरमी से गरम हो जाता है। ठण्ढे पानी से ही धोना हितकर है। यह एक प्रकार का जल-चिकित्सा का एक भाग है। यह बड़ा ही लाभदायक है। किन्तु आजकल लोगों ने इसे केवल शुद्धि का ही हेतु समझ रक्खा है। मुसलमान लोग एक मिट्टी का ढेला जहाँ-तहाँ से उठा लेते हैं वे भी पेशाब के बाद इन्द्रिय के मुँह पर लगा लेते हैं और कहते हैं कि पेशाब का कतरा कपड़े पर गिरने से कपड़ा नापाक न हो जाय। उन्होंने भी शुद्धि के लिए मानकर ऐसा किया। यह उनकी भूल है। क्योंकि जो ढेला वे उठाते हैं वह पहले किसी ने इस्तेमाल किया या नहीं, इसका पता उन्हें नहीं लग सकता, इस लिए सम्भव हो सकता है कि किसी गर्मी, सूजाक वाले मरीज ने उसे पहले इस्ते-माल किया हो। ऐसे ढेले के व्यवहार से क्या हानि होगी यह आप भलीभाँति समझ सकते हैं। दूसरे शुष्क मिट्टी के सम्बन्ध से वह फल हासिल नहीं हो सकता जो जल से है। देखा-देखी नकल और वह भी उल्टी करना अच्छा नहीं। वहाँ प्रयोजन केवल स्वच्छता

ही नहीं प्रत्युत रोग नाश भी है । "एकाक्रिया द्वर्थकरी प्रसिद्धा" "आम के आम और गुठली के दाम" इसी को कहते हैं अर्थात— शुद्धता की शुद्धता और रोग का भी नाश !

—o—

# तैल मर्दन

तैल खाने की अपेक्षा शरीर पर मर्दन करने में घी खाने से भी कई गुणा अधिक शक्ति प्रदान करता है शरीर पर कान्ति, खाल पर चमक और मजबूती के साथ मुलाइमियत लाता है । स्फूर्ति, हलकापन और नैरोग्यता प्रदान करता है । देह में खसरा, खुजली आदि रोगों को उत्पन्न नहीं होने देता । अंगों को मोटा और सुडौल करता है । बुढ़ापे तक अंगों को जकड़ने नहीं देता । चाहे कितना भी परिश्रम किया हो उसकी थकावट क्षणों में दूर करता है ।

तैल की मालिश करने के लिए दो आदमियों को आवश्यकता है, एक तेल मलने वाला और दूसरा मालिश कराने वाला । किसी अच्छे स्वच्छ खुले स्थान में बैठकर जहाँ तेज हवा न आती हो मालिश करें । मालिश में कडुआ तेल काम में लाना चाहिए । शुद्ध कडुआ सरसों का तेल छटाँक डेढ़ छटाँक लेकर साफ कपड़े से छान ले । तत्पश्चात् मालिश करने वाला दोनों हाथों में लगाकर जिसके मालिश करनी हो उसके सिर में और तालू पर लगाकर हाथ की दोनों हथेली से घर्षण करे । इसी प्रकार जल्दी-जल्दी

हाथ बदलता जाय जिससे हाथ गरम न होने पाये और तेल रमता जाय हाथों की तली गरम होने से दोनों को नुकसान है अर्थात् मस्तक में गरमी पहुंचने से बुद्धि की हानि और बालों के संघर्ष से एक प्रकार की विद्युत पैदा होती है जो हाथ की हथेलियों के मार्ग से मर्दनकर्त्ता के मस्तक में हानि पहुँचाती है। कनपुटियों को अँगुलियों के अग्रभाग से मर्दन करे। तत्पश्चात् गर्दन और बाँहों को पहले धीरे-धीरे जब गरम हो जाय तब बलपूर्वक मर्दन करे। इसी प्रकार सब अंगों में सब तेल रमा दे। डेढ़-दो घण्टे के बाद जब अच्छी प्रकार ठण्ठा हो जाय तब साबुनसे स्नान करे। इस प्रकार मर्दन किया हुआ तैल अपूर्व फल देता है।

—o—

# मञ्जन

दाँतां में कीड़ा नहीं लगेगा, मुँह से बदबू नहीं आयेगी। पाचन-शक्ति बढ़ जायगी, पेट का कोइ रोग नहीं होगा। कारण यह कि प्रतिक्षण मुँह में थूक आता रहता है और दाँतों की जड़ों में से होकर ओठों से टकरा भीतर लौट जाता है। फिर वह कण्ठ से नीचे उदर में पहुँच जाता है तथा भोजन के हजम होने में बड़ी सहायता करता है। साफ कहना चाहिए कि वही लार मुख में दाँतों की रगड़ के संसर्ग से अमृत बन जाती है और अमृत-कूप जहाँ उस लार के ठहरने का स्थान है वहाँ पहुँच जाती है। यथार्थतः जो कण्ठ में

नासारन्ध्र के समीप अमृत-कूप है, उसमें जो जल, तत्व का दन्त-श्रेणी के संघर्ष से मधुरामृतमय भाग तैयार होता है वह जाकर ठहरता है। जिससे वह कूप सदैव भरा रहता है। योगी लोग जब जबान को लौट कर उस अमृत-कूप के पास ले जाते हैं तब उन्हें अमृत-कूप से गिरी हुई मधुर अमृतमयी बूँद के स्वाद का आनन्द मिलता है।

जो लोग वैसा अभ्यास करते हैं उन लोगों को भी उपरोक्त आनन्द का अनुभव होता है। हम लोगों के पेट में वह बराबर बूँद बूँद होकह टपकता रहता है जो खाये हुए पदार्थ के लिए अमृत होता है। यदि दाँतों की सफाई नहीं रक्खी जायगी तो वही अमृत, विष हो जायगा। क्योंकि दाँतों में सड़े हुए बदबूदार मैल से लगकर लार में विष उत्पन्न हो जाता है और वह अमृतकूप को विष-कूप बनाती हुई पेट में पहुँच कर कीड़े, अजीर्णता आदि अनेक रोग पैदा कर देती है। इस लिए स्वास्थ्य चाहने वाले मनुष्यों को हमेशा दाँत साफ रखने चाहिएँ। ताजी दतौने का रस मसूड़ों को पुष्ट करता है।

पेट की कब्ज जबान से देख ली जाती है। जब पेट में अनुचित मल का भाग होता है, तब जबान पर मैल जम जाता है। पेट के साफ रहने पर नहीं रहती। इसी लिए वैद्य लोग जबान देखते हैं। दाँत और जबान साफ रखने वाले का कभी पेट गन्दा नहीं रह सकता।

दतौन के साथ यदि दन्त-मञ्जन भी प्रयोग कर लिया करें तो

सोने में सुगन्ध का काम हो जाय। अर्थात् सफेद सेंधा नमक खूब बारीक पीसकर शुद्ध सरसों के थोड़े तेल में मिला लें और दतौन की कूची के साथ अथवा अँगुली द्वारा दाँतों तथा मसूड़ों पर रगड़े। इससे मसूड़ों का कोई रोग नहीं होता और सफाई बहुत जल्दी होती है। नमक विष-हर है। जिनके मसूड़ों से खून जाता हो वे अवश्य इस मंजन का प्रयोग करें उन्हें तत्काल इसका लाभ मालूम होगा और कुछ दिन प्रयोग करने पर यह रोग सदैव के लिए चला जायगा।

—*—

# नेत्र स्नान

दन्तधावन करने के बाद मुँह में पानी भरकर, एक लोटे में पानी ले और दूसरे हाथ की अँजली भर कर आँख खोल उसमें छींटे दे, एक लोटा पानी खतम हो जाने पर मुँह का पानी निकाल दे और फिर उसी प्रकार दुबारा मुख में पानी भर कर आँखों में छींटे दे। इस प्रकार कम से कम दस सेर पानी काम में लाना चाहिए। इसका फल यह होगा कि नेत्रों की ज्योति बढ़ेगी और गयी हुई रोशनी भी फिर से लौट आयेगी। मस्तक की स्मरण-शक्ति बढ़ेगी, सिर दर्द आदि सिर के सभी प्रकार के रोग नष्ट होंगे। सिर के काले बाल असमय में सफेद न होने पायेंगे। यदि सफेद हो गये हों तो इसके कुछ वर्ष लगातार प्रयोग से फिर काले हो जायँगे।

दाँत मजबूत होंगे। नेत्रों का दुखना, जल गिरना, या सुर्खी आ जाना, धुँधला, झायीं, माड़ा, फुल्ली आदि एक भी रोग न होने पायगा और जिनके ये रोग हों यदि वे भी इसका निरन्तर प्रयोग करें तो उनको भी अवश्य फायदा होगा

——*——

## स्नान

नेत्र-स्नान के बाद सम्पूर्ण देह का स्नान कर डालना चाहिए। स्नान कुएँ के ताजा जल से करना चाहिए क्योंकि वह ऋतु अनुसार गरम सर्द बना रहता है। जैसे लिखा है—

कूपोदकं वटच्छाया नारीणाञ्चपयोधरम्।
शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम्।

अर्थ—कुएँ का जल, वटवृक्ष की छाया तथा स्त्री-पयोधर उष्ण-काल में स्वभाव से शीतल और शीतकाल में गरम हो जाते हैं। इस लिए कुएँ के जल से खूब मल-मल कर नहाना चाहिए। सबसे पहले शिर पर जल डालकर उसे अच्छी प्रकार धोना चाहिए और फिर हाथ कमर और पेट पर पानी डालकर मले। तत्पश्चात् शेष अंगों पर। इस प्रकार स्नान करने से शिर आदि सब अंगों की गरमी पाँव की राह से नीचे को निकल जाती है। उसके विपरीत करने पर उलटा परिणाम होता है अर्थात् निरोग के स्थान पर रोग आ घेरते हैं। क्योंकि पाँव और उदर आदि की गरमी मस्तक पर

आ चढ़ती है जिससे शिर-दर्द बुद्धि-मान्द्य आदि शिरोरोग हो जाते हैं। यदि किसी नदी में स्नान करना हो तो वहाँ भी किनारे पर पहले सिर धोकर क्रमशः सब अंगों को भिगोवे, तब नदी में उतर जाय फिर कोई हानि नहीं होगी। उसके बाद मोटा गमछा या तौलिया को भिगोकर शरीर के सब अवयवों पर मलने से मैल अच्छा साफ होता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि बाल न टूटने पाये। स्नान के बाद गमछा निचोड़ कर शरीर पोंछ डालना चाहिए। जिससे कहीं पानी न रहने पाये, अन्यथा पानी रहने पर दाद होने का डर रहता है। इस प्रकार स्नान करने से शरीर के रोमकूपों के छिद्र खुल जाते हैं। जिससे पसीना अच्छी तरह अन्दर से बाहर निकल सकता है जो शरीर को सुन्दर और रोगहर बनाता है।

महीने में दो-चार बार अच्छे साबुन से स्नान कर लेना चाहिए। अच्छे साबुन के माने जो शरीर की त्वचा को फाड़ न दे और न इतना रूखा ही हो कि शरीर पर सिमटन पड़ जायँ। चरबी का साबुन कभी न लगाना चाहिए, क्योंकि वह शरीर के छिद्रों को खोलता नहीं प्रत्युत् उन्हें और बन्द कर देता है। जिससे पसीने का आना बन्द हो जाता या बहुत ही कम हो जाता है। लगाने वाले समझते हैं कि साबुन बहुत अच्छा है। यथार्थ में वह बहुत ही नुकसान देने वाला है। ऐसी राय डाक्टरों की है। और दूसरा अपवित्र भी है, बिना जानवरों के मारे चर्बी नहीं मिलती। चर्बी के लिए जानवर मारे जाते हैं। इस लिए चर्बी का साबुन व्यवहार

करने वालों को उन पशुओं की हत्या का भागी बनना पड़ेगा। अतएव चर्बी का साबुन सब तरह से वर्जित है।

---

# शृङ्गार

स्त्री को चाहिए प्रातःकाल स्नान कर लेने के बाद शृङ्गार करे। शृंगार में विशेष आभूषण पहनने की आवश्यकता नहीं, सामान्य आभूषण ही पर्याप्त हैं। विशेष आभूषण गृहस्थी काम करने में रुकावट डालते हैं और गिरने-पड़ने टूटने का भी भय रहता है।

शृंगार क्या है? शरीर की सजावट। वह भी दो प्रकार की होती है। एक असली और दूसरी नकली। असली वह है जो शरीर की स्वाभाविक रूप-लावण्य और सुन्दरता में अर्थात्—सदाचार, संयम तथा ब्रह्मचर्य से प्राप्त होती है। उस पर स्वच्छ सामान्य वस्त्र तथा केशविन्यास (बालों का सँवारना) ही सोने में सुगन्ध का काम करता है। किन्तु जहाँ स्वाभाविक सुन्दरता नहीं वहाँ नकली की आवश्यकता पड़ती है। इसी लिए चौंसठ कलाओं का विधान किया गया है। जो सांसारिक कार्यों में बड़ी सहायक होती हैं और जिनसे स्त्री पुरुष को प्रसन्न करने के लिए उन साधनों से काम ले सके। उनमें से स्त्रियोपयोगी कुछ कलाएँ नीचे दी जाती हैं।

## केश विन्यास

सिर के बालों की अनेक विध रचना जिससे सौन्दर्य की विशेष झलक आ जाय। उनमें सोने के कांटे और आभूषणादि भी सजाये जाते हैं।

## नेत्र-रञ्जन

नेत्रों में अंजन आदि लगाना। जो नेत्रों के रोग नाश करने वाला भी हो।

## करपदोपराग

हाथ और पाँव में मेंहदी से नाना प्रकार रचना करना। अथवा आलता से रंगना। मेंहदी से हाथ पाँव की जलन भी नष्ट होती है, जो स्त्रियों के लिए बहुत हितकर है।

## दशन-राग

दाँतों को खूब मोती के समान चमकदार बनाना। जिनमें किसी प्रकार का मैल न रहे।

## मुख-विलास

जिह्वा को अच्छी प्रकार साफ कर मुख में इलायची पान आदि सुगन्धित वस्तु रखना। जो स्वास्थ्य के लिए भी हितकर हो।

## मस्तकाभ

माथे में सिन्धूर या ईङ्गुर आदि का विन्दु लगाना, और मुख पर सौन्दर्यबर्द्धक वस्तु का प्रयोग करना। किन्तु ध्यान रहे वह किसी प्रकार का रक्त विकार न उत्पन्न करती हो।

## पुष्पवेणि-बन्धन

बेला, चमेली, जूही आदि कलियों की माला बनाकर उससे सिर के बालों को गूँथना। किन्तु ध्यान रहे कलियें मुरझाते ही मालायें उतार डालनी चाहिएँ, नहीं तो दुर्गन्ध हो जाने से लाभ के स्थान में हानि ही पैदा हो जायगी।

## केशरंजन

सिर को धोकर कंघी से साफ करना और सुगन्धित तेल लगाना। सिर में तेल वही लगाना चाहिए जो फूलों से बसाया हुआ हो। जो सैंटिड अर्थात् विलायती सेन्ट से मिलाकर बनाया जाता है, वह कभी न लगाना चाहिए। क्योंकि उसके लगाने से बाल बहुत जल्दी सफेद हो जाते हैं। आजकल लोग गरी का तेल लेकर उसमें सेन्ट मिला लेते हैं जो बहुत किफायत पड़ता है किन्तु यह उनकी भारी भूल है। गरी का तेल हमेशा बिना खुशबू का सादा ही व्यवहार करना चाहिए। क्योंकि बाजार में भी वह सेन्ट मिलाकर ही बेचा जाता है उसमें फूल नहीं बसाये जाते और न उसमें फूल बस सकते हैं।

## अलङ्कार

कान, नाक, गले और हाथों में पहनने के गहने सोने के और पाँव तथा कमर में चाँदी के हलके नक्काशीदार होने चाहिएँ। हाथ में चूड़ी, कान में कर्णफूल, गले में सिकड़ी, नाक में लौंग, पाँव में बिछुआ पायजेब और कमर में करधनी होनी चाहिए। हाथ की

अँगुली में नगदार अँगूठी । उपरोक्त आभूषणों में जैसा नग शोभता हो वैसा लगाना चाहिए ।

## वसन

पहनने के वस्त्र ठीक नाप के सिले और खुशनुमा मनचाहे रंग में रंगे हों। ओढ़ने के भी हलके साफ सुथरे रंगे होने चाहिएँ । वस्त्रों पर बेल बूटे, किनारीदार झालर यथायोग्य बने हों ।

## सूत्रक्रीड़ा

वस्त्रों पर बेल-बूटे काढ़ना । वस्त्रों के किनारे फीता या झालर आदि बनाना ।

## सूचिकला

पहनने आदि के वस्त्रों को सीना, काटना, ब्योंतना आदि भली प्रकार करना ।

## सूत्रकला

चर्खे वा किसी अन्य प्रकार से सूत कातना ।

## गायनकला

स्वर, राग रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, गीत आदि का ज्ञान होना चाहिए ।

## वादित्र

तान पूरा स्वरराज ( सराज ) सितार, सारंगी, हारमोनियम तबला, पखावज, मृदंग आदि वादित्रों का बजाना जानने योग्य है ।

## माल्यनिर्माण

हर प्रकार के फूलों की हर तरह की माला बनाना ।

# लघुशङ्का

प्राचीनकाल से यह बात चली आती है कि जब कोई पेशाब जाता है तब एक पात्र में जल ले जाता है। पेशाब हो लेने के बाद इन्द्रिय को पानी से धो डालता है। कोई-कोई गमछे का एक किनारा भिगोकर ले जाते हैं उसी से धो देते हैं। गमछे में जल ले जाना अच्छा नहीं, क्योंकि वह पानी हाथ की गरमी से गरम हो जाता है। ठण्ढे पानी से ही धोना हितकर है। यह एक प्रकार का जल-चिकित्सा का एक भाग है। यह बड़ा ही लाभदायक है। किन्तु आजकल लोगों ने इसे केवल शुद्धि का ही हेतु समझ रक्खा है। मुसलमान लोग एक मिट्टी का ढेला जहाँ-तहाँ से उठा लेते हैं वे भी पेशाब के बाद इन्द्रिय के मुँह पर लगा लेते हैं और कहते हैं कि पेशाब का कतरा कपड़े पर गिरने से कपड़ा नापाक न हो जाय। उन्होंने भी शुद्धि के लिए मानकर ऐसा किया। यह उनकी भूल है। क्योंकि जो ढेला वे उठाते हैं वह पहले किसी ने इस्तेमाल किया या नहीं, इसका पता उन्हें नहीं लग सकता, इस लिए सम्भव हो सकता है कि किसी गर्मी, सूजाक वाले मरीज ने उसे पहले इस्तेमाल किया हो। ऐसे ढेले के व्यवहार से क्या हानि होगी यह आप भलीभाँति समझ सकते हैं। दूसरे शुष्क मिट्टी के सम्बन्ध से वह फल हासिल नहीं हो सकता जो जल से है। देखा-देखी नकल और वह भी उल्टी करना अच्छा नहीं। वहाँ प्रयोजन केवल स्वच्छता

ही नहीं प्रत्युत रोग नाश भी है । "एकाक्रिया द्वर्थकरी प्रसिद्धा" "आम के आम और गुठली के दाम" इसी को कहते हैं अर्थात्— शुद्धता की शुद्धता और रोग का भी नाश !

—०—

# तैल मर्दन

तैल खाने की अपेक्षा शरीर पर मर्दन करने में घी खाने से भी कई गुणा अधिक शक्ति प्रदान करता है शरीर पर कान्ति, खाल पर चमक और मजबूती के साथ मुलाइमियत लाता है । स्फूर्ति, हलकापन और नैरोग्यता प्रदान करता है । देह में खसरा, खुजली आदि रोगों को उत्पन्न नहीं होने देता । अंगों को मोटा और सुडौल करता है । बुढ़ापे तक अंगों को जकड़ने नहीं देता । चाहे कितना भी परिश्रम किया हो उसकी थकावट क्षणों में दूर करता है ।

तैल की मालिश करने के लिए दो आदमियों की आवश्यकता है, एक तेल मलने वाला और दूसरा मालिश कराने वाला । किसी अच्छे स्वच्छ खुले स्थान में बैठकर जहाँ तेज हवा न आती हो मालिश करें । मालिश में कडुआ तेल काम में लाना चाहिए । शुद्ध कडुआ सरसों का तेल छटाँक डेढ़ छटाँक लेकर साफ कपड़े से छान ले । तत्पश्चात् मालिश करने वाला दोनों हाथों में लगाकर जिसके मालिश करनी हो उसके सिर में और तालू पर लगाकर हाथ की दोनों हथेली से घर्षण करे । इसी प्रकार जल्दी-जल्दी

हाथ बदलता जाय जिससे हाथ गरम न होने पाये और तेल रमता जाय हाथों की तली गरम होने से दोनों को नुकसान है अर्थात् मस्तक में गरमी पहुंचने से बुद्धि की हानि और बालों के संघर्ष से एक प्रकार की विद्युत पैदा होती है जो हाथ की हथेलियों के मार्ग से मर्दनकर्त्ता के मस्तक में हानि पहुँचाती है। कनपुटियों को अँगुलियों के अग्रभाग से मर्दन करे। तत्पश्चात् गर्दन और बाँहों को पहले धीरे-धीरे जब गरम हो जाय तब बलपूर्वक मर्दन करे। इसी प्रकार सब अंगों में सब तेल रमा दे। डेढ़-दो घण्टे के बाद जब अच्छी प्रकार ठण्ठा हो जाय तब साबुन से स्नान करे। इस प्रकार मर्दन किया हुआ तैल अपूर्व फल देता है।

—o—

# मञ्जन

दाँतों में कीड़ा नहीं लगेगा, मुँह से बदबू नहीं आयेगी। पाचन-शक्ति बढ़ जायगी, पेट का कोइ रोग नहीं होगा। कारण यह कि प्रतिक्षण मुँह में थूक आता रहता है और दाँतों की जड़ों में से होकर ओठों से टकरा भीतर लौट जाता है। फिर वह कण्ठ से नीचे उदर में पहुँच जाता है तथा भोजन के हजम होने में बड़ी सहायता करता है। साफ कहना चाहिए कि वही लार मुख में दाँतों की रगड़ के संसर्ग से अमृत बन जाती है और अमृत-कूप जहाँ उस लार के ठहरने का स्थान है वहाँ पहुँच जाती है। यथार्थतः जो कण्ठ में

जिस स्त्री का पति वेश्या के पास जाय, उस स्त्री को सोचना चाहिए कि मुझमें क्या कमी हुई जिसके कारण पति का मन दूसरी पर गया। सत्कार में तो कोई त्रुटि नहीं हुई, कोई अनुचित वचन तो नहीं कहा गया, शृङ्गार-भूषा में तो कमी न हुई इत्यादि बातों का विचार कर अपने दोषों को खोजे। जब कोई दोष समझ में आ जाय तो उसे दूर कर दे। यह निश्चित बात है जो स्त्री प्रति दिन इन बातों पर ध्यान रखती है उसका पति कभी कुराह पर नहीं जाता और चला गया होगा तो अवश्य लौट आवेगा।

घर में प्रायः वृद्धा स्त्रियाँ पुत्र वधुओं को जब शृङ्गार से सजते देखती हैं तो उन पर वाग्बाण छोड़ती हुई कहती हैं—इसे शृङ्गार से ही फुरसत नहीं, आज ही रिझायेगी, मानो अप्सरा ही बनेगी इत्यादि अनेक कुवाच्य कह डालेंगी। एक तो पहले ही संकोचवश उन्होंने कुछ शृङ्गार किया। उस पर ताना-कशी हो गयी। फिर क्या था उनका उत्साह सदा के लिए नष्ट हो गया। अगर शृङ्गार किया भी तो किसी के घर विवाह आदि संस्कार अवसर पर दूसरों को दिखाने के लिए। जो शृङ्गार केवल पति के लिए किया गया उस पर तो आवाज कसी गयी और जो दूसरों के लिए शृंगार किया गया उसमें सहयोग दिया जाय इसका परिणाम क्या होगा, विचारशील पाठक स्वयं विचार सकते हैं। वे भी जब सास बनती हैं तो वह अपनी पुत्र-वधुओं से वैसा ही बर्ताव करती हैं। इसी लिए आज मनुष्य घर की सुन्दर नारियों को छोड़कर वेश्याओं के

जाल में जा फंसते हैं। अतएव घर की अनुभवी सास आदि को चाहिए कि वे उनके उत्साह में विघ्न न डालें प्रत्युत् सहायता करें और उनकी त्रुटियों को सुधार दें।

बाजार के खाद्य पदार्थ और कटे-सिले कपड़े महँगे होने पर भी क्यों अच्छे प्रतीत होते हैं और घर के नहीं ? इसका कारण केवल इतना ही है कि वे ग्राहक को देखने में अच्छे लगें और दाम वसूल हो जाये इस वजह से सुसज्जित करके रखे रहते हैं किन्तु घर में इसका विचार नहीं किया जाता। और यदि यह कहा जाय तो जवाब मिलता है कि क्या हमें बेचना है।

इसका परिणाम यह होता है कि कोई पदार्थ अच्छा नहीं बनता और न ही बनाना आता है। इस समय गृहस्थों में चार अंगुल फटी चीज भी सी नहीं सकते, नये का तो कहना क्या ? और खाने-पीने की वस्तुओं की भी यही हालत है। कभी दाल पतली तो कभी गाढ़ी कभी मिली, कभी अनमिली अधिक क्या सभी पदार्थों की यही दशा है।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वस्तु का संस्कार ही मनुष्य की चित्त-वृत्ति को अपनी ओर खींचता है। संस्कार समान होनेपर भी मनुष्य को चाहिए कि वह उसमें अपनी हानि-लाभ को भी सोचे। जैसे एक उदाहरण आगे रखा जाता है।

वस्त्र आभूषणों से सजी हुई एक तवायफ भरी सभा में गा कर क्या आदर्श पेश करती है।

"करेजवा उठे रे मोरे पीर"

इस कड़ी को सुनकर महफिल की महफिल झूमने लगती है। सच पूछिए तो वह विषधर सर्प की विषभरी लहर देती है। जिस पर उसका असर हो जाता है उसके तन-मन-धन सभी का नाश हो जाता है; किन्तु कुल-वधु जब पति के सम्मुख सर्वश्रृङ्गार सम्पन्न होकर गायेगी तो उसका कितना सुन्दर आदर्श होगा—

पति बिना सूना सकल संसार।

वह मधुर रस-भरी सुधावर्षी मन और धन का बढ़ाने वाला होगा। स्वर कितना सुन्दर और मनोहर होगा जिसमें पति के प्रेम में रसभरी तान होगी। परन्तु आजकल तो पति के सम्मुख गाना बड़ी निन्दा की बात समझी जाती है। बड़ी-बूढ़ी तो क्या युवतियाँ तक भी कहती हैं—"यह कैसी निर्लज्ज है पति के सामने गा रही है इसको जरा भी बड़ों की शरम निहाज नहीं।" किन्तु यह उनकी भूल है। वेष-भूषा के अतिरिक्त यह भी एक कारण है जो मनुष्य को तवायफों की ओर खींच ले जाता है। यदि घर में अपनी ही स्त्री सुन्दर शिक्षाप्रद गायन से काम लेकर अपना और पति का मन बहला दे तो पुरुष को कहीं जाने का बहाना ही न मिले। रही निर्लज्जता की बात, वह केवल ढकोसला मात्र है। क्योंकि विवाह आदि संस्कारों पर जिन निर्लज्जतापूर्ण गीतों को अपने श्वसुर आदि सम्बन्धियों तथा बरातियों के सम्मुख बड़ी-बूढ़ी और कुल-वधुएँ गाती हैं, वह किसी से छिपी नहीं। वे गाने इतने गन्दे और निर्ल-

ज्ञता से भरे हुए होते हैं कि जो सभ्य स्त्री-पुरुष के मुँह से निकल ही नहीं सकते। उन पर तो विचार नहीं, और जो पवित्र शिक्षापूर्ण गाने पति के सामने गाये जायँ तो वह निर्लज्ज व्यवहार समझा जाय। भला इससे बढ़कर भी कोई वज्र मूर्खता हो सकती है। इसी अविवेक के कारण ही गृहस्थों की हालत बिगड़ी हुई है। गृहस्थों को कभी गन्दे गीत स्वयं गाने वा सुनने नहीं चाहिएँ। इससे अपने तन मन धन वा कुल परिवार सभी का विनाश होता है। अतः सबको सुन्दर शिक्षाओं से भरे हुए ही गाने सुनने वा गाने चाहिए। जिससे अपना और दूसरे सुनने वालों का उपकार हो।

स्त्री के सभी प्रकार के शृङ्गार तथा उपरोक्त कलाओं के प्रयोग पति को प्रसन्न करने के लिए ही होते हैं। पतिव्रता स्त्रियें पति के घर पर रहने पर उपरोक्त उपायों से काम लेती हैं। जब पति परदेश चला जाता है तब साधारण रूप से रहती हैं, जिसमें विनोद का कोई चिन्ह दिखायी नहीं देता।

मनुष्य जब बाहर से घर आता है तब वह काम-काज से थका हुआ विक्षुब्ध-मन आराम चाहने वाला होता है घर आने पर जब उसे आराम नहीं मिलता प्रत्युत कलह, गहने आदि के तकादे और रूक्ष वचन सुनने को मिलते हैं तो वह इनसे छुटकारा पाने के लिए घर से बाहर निकल जाता है और दिल बहलाने के लिए मित्र-मण्डली में जा पहुँचता है। मित्र-मण्डली के लोग भी वैसे ही जले दिल होते हैं वे भी कोई मनोविनोद की वस्तु चाहते हैं। जब

परस्पर विनोद से मन नहीं भरा तब किसी मित्र की प्रेरणा से तवायफ का गाना सुनने चले गये । वहाँ तवायफ का व्यवहार "बहेलिये" की तरह विचित्र फँसाने वाला होता है । मण्डली के पहुँचते ही बड़े आवभगत के साथ बैठाना, बड़ी रसभरी मीठी रसीली लच्छेदार बातों में फँसाकर गाना सुनाना और उन आँख के अन्धे तथा गाँठ के पूरों का धन हरकर उल्लू बनाना उनका रोज का कर्म है । इतना होने पर भी वे इतने नशे में चूर हो जाते हैं कि घर की सुध-बुध छोड़कर अपना तन-मन-धन सब लुटा बैठते हैं ।

इस लिए पत्नी को चाहिए कि जब पति सायंकाल घर आवे तो उनका ऐसा मधुर शब्दों से स्वागत करे कि वे सब चिन्ताओं को भूल जायँ और जलपान आदि के पश्चात् गाने बजाने आदि के विनोदात्मिक कार्य करे । इस भाँति जब पति प्रसन्न रहेंगे तब वे पत्नी को भी प्रसन्न करने में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रक्खेंगे और कोई दुर्व्यसन भी उनमें नहीं आने पावेगा ।

—o—

# सौन्दर्य बर्द्धक योग

१—बच, धनियाँ, लोध, गोरोचन, समान भाग में पीसकर मुख पर लगाने से यौवन की निकली हुई फुन्सियाँ नष्ट हो जाती हैं।

२—मँगरैला, जीरा, पीली सरसों, काला तिल, सब बराबर मात्रा में मिलाकर बकरी के दूध में पीसकर शरीर पर मलने से उसकी सुन्दरता बढ़ती है, और मुँह की झाँयीं तथा मुहासे भी दूर होते हैं।

३—सफेद सरसों, बिना भूसी के जौ का आटा, लोध की छाल और मुलहठी इन सबको पीसकर मुख पर लगाने से मुख की खूबसूरती बढ़ती है और खाल मुलायम होती है।

४—अनार, सिरीश, अम्बलतास, नीम, हलदी और लोध की छाल, मिलाकर उबटन करने से स्त्रियों की मुखश्री बढ़ती है।

५—मुलहठी, कचनार, सहदेवी, पके बढ़ के पत्ते, कमल, सफेद चन्दन, लोध की छाल, लाही और कुङ्कुम इन सबको समान भाग में लेकर जल के साथ पीस डाले। इस उबटन को लगाने से स्त्रियों की मुखश्री शरद चन्द्र के समान उज्ज्वल और प्रदीप्त हो जाती है।

६—कूट, सरसों, तिल, दारुहल्दी और हलदी, इनका उबटन लगाने से शरीर की स्वर्ण के समान कान्ति बढ़ जाती है।

७—तालीशपत्र, कूठ और तगर, इनका उबटन लगाने से शरीर की अपूर्व शोभा बढ़ जाती है।

८—नागकेशर का चूर्ण, कमलपत्र, शहद, इनको शुद्ध घी में मिलाकर खाने से कै और दस्त होकर शरीर की कान्ति बढ़ती है।

९—तमालपत्र, नागकेसर, तगर, कमलपत्र और तालीसपत्र, इन सबको पीसकर शरीर पर मलने से शरीर का सौन्दर्य बढ़ता है।

१०—प्रियंगू क फूल, लोध, मँजीठ, कूठ, बढ़ के अंकुर, लालचन्दन तथा मसूर इन सबका उबटन बनाकर शरीर पर मलने से कान्ति और तेज बढ़ता है और शरीर गोरा होता है।

११—जायफल को चन्दन की तरह दूध में घिसकर यदि मुँह पर लगाया जाय तो मुँह के मुहासे नाश होकर चेहरे पर चमक आती है।

१२—सुगन्धबाला, केसर, लोध, अगर, खस, चन्दन, इनका उबटन बनाकर बदन पर मलने से रूप-राशि खिल उठती है।

—:o:—

# दुर्गन्धि नाशक योग

१—शंखचूर्ण, करौंदा के बीज, अनार की छाल, इमली, आम की छाल, इन सब औषधियों को पीसकर उबटन करने से सब प्रकार की शारीरिक दुर्गन्ध दूर हो जाती है।

२—लोध की छाल, सफेद चन्दन, नेत्रबाला, कुमकुम और तगर इनको समान भाग में पीसकर सब शरीर पर लेपन करने से शरीर की दुर्गन्धि दूर होती है।

३—खस, कमलपत्र, लोध की छाल, सिरीश, इनका उबटन लगाने से शारीरिक पसीने की बू दूर हो जाती है।

४—कुमकुम, जायफल, कूठ, तुलसी, और जावित्री, इन सबको पीसकर मुँह में रखकर चूसने से मुख की दुर्गन्धि नष्ट होती है।

५—यदि केवल मातुङ्ग की छाल ही मुख में रखकर चूसी जाय तो वह मुख की दुर्गन्धि दूर करती हुई अधोवायु की भी दुर्गन्ध को दूर करती है।

६—भटकटैया सफेद फल वाली, सफेद दूब, स्वेतापराजिता का पुष्प, इन सबको पान में रखकर खाने से मुख की दुर्गन्धि दूर होती है।

—o—

गन्धक आठ-आठ माशे तथा आठ तोले अफीम मिलाकर इन सबको एक साथ खरल कर ले। तत्पश्चात् तीन-तीन रत्ती की गोली बनाकर जो मनुष्य प्रति दिन सोने के समय दूध के साथ सेवन करता है, उसकी स्तम्भन शक्ति बढ़ जाती है।

१०—अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, लोह भस्म, चाँदी भस्म, सोनामक्खी की भस्म, शुद्ध पारा, वंशलोचन, तथा भाँग के बीज का चूर्ण इन सबको आठ-आठ तोले भाँग के काढ़ा के साथ खरल कर एक-एक माशे की गोली बना ले। प्रति दिन एक गोली दूध के साथ खाने से स्तम्भन और मैथुन शक्ति बढ़ती है।

११—मुरा, चिचड़ा का बीज, जावित्री, मरोड़फली, जायफल काकोली, खरेंटी, क्षीर काकोली, सफेद पान, कंकोल, मुलहठी, बच, और खस इन सबको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बना ले। और नित्य दूध के साथ खाये। इससे वीर्य स्तम्भन होता है।

१२—पीपल, मिर्च, धतूरा, इन तीनों को पीसकर शहद में मिला ले। कुछ दिन इनका लेप इन्द्रिय पर करने से वशीकरण हो जाता है।

१३—सफेद कमल, नील कमल, इन दोनों का केसर शहद और मिश्री में मिलाकर इन्द्रिय पर लेप करे तो इन्द्रिय स्तम्भन होता है। वह मनुष्य प्रचण्ड रतिवाला हो जाता है।

१४—सुहागा, कूठ, मैनसिल, नोनिया की पत्ती का रस, और